(□□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□□ □□□□□□ □□ □□□□ □□ 80 □□□□□□□□□□ □□□□ □□ 33 □□ 48 □□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□)

□□□□□□□-□□□□□

33.....□□□□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□
.....2
34.....□□□□□□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□
.....17
35.....□□□□□□□ □□□□□,□□□□□□□□□□□□□ □□ □□
.....30
36.....□□□□□—□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□□
.....47
37.....□□□□□□□□ □□□□□□□□□ □□
.....61
38.....□□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□
.....79
39.....□□□□□ □□ □□□□□□ □□
.....94
40.....□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□, □□□□□□□□ □□□□□ □□
.....108
41.....□□□□□□ : □□□□□□□□ □□ □□□□, □□□□□□ □□ □□□□
.....125
42.....□□□□□ □□□□□, □□□□ □□□□□□□□□□□□ □□
.....141
43.....□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□□□
.....156
44.....□□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□□□□ □□□□□□
.....172
45.....□ □□□□□ □□ □ □□□□□□
.....188
46.....□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□□□ □□
.....203
47.....□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□—□□□□□□□
.....218
48.....□□□□ □□ □□□□□□□ □□
.....235

तंत्र-सूत्र, भाग 3
तैतीसवां प्रवचन

संभोग से ब्रह्मचर्य की यात्रा

सूत्र—

48—काम—आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक
अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए
अंत में उसके अंगारे से बचो।
49—ऐसे काम—आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियां पत्तों
की भांति कांपने लगें, उस कंपन में प्रवेश करो। 50—काम आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण
करके भी रूपांतरण होगा।
51—बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो
हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन हो जाओ।
52—भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी
का स्वाद ही बन जाओ,और उसमें भर जाओ।

सिग्मंड फ्रायड ने कहीं कहा है कि मनुष्य मन के तल पर रुग्ण, बीमार जन्म लेता है। यह आधा ही सत्य है। मनुष्य रुग्ण नहीं पैदा होता, वह एक रुग्ण मनुष्यता में पैदा होता है। उसके चारों ओर का समाज देर—अबेर प्रत्येक मनुष्य को रुग्ण बना देता है। मनुष्य जन्म से सहज, सामान्य और प्रामाणिक होता है। लेकिन ज्यों ही वह नवजात शिशु समाज का अंग बनता है, उसकी रुग्णता आरंभ हो जाती है।
हम जैसे हैं, गा हैं। यह रुग्णता विभाजन से पैदा होती है—गहन विभाजन से। तुम एक नहीं हो, तुम दो हो, या अनेक भी हो। यह बात गहराई से समझने जैसी है, तभी हम तंत्र में गति कर सकते हैं। तुम्हारे भाव का केंद्र और विचार का केंद्र टूट गए हैं, दो भिन्न चीजें हो गए हैं। यही बुनियादी रोग है। तुम्हारे भाव का जीवन और विचार का जीवन अलग—अलग हो गए हैं। और तुमने अपने विचार के साथ तादात्म्य कर लिया है, भाव से तुम टूट गए हो।
और भाव विचार से ज्यादा असली है, ज्यादा यथार्थ है। भाव विचार से ज्यादा स्वाभाविक है। तुम अपने साथ भावपूर्ण हृदय लेकर आए थे। और विचार तो सिखाया गया है, संस्कारजन्य है। विचार तुम्हें समाज से मिला है। लेकिन तुम्हारा भाव दमन का शिकार हो गया है। तुम जब कहते हो कि यह मेरा भाव है तो दरअसल तुम विचार कर रहे हो कि यह मेरा भाव है। भाव मर गया है। और ऐसा कई कारणों से हुआ है।
जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो वह एक भाव—प्रवण प्राणी है, वह चीजों को महसूस करता है। वह अभी विचार करने वाला प्राणी नहीं हुआ है। वह सहज और स्वाभाविक है, वैसे ही जैसे प्रकृति की हर चीज, चाहे पेड़ हो या पशु, सहज और स्वाभाविक होती है। लेकिन हम उसे ढांचे में ढालने लगते हैं, संस्कारित करने लगते हैं। उसे अपने भावों को दबाना पड़ता है, क्योंकि भावों को दबाए बिना वह सदा कठिनाई में होगा। जब वह रोना चाहता है तो वह नहीं रो सकता, क्योंकि उसके मां—बाप को रोना पसंद नहीं है। रोने पर उसकी निंदा होगी, उसे प्रशंसा और प्रेम नहीं मिलेंगे। बच्चा जैसा है वैसा स्वीकृत नहीं है, उसे व्यवहार सीखना होगा।
उसे एक विशेष आदर्श जैसा और विशेष ढंग का व्यवहार सीखना होगा तो ही उसे प्रेम मिलेगा। जैसा वह है वैसा ही रहने पर उसे प्रेम नहीं मिल सकता। प्रेम पाने के लिए उसे कुछ नियमों का पालन करना होगा।
और वे नियम ऊपर से लादे जाते हैं, वे सहज—स्वाभाविक नहीं हैं। फलत: तुम्हारा सहज—स्वाभाविक जीवन दमित हो जाता है और अस्वाभाविक—अयथार्थ जीवन ऊपर से ओढ़ लिया जाता है। यही अयथार्थ, यही नकली तुम्हारा मन है। और एक क्षण आता है कि यह विभाजन, यह बंटाव इतना बड़ा हो जाता है कि उसे जोड्ने का कोई उपाय नहीं रह जाता, तुम बिलकुल भूल जाते हो कि तुम्हारा सच्चा स्वभाव क्या था—या है। तुम जो झूठा चेहरा ओढ़ लेते हो वही हो जाते हो और मौलिक

2

यह खंड विदा हो जाएगा और उसके साथ विचार भी? अब यह वादा बंधन बन जाने वाला है।
सार्त्र ने कहीं कहा है कि हरेक वादा झूठा होने को बाध्य है। तुम पूरे नहीं हो, इसलिए तुम्हारे वादे की कीमत नहीं है। एक खंड वादा करता है। लेकिन जब वह खंड सिंहासन से उतर जाएगा और दूसरा उसकी जगह लेगा तो तुम क्या करोगे? तब कौन वादा पूरा करेगा? उससे ही पाखंड का जन्म होता है। क्योंकि जब तुम वादा पूरा करने का प्रयत्न करते हो, जब तुम उसे पूरा करने का ढोंग करते हो, तब सब कुछ झूठा हो जाता है।
तंत्र कहता है अपने भीतर भाव के केंद्र पर उतर आओ। यह उतरना कैसे हो? इसके लिए क्या किया जाए? अब मैं सूत्रों में प्रवेश करता हूं। ये सूत्र, इनमें से प्रत्येक सूत्र तुम्हें अखंड बनाने का प्रयत्न है।

पहला सूत्र:
काम— आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।
कई कारणों से काम—कृत्य गहन परितृप्ति बन सकता है और वह तुम्हें तुम्हारी अखंडता पर, स्वाभाविक और प्रामाणिक जीवन पर वापस पहुंचा सकता है। उन कारणों को समझना होगा।
एक कारण यह है कि काम—कृत्य समग्र कृत्य है। इसमें तुम अपने मन से बिलकुल अलग हो जाते हो, छूट जाते हो। यह कारण है कि कामवासना से डर लगता है। तुम्हारा तादात्म्य मन के साथ है और काम अ—मन का कृत्य है। उस कृत्य में उतरते ही तुम बुद्धि—विहीन हो जाते हो, उसमें बुद्धि काम नहीं करती। उसमें तर्क की जगह नहीं है, कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। और अगर मानसिक प्रक्रिया चलती है तो काम—कृत्य सच्चा और प्रामाणिक नहीं हो सकता। तब आर्गाज्म संभव नहीं है, गहन परितृप्ति संभव नहीं है। तब काम—कृत्य उथला— उथला हो जाता है, मानसिक कृत्य हो जाता है। ऐसा ही हो गया है।
सारी दुनिया में कामवासना की इतनी दौड़ है, काम की इतनी खोज है, उसका कारण यह नहीं है कि दुनिया ज्यादा कामुक हो गई है। उसका कारण इतना ही है कि तुम काम—कृत्य को उसकी समग्रता में नहीं भोग पाते हो। इसीलिए कामवासना की इतनी दौड़ है। यह दौड़ बताती है कि सच्चा काम खो गया है और उसकी जगह नकली काम हावी है। सारा आधुनिक चित्त कामुक हो गया है, क्योंकि काम—कृत्य ही खो गया है। काम—कृत्य भी मानसिक कृत्य बन गया है। काम मन में चलता रहता है और तुम उसके संबंध में सोचते रहते हो।
मेरे पास अनेक लोग आते हैं और कहते हैं कि हम काम के संबंध में सोच— विचार करते हैं, पढ़ते हैं, चित्र देखते हैं, अश्लील चित्र देखते हैं। वही उनका कामानद है, सेक्स का शिखर अनुभव है। लेकिन जब काम का असली क्षण आता है तो उन्हें अचानक पता चलता है कि उसमें उनकी रुचि नहीं है। यहं। तक कि वे उसमें अपने को नपुंसक अनुभव करते हैं। सोच—विचार के क्षण में ही उन्हें काम—ऊर्जा का अहसास होता है, लेकिन जब वे कृत्य में उतरना चाहते हैं तो उन्हें पता चलता है कि उसके लिए उनके पास ऊर्जा ही नहीं है। तब उन्हें कामवासना का भी पता नहीं चलता, उन्हें लगता है कि उनका शरीर मुर्दा हो गया है।
उन्हें क्या हो रहा है? यही हो रहा है कि उनका काम—कृत्य भी मानसिक
हो गया है। वे इसके बारे में सिर्फ सोच सकते हैं, वे कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि कृत्य में तो पूरे का पूरा जाना पड़ता है। और जब भी पूरे होकर कृत्य में संलग्न होने की बात उठती है, मन बेचैन हो जाता है। क्योंकि तब मन मालिक नहीं रह सकता, तब मन नियंत्रण नहीं कर सकता।
तंत्र काम—कृत्य को, संभोग को तुम्हें अखंड बनाने के लिए उपयोग में लाता है। लेकिन तब तुम्हें इसमें बहुत ध्यानपूर्वक उतरना होगा। तब तुम्हें काम के संबंध में वह सब भूल जाना होगा जो तुमने सुना है, पढ़ा है; जो समाज ने, संगठित धर्मों ने, धर्मगुरुओं ने तुम्हें सिखाया है। सब कुछ भूल जाओ और समग्रता से इसमें उतरो। भूल जाओ कि नियंत्रण करना है। नियंत्रण ही बाधा है। उचित है कि तुम उस पर नियंत्रण करने की बजाय अपने को उसके हाथों में छोड़ दो, तुम ही उसके बस में हो रहो। संभोग में पागल की तरह जाओ। अ—मन

4

की अवस्था पागलपन जैसी मालूम पड़ती है। शरीर ही बन जाओ, पशु ही बन जाओ। क्योंकि पशु पूर्ण है।
जैसा आधुनिक मनुष्य है, उसे पूर्ण बनाने की सबसे सरत्न संभावना केवल काम में है, सेक्स में है। क्योंकि काम तुम्हारे भीतर गहनतम जैविक केंद्र है। तुम उससे ही उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी प्रत्येक कोशिका काम—कोशिका है। तुम्हारा समस्त शरीर काम—ऊर्जा की घटना।
यह पहला सूत्र कहता है: 'काम— आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि
पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।’
इसी में सारा फर्क, सारा भेद निहित है। तुम्हारे लिए काम—कृत्य, संभोग महज राहत का, अपने को तनाव—मुक्त करने का उपाय है। इसलिए जब तुम संभोग में उतरते हो तो तुम्हें बहुत जल्दी रहती है, तुम किसी तरह छुटकारा चाहते हो। छुटकारा यह कि जो ऊर्जा का अतिरेक तुम्हें पीड़ित किए है वह निकल जाए और तुम चैन अनुभव करो। लेकिन यह चैन एक तरह की दुर्बलता है। ऊर्जा की अधिकता तनाव पैदा करती है, उत्तेजना पैदा करती है और तुम्हें लगता है कि उसे फेंकना जरूरी है। जब वह ऊर्जा बह जाती है तो तुम कमजोरी अनुभव करते हो और तुम उसी कमजोरी को विश्राम मान लेते हो। क्योंकि ऊर्जा की बाढ़ समाप्त हो गई, उत्तेजना जाती रही, इसीलिए तुम्हें विश्राम मालूम पड़ता है।
लेकिन यह विश्राम नकारात्मक विश्राम है। अगर सिर्फ ऊर्जा को बाहर फेंककर तुम विश्राम प्राप्त करते हो तो यह विश्राम बहुत महंगा है। और तो भी वह सिर्फ शारीरिक विश्राम होगा। वह गहरा नहीं होगा, वह आध्यात्मिक नहीं होगा।
यह पहला सूत्र कहता है कि जल्दबाजी मत करो और अंत के लिए उतावले मत बनो, आरंभ में बने रहो। काम—कृत्य के दो भाग हैं. आरंभ और अंत। तुम आरंभ के साथ रहो। आरंभ का भाग ज्यादा विश्रामपूर्ण है, ज्यादा उष्ण है। लेकिन अंत पर पहुंचने की जल्दी मत करो। अंत को बिलकुल भूल जाओ।
'काम—आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो।’
जब तुम ऊर्जा से भरे हो तो उससे छुटकारे की मत सोचो, इस ऊर्जा की बाढ़
के साथ रहो। वीर्य—सख्लन की फिक्र मत करो, उसे पूरी तरह भूल जाओ। इस प्रेमपूर्ण आरंभ में पूरी तरह उपस्थित होकर स्थिर रहो। अपनी प्रेमिका या प्रेमी के साथ ऐसे हो रहो मानो दोनों एक हो गए हों। एक वर्तुल बना लो।
तीन संभावनाएं हैं। दो प्रेमी प्रेम में तीन आकार, ज्यामितिक आकार निर्मित कर सकते हैं। शायद तुमने इसके बारे में पढ़ा भी होगा, या कोई पुरानी कीमिया की तस्वीर भी देखी हो, जिसमें एक स्त्री और एक पुरुष तीन ज्यामितिक आकारों में नग्न खड़े हैं। एक आकार चतुर्भुज है, दूसरा त्रिभुज है और तीसरा वर्तुल है। यह एल्केमी और तंत्र की भाषा में काम—क्रोध का बहुत पुराना विश्लेषण है।
आमतौर से जब तुम संभोग में होते हो तो वहां दो नहीं, चार व्यक्ति होते हैं। वही है चतुर्भुज। उसमें चार कोने हैं, क्योंकि तुम दो हिस्सों में बंटे हो। तुम्हारा एक हिस्सा विचार करने वाला है और दूसरा हिस्सा भावुक हिस्सा है। वैसे ही तुम्हारा साथी भी दो हिस्सों में बंटा है। तुम चार व्यक्ति हो। दो नहीं, चार व्यक्ति प्रेम कर रहे हैं। यह एक भीड़ है और इसमें वस्तुत: प्रगाढ मिलन की संभावना नहीं है। इस मिलन के चार कोने हैं और मिलन झूठा है। वह मिलन जैसा मालूम पड़ता है, लेकिन मिलन है नहीं। इसमें प्रगाढ़ मिलन की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि तुम्हारा गहन भाग दबा पड़ा है, तुम्हारे साथी का गहन भाग दबा पड़ा है। केवल दो सिर, दो विचार की प्रक्रियाएं मिल रही हैं, भाव की प्रक्रियाएं अनुपस्थित हैं। वे दबी— छिपी हैं।
दूसरी कोटि का मिलन त्रिभुज जैसा होगा। तुम दो हो, आधार के दो कोने और किसी
क्षण अचानक तुम दोनों एक हो जाते हो—त्रिभुज के तीसरे कोने की तरह। किसी आकस्मिक क्षण में तुम्हारी दुई मिट जाती है और तुम एक हो जाते हो। यह मिलन चतुर्भुजी मिलन से बेहतर है, क्योंकि कम से कम एक क्षण के लिए ही सही, एकता सध जाती है। वह एकता तुम्हें स्वास्थ्य देती है, शक्ति देती है। तुम फिर युवा और जीवंत अनुभव करते हो।

5

और अगर तुम उस ऊर्जा के प्रवाह में, उसे शिखर तक पहुंचाए बिना, विलीन
हो सके; अगर तुम काम—आलिंगन के आरंभ के साथ, उत्तप्त हुए बिना सिर्फ उसकी उष्णता के साथ रह सके तो वे दोनों उष्णताएं मिल जाएंगी और तुम काम—कृत्य को बहुत लंबे समय तक जारी रख सकते हो।
यदि सख्लन न हो, यदि ऊर्जा को फेंका न जाए तो संभोग ध्यान बन जाता है
और तुम पूर्ण हो जाते हो। इसके द्वारा तुम्हारा विभाजित व्यक्तित्व अविभाजित हो जाता है, अखंड हो जाता है। चित्त की सब रुग्णता इस विभाजन से पैदा होती है। और जब तुम जुड़ते हो, अखंड होते हो तो तुम फिर बच्चे हो जाते हो, निर्दोष हो जाते हो।
और एक बार अगर तुम इस निर्दोषिता को उपलब्ध हो गए तो फिर तुम अपने समाज में उसकी जरूरत के अनुसार जैसा चाहो वैसा व्यवहार कर सकते हो। लेकिन तब तुम्हारा यह व्यवहार महज अभिनय होगा, तुम उससे ग्रस्त नहीं होगे। तब यह एक जरूरत है जिसे तुम पूरा कर रहे हो। तब तुम उसमें नहीं हो, तुम मात्र अभिनय कर रहे हो। तुम्हें झूठा चेहरा लगाना होगा, क्योंकि तुम एक झूठे संसार में रहते हो। अन्यथा संसार तुम्हें कुचल देगा, मार डालेगा।
हमने अनेक सच्चे चेहरों को मारा है। हमने जीसस को सूली पर चढ़ा दिया, क्योंकि वे सच्चे मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगे थे। झूठा समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता है। हमने सुकरात को जहर दे दिया, क्योंकि वे भी सच्चे मनुष्य की तरह पेश आने लगे थे। समाज जैसा चाहे वैसा करो, अपने लिए और दूसरों के लिए व्यर्थ की झंझट मत पैदा करो। लेकिन जब तुमने अपने सच्चे स्वरूप को जान लिया, उसकी अखंडता को पहचान लिया तो यह झूठा समाज तुम्हें फिर रुग्ण नहीं कर सकता, विक्षिप्त नहीं कर सकता।
'काम— आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।’
अगर स्खलन होता है तो ऊर्जा नष्ट होती है और तब अग्नि नहीं बचती। तुम कुछ प्राप्त किए बिना ऊर्जा खो देते हो।
दूसरा सूत्र:
ऐसे काम— आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियां पत्तों की भांति कांपने लगे उस कंपन में प्रवेश करो।
जब प्रेमिका या प्रेमी के साथ ऐसे आलिंगन में, ऐसे प्रगाढ़ मिलन में तुम्हारी इंद्रियां पत्तों की तरह कांपने लगें, उस कंपन में प्रवेश कर जाओ।
तुम भयभीत हो गए हो, संभोग में भी तुम अपने शरीर को अधिक हलचल नहीं करने देते हो। क्योंकि अगर शरीर को भरपूर गति करने दिया जाए तो पूरा शरीर इसमें संलग्न हो जाता है तुम उसे तभी नियंत्रण में रख सकते हो जब वह काम— केंद्र तक ही सीमित रहता है। तब उस पर मन का नियंत्रण रह सकता है। लेकिन जब वह पूरे शरीर में फैल जाता है तब तुम उसे नियंत्रण में नहीं रख सकते। तुम कांपने लगोगे, चीखने—चिल्लाने लगोगे। और जब शरीर मालिक हो जाता है तो फिर तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता।
हम शारीरिक गति का दमन करते हैं। विशेषकर हम स्त्रियों को दुनियाभर में शारीरिक हलन—चलन करने से रोकते हैं। वे संभोग में लाश की तरह पड़ी रहती हैं। तुम उनके साथ जरूर कुछ कर रहे हो, लेकिन वे तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं करतीं, वे निष्क्रिय सहभागी बनी रहती हैं। ऐसा क्यों होता है? क्यों सारी दुनिया में पुरुष स्त्रियों को इस तरह दबाते हैं?
कारण भय है। क्योंकि एक बार अगर स्त्री का शरीर पूरी तरह कामाविष्ट
हो जाए तो पुरुष के लिए उसे संतुष्ट करना बहुत कठिन हो जाएगा। क्योंकि स्त्री एक श्रृंखला में, एक के बाद एक अनेक बार आर्गाज्म के शिखर को उपलब्ध हो सकती है, पुरुष वैसा नहीं हो सकता। पुरुष एक बार ही आर्गाज्म के शिखर—अनुभव को छू सकता है, स्त्री अनेक बार छू सकती है। स्त्रियों के ऐसे अनुभव के अनेक विवरण मिले हैं। कोई भी स्त्री एक श्रृंखला में तीन—तीन बार शिखर—अनुभव को प्राप्त हो सकती है, लेकिन पुरुष एक बार ही हो सकता है। सच तो यह है कि पुरुष के शिखर—अनुभव से स्त्री और—और शिखर—अनुभव के लिए उत्तेजित होती है, तैयार होती है। तब बात कठिन हो जाती है। फिर क्या किया जाए?

तीसरा सूत्र:
काम— आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।

एक बार तुम इसे जान गए तो प्रेम—पात्र की, साथी की जरूरत भी नहीं है।
तब तुम कृत्य का स्मरण कर उसमें प्रवेश कर सकते हो। लेकिन पहले भाव का होना जरूरी है। अगर भाव से परिचित हो तो साथी के बिना भी तुम कृत्य में प्रवेश कर सकते हो।
यह थोड़ा कठिन है, लेकिन यह होता है। और जब तक यह नहीं होता, तुम पराधीन रहते हो; एक पराधीनता निर्मित हो जाती है। और यह प्रवेश अनेक कारणों से घटित होता है। अगर तुमने उसका अनुभव किया हो, अगर तुमने उस क्षण को जाना हो जब तुम नहीं थे, सिर्फ तरंगायित ऊर्जा एक होकर साथी के साथ वर्तुल बना रही थी तो उस क्षण साथी भी नहीं रहता है, केवल तुम होते हो। वैसे ही उस क्षण तुम्हारे साथी के लिए तुम नहीं होते, वही होता है। वह एकता तुममें होती है, साथी नहीं रह जाता है। और यह भाव स्त्रियों के लिए सरत्न है, क्योंकि स्त्रियां आख बंद करके ही संभोग में उतरती हैं।
इस विधि का प्रयोग करते समय आख बंद रखना अच्छा है तो ही वर्तुल का आंतरिक भाव, एकता का आंतरिक भाव निर्मित हो सकता है। और फिर उसका स्मरण करो। आख बंद कर लो और ऐसे लेट जाओ मानो तुम अपने साथी के साथ लेटे हो। स्मरण करो और भाव करो। तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा, तरंगायित होने लगेगा। उसे होने दो। यह बिलकुल भूल जाओ कि दूसरा नहीं है। ऐसे गति करो जैसे कि दूसरा उपस्थित है। शुरू में कल्पना से ही काम लेना होगा। एक बार जान गए कि यह कल्पना नहीं, यथार्थ है; तब दूसरा मौजूद है।
ऐसे गति करो जैसे कि तुम वस्तुत: संभोग में उतर रहे हो, वह सब कुछ करो
जो तुम अपने प्रेम—पात्र के साथ करते; चीखो, डोलो, कांपो। शीघ्र वर्तुल निर्मित हो जाएगा। और यह वर्तुल अदभुत है। शीघ्र ही तुम्हें अनुभव होगा कि वर्तुल बन गया, लेकिन अब यह वर्तुल स्त्री—पुरुष: से नहीं बना है। अगर तुम पुरुष हो तो सारा ब्रह्मांड स्त्री बन गया है और अगर तुम स्त्री हो तो सारा ब्रह्मांड पुरुष बन गया है। अब तुम खुद अस्तित्व के साथ प्रगाढ़ मिलन में हो और उसके लिए दूसरा द्वार की तरह अब नहीं है।
दूसरा मात्र द्वार है। किसी स्त्री के साथ संभोग करते हुए तुम दरअसल अस्तित्व के साथ ही संभोग में होते हो। स्त्री मात्र द्वार है, पुरुष मात्र द्वार है। दूसरा संपूर्ण के लिए द्वार भर है। लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें इसका एहसास नहीं होता। अगर तुम प्रगाढ़ मिलन में, सघन आलिंगन में घंटों रह सको तो दूसरा विस्मृत हो जाएगा, दूसरा समष्टि का विस्तार भर रह जाएगा।
अगर एक बार इस विधि को तुमने जान लिया तो अकेले भी तुम इसका प्रयोग कर सकते हो। और जब अकेले रहकर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हें एक नयी स्वतंत्रता प्रदान करेगा, वह तुम्हें दूसरे से स्वतंत्र कर देगा। तब वस्तुत: समूचा अस्तित्व दूसरा हो जाता है, तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। और फिर तो इस विधि का प्रयोग निरंतर किया जा सकता है और तुम सतत अस्तित्व के साथ आलिंगन में, संवाद में रह सकते हो।
और तब तुम इस विधि का प्रयोग दूसरे आयामों में भी कर सकते हो। सुबह टहलते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तब तुम हवा के साथ, उगते सूरज के साथ, चांद—तारों के साथ, पेड़—पौधों के साथ लयबद्ध हो सकते हो। रात में तारों को देखते हुए इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। चांद को देखते हुए कर सकते हो। तुम पूरी सृष्टि के साथ काम—भोग में उतर सकते हो, अगर तुम्हें इसके घटित होने का राज पता चल जाए। लेकिन मनुष्यों के साथ प्रयोग आरंभ करना अच्छा रहेगा। कारण यह है कि मनुष्य तुम्हारे सबसे निकट हैं, वे तुम्हारे लिए जगत के निकटतम अंश हैं। लेकिन फिर उन्हें छोड़ा जा सकता है, उनके बिना भी चलेगा। तुम छलांग ले सकते हो और द्वार को बिलकुल भूल सकते हो।
'ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।’
और तुम रूपांतरित हो जाओगे, तुम नए हो जाओगे।
तंत्र काम का उपयोग वाहन के रूप में करता है। वह ऊर्जा है, उसे वाहन या माध्यम बनाया जा सकता है। काम तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। वह तुम्हें

9

लेकिन तंत्र का कहना है—और केवल तंत्र का कहना है—कि यह मालकियत झूठी होगी, रुग्ण होगी, क्योंकि तुम सच में इस प्रवाह से पृथक नहीं हो सकते। वह प्रवाह तुम हो। सभी विभाजन झूठे होंगे, सभी विभाजन थोपे हुए होंगे। बुनियादी बात यह है कि विभाजन संभव ही नहीं है, क्योंकि तुम्हीं वह प्रवाह हो, तुम उसके अंग हो, उसकी एक लहर हो। संभव है कि तुम बर्फ की तरह जम गए हो और इस तरह तुमने अपने को प्रवाह से अलग कर लिया है, लेकिन वह जमना, वह अलग होना मृतवत होना है। सारी मनुष्यता मृतवत हो गई है। कोई भी आदमी वास्तव में जीवित नहीं है। तुम नदी में बहते हुए मुर्दों जैसे हो। पिघलो! तंत्र कहता है: पिघलने की चेष्टा करो। हिमखंड की तरह मत जीओ, पिघलो और नदी के साथ एक हो जाओ। नदी के साथ एक होकर, नदी में विलीन होकर बोधपूर्ण होओ और तब रूपांतरण घटित होगा। तब रूपांतरण है। संघर्ष से नहीं, बोध से रूपांतरण घटित होता है।
ये तीन विधियां बहुत वैज्ञानिक विधियां हैं। लेकिन तब काम या सेक्स वही नहीं रहता है जो तुम उसे समझते हो, तब वह कुछ और ही चीज है। तब सेक्स कोई क्षणिक राहत नहीं है, तब वह ऊर्जा को बाहर फेंकना भर नहीं है। तब इसका अंत नहीं आता, तब वह ध्यानपूर्ण वर्तुल बन जाता है।

इससे संबंधित कुछ और विधियां:

बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है उस हर्ष में लीन होओ। उस हर्ष में प्रवेश करो और उसके साथ एक हो जाओ। किसी भी हर्ष से काम चलेगा।
यह एक उदाहरण भर है।
'बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है।'
तुम्हें अचानक कोई मित्र मिल जाता है जिसे देखे हुए बहुत दिन, बहुत वर्ष हो गए है। और तुम अचानक हर्ष से, आह्लाद से भर जाते हो। लेकिन अगर तुम्हारा ध्यान मित्र पर है, हब यात्रा
पर नहीं तो तुम चूक रहे हो। और यह हर्ष क्षणिक होगा। तुम्हारा सारा ध्यान मित्र पर केंद्रित होगा, तुम उससे बातचीत करने में मशगूल रहोगे, तुम पुरानी स्मृतियों को ताजा करने में लगे रहोगे। तब तुम इस हर्ष को चूक जाओगे और हर्ष भी विदा हो जाएगा। इसलिए जब किसी मित्र से मिलना हो और अचानक तुम्हारे हृदय में हर्ष उठे तो उस हर्ष पर अपने को एकाग्र करो। उस हर्ष को महसूस करो, उसके साथ एक हो जाओ। और तब हर्ष से भरे हुए और बोधपूर्ण रहते हुए अपने मित्र को मिलो। मित्र को बस परिधि पर रहने दो और तुम अपने सुख के भाव में केंद्रित हो जाओ।
अन्य अनेक स्थितियों में भी यह किया जा सकता है। सूरज उग रहा है और तुम अचानक अपने भीतर भी कुछ उगता हुआ अनुभव करते हो। तब सूरज को भूल जाओ, उसे परिधि पर ही रहने दो और तुम उठती हुई ऊर्जा के अपने भाव में केंद्रित हो जाओ। जब तुम उस पर ध्यान दोगे, वह भाव फैलने लगेगा। और वह भाव तुम्हारे सारे शरीर पर, तुम्हारे पूरे अस्तित्व पर फैल जाएगा। और बस दर्शक ही मत बने रही, उसमें विलीन हो जाओ।
ऐसे क्षण बहुत थोड़े होते हैं जब तुम हर्ष या आह्लाद अनुभव करते हो, सुख और आनंद से भरते हो। और तुम उन्हें भी चूक जाते हो, क्योंकि तुम विषय— केंद्रित होते हो। जब भी प्रसन्नता आती है, सुख आता है, तुम समझते हो कि यह बाहर से आ रहा है।
किसी मित्र से मिलते हो, स्वभावत: लगता है कि सुख मित्र से आ रहा है, मित्र के मिलने से आ रहा है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। सुख सदा तुम्हारे भीतर है। मित्र तो सिर्फ परिस्थिति निर्मित करता है। मित्र ने सुख को बाहर आने का अवसर दिया और उसने तुम्हें उस सुख को देखने में हाथ बंटाया। यह नियम सुख के लिए ही नहीं, सब चीजों के लिए है, क्रोध, शोक, संताप, सुख, सब पर लागू होता है। ऐसा ही है। दूसरे केवल परिस्थिति बनाते हैं जिसमें जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह प्रकट हो जाता है। वे कारण नहीं हैं, वे तुम्हारे भीतर कुछ पैदा नहीं करते हैं। जो भी घटित हो रहा है वह

11

तुम्हें घटित हो रहा है। वह सदा है। मित्र का मिलन सिर्फ अवसर बना, जिसमें अव्यक्त व्यक्त हो गया, अप्रकट प्रकट हो गया।
जब भी यह सुख घटित हो, उसके आंतरिक भाव में स्थित रहो और तब जीवन में सभी चीजों के प्रति तुम्हारी दृष्टि भिन्न हो जाएगी। नकारात्मक भावों के साथ भी यह प्रयोग किया जा सकता है। जब क्रोध आए तो उस व्यक्ति की फिक्र मत करो जिसने क्रोध करवाया, उसे परिधि पर छोड़ दो और तुम क्रोध ही हो जाओ। क्रोध को उसकी समग्रता में अनुभव करो, उसे अपने भीतर पूरी तरह घटित होने दो।
उसे तर्क—संगत बनाने की चेष्टा मत करो, यह मत कहो कि इस व्यक्ति ने क्रोध करवाया। उस व्यक्ति की निंदा मत करो। वह तो निमित्त मात्र है। उसका उपकार मानो कि उसने तुम्हारे भीतर दमित भावों को प्रकट होने का मौका दिया। उसने तुम पर कहीं चोट की और वहां एक घाव छिपा पड़ा था। अब तुम्हें उस घाव का पता चल गया। अब तुम वह घाव ही बन जाओ।
विधायक या नकारात्मक, किसी भी भाव के साथ प्रयोग करो और तुम में भारी परिवर्तन घटित होगा। अगर भाव नकारात्मक है तो उसके प्रति सजग होकर तुम उससे मुक्त हो जाओगे। और अगर भाव विधायक है तो तुम भाव ही बन जाओगे। अगर यह सुख है तो तुम सुख बन जाओगे। लेकिन अगर वह क्रोध है तो क्रोध विसर्जित हो जाएगा। और नकारात्मक और विधायक भावों का भेद भी यही है। अगर तुम किसी भाव के प्रति सजग होते हो और उससे वह भाव विसर्जित हो जाता है तो समझना कि वह नकारात्मक भाव है। और यदि किसी भाव के प्रति सजग होने से तुम वह भाव ही बन जाते हो और वह भाव फैलकर तुम्हारे तन—प्राण पर छा जाता है तो समझना कि वह विधायक भाव है। दोनों मामलों में बोध अलग—अलग ढंग से काम करता है। अगर कोई जहरीला भाव है तो बोध के द्वारा तुम उससे मुक्त हो सकते हो। और अगर भाव शुभ है, आनंदपूर्ण है, सुंदर है तो तुम उससे एक हो जाते हो। बोध उसे प्रगाढ़ कर देता है।
मेरे लिए यही कसौटी है। अगर कोई वृत्ति बोध से सघन होती है तो वह शुभ
है और अगर बोध से विसर्जित हो जाती है तो उसे अशुभ मानना चाहिए। जो चीज होश के साथ न जी सके वह पाप है और जो होश के साथ वृद्धि को प्राप्त हो वह पुण्य है। पुण्य और पाप सामाजिक धारणाएं नहीं हैं, वे आंतरिक उपलब्धियां हैं। अपने बोध को जगाओ, उसका उपयोग करो। यह ऐसा ही है जैसे कि अंधकार है और तुम दीया जलाते हो। दीए के जलते ही अंधकार विदा हो जाएगा। प्रकाश के आने से अंधेरा नहीं हो जाता है। क्योंकि वस्तुत: अंधेरा नहीं था। अंधकार प्रकाश का अभाव था, वह प्रकाश की अनुपस्थिति था। लेकिन प्रकाश के आने से वहां मौजूद अनेक चीजें प्रकाशित भी हो जाएंगी, प्रकट भी हो जाएंगी। प्रकाश के आने से ये अलमारियां, किताबें, दीवारें विलीन नहीं हो जाएंगी। अंधकार में वे छिपी थीं, तुम उन्हें नहीं देख सकते थे। प्रकाश के आने से अंधकार विदा हो गया, लेकिन उसके साथ ही जो यथार्थ था वह प्रकट हो गया। बोध के द्वारा जो भी अंधकार की तरह नकारात्मक है—घृणा, क्रोध, दुख, हिसा—वह विसर्जित हो जाएगा और उसके साथ ही प्रेम, हर्ष, आनंद जैसी विधायक चीजें पहली बार तुम पर प्रकट हो जाएंगी।
इसलिए 'बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।’

पांचवीं तंत्र विधि:
भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी का स्वाद ही बन जाओ और उससे भर जाओ।

हम खाते रहते हैं, हम खाए बगैर नहीं रह सकते। लेकिन हम बहुत बेहोशी में भोजन करते हैं—यंत्रवत। और अगर स्वाद न लिया जाए तो तुम सिर्फ पेट को भर रहे हो।
तो धीरे— धीरे भोजन करो, स्वाद लेकर करो और स्वाद के प्रति सजग रही।
और स्वाद के प्रति सजग होने के लिए धीरे— धीरे भोजन करना बहुत जरूरी है। तुम भोजन को बस निगलते मत जाओ। आहिस्ते—आहिस्ते उसका स्वाद लो और स्वाद ही बन जाओ। जब तुम मिठास अनुभव करो तो मिठास ही बन जाओ। और तब वह मिठास

12

सिर्फ मुंह में नहीं, सिर्फ जीभ में नहीं, पूरे शरीर में अनुभव की जा सकती है। वह सचमुच पूरे शरीर पर फैल जाएगा। तुम्हें लगेगा कि मिठास—या कोई भी चीज—लहर की तरह फैलती जा रही है। इसलिए तुम जो कुछ खाओ, उसे स्वाद लेकर खाओ और स्वाद ही बन जाओ।
यहीं तंत्र दूसरी परंपराओं से सर्वथा भिन्न और विपरीत मालूम पड़ता है। जैन अस्वाद की बात करते हैं। महात्मा गांधी ने तो अपने आश्रम में अस्वाद को एक नियम बना रखा था। नियम है कि खाओ, लेकिन स्वाद के लिए मत खाओ। स्वाद मत लो, स्वाद को भूल जाओ। वे कहते हैं कि भोजन आवश्यक है, लेकिन यंत्रवत भोजन करो। स्वाद वासना है, स्वाद मत लो। तंत्र कहता है कि जितना स्वाद ले सकी उतना स्वाद लो। ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनो, जीवंत बनो। इतना ही नहीं कि संवेदनशील बनो, स्वाद ही बन जाओ। अस्वाद से तुम्हारी इंद्रियां मर जाएंगी, उनकी संवेदनशीलता जाती रहेगी। और संवेदनशीलता के मिटने से तुम अपने शरीर को, अपने भावों को अनुभव करने में असमर्थ हो जाओगे। और तब फिर तुम अपने सिर में केंद्रित होकर रह जाओगे। और सिर में केंद्रित होना विभाजित होना है।
तंत्र कहता है अपने भीतर विभाजन मत पैदा करो। स्वाद लेना सुंदर है, संवेदनशील होना सुंदर है। और तुम जितने संवेदनशील होंगे, उतने ही जीवंत होंगे। और जितने तुम जीवंत होगे, उतना ही अधिक जीवन तुम्हारे अंतस में प्रविष्ट होगा। तुम अधिक खुलोगे, उन्मुक्त अनुभव करोगे।
तुम स्वाद लिए बिना कोई चीज खा सकते हो, यह कठिन नहीं है। तुम किसी को छुए बिना छू सकते हो, यह भी कठिन नहीं है। हम वही तो करते हैं। तुम किसी के साथ हाथ मिलाते हो और उसे स्पर्श नहीं करते। स्पर्श करने के लिए तुम्हें हाथ तक आना पड़ेगा, हाथ में उतरना पड़ेगा। स्पर्श करने के लिए तुम्हें तुम्हारी हथेली, तुम्हारी अंगुलियां बन जाना पड़ेगा—मानो तुम, तुम्हारी आत्मा तुम्हारे हाथ में उतर आयी है। तभी तुम स्पर्श कर सकते हो। वैसे तुम किसी का हाथ हाथ में लेकर भी उससे अलग— थलग रह सकते हो। तब तुम्हारा मुर्दा हाथ किसी के हाथ में होगा। वह छूता हुआ मालूम पड़ेगा, लेकिन वह छूता नहीं है।
हम स्पर्श करना भूल गए हैं। हम किसी को स्पर्श करने से डरते हैं, क्योंकि स्पर्श करना कामुकता का प्रतीक बन गया है। तुम किसी भीड़ में, बस या रेल में अनेक लोगों को छूते हुए खड़े हो सकते हो, लेकिन वास्तव में न तुम उन्हें छू रहे हो और न वे तुम्हें छू रहे हैं। सिर्फ शरीर एक—दूसरे के संपर्क में हैं, लेकिन तुम दूर—दूर हो। और तुम इस फर्क को समझ सकते हो। अगर तुम भीड़ में किसी को वास्तव में स्पर्श करो तो वह बुरा मान जाएगा। तुम्हारा शरीर बेशक छू सकता है, लेकिन तुम्हें उस शरीर में नहीं होना चाहिए। तुम्हें शरीर से अलग रहना चाहिए, मानो तुम शरीर में नहीं हो, मानो कोई मुर्दा शरीर स्पर्श कर रहा है।
यह संवेदनहीनता बुरी है। यह बुरी है, क्योंकि तुम अपने को जीवन से बचा रहे हो। तुम मृत्यु से इतने भयभीत हो और तुम मरे हुए ही हो। सच तो यह है कि तुम्हें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि कोई भी मरने वाला नहीं है। तुम तो पहले से ही मरे हुए हो। और तुम्हारे भयभीत होने का कारण भी यही है कि तुम कभी जीए ही नहीं। तुम जीवन से चूकते रहे और मृत्यु करीब आ रही है।
जो व्यक्ति जीवित है वह मृत्यु से नहीं डरेगा, क्योंकि वह जीवित है।
जब तुम वास्तव में जीते हो तो मृत्यु का भय नहीं रहता। तब तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। जब मृत्यु आएगी तो तुम इतने संवेदनशील होंगे कि मृत्यु का भी आनंद लोगे। मृत्यु एक महान अनुभव बनने वाली है। अगर तुम सचमुच जिंदा हो तो तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। और तब मृत्यु मृत्यु नहीं रहेगी। अगर तुम मृत्यु को भी जी सको—जब तुम अपने केंद्र को लौट रहे हो, जब तुम विलीन हो रहे हो, उस क्षण यदि तुम अपने मरते हुए शरीर के प्रति भी सजग रह सको, अगर तुम इसको भी जी सको—तो तुम अमृत हो गए।
'भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी का स्वाद ही बन जाओ, और उससे भर जाओ।’

13

पानी पीते हुए पानी का ठंडापन अनुभव करो। आंखें बंद कर लो, धीरे—धीरे पानी पीओ और उसका स्वाद लो। पानी की शीतलता को महसूस करो और महसूस करो कि तुम शीतलता ही बन गए हो। जब तुम पानी पीते हो तो पानी की शीतलता तुममें प्रवेश करती है, तुम्हारा अंग बन जाती है। तुम्हारा मुंह शीतलता को छूता है, तुम्हारी जीभ उसे छूती है और ऐसे वह तुम में प्रविष्ट हो जाती है। उसे तुम्हारे पूरे शरीर में प्रविष्ट होने दो। उसकी लहरों को फैलने दो और तुम अपने पूरे शरीर में यह शीतलता महसूस करोगे। इस भांति तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी, विकसित होगी और तुम ज्यादा जीवंत, ज्यादा भरे—पूरे हो जाओगे।
हम हताश, रिक्त और खाली अनुभव करते हैं। और हम कहते हैं कि जीवन रिक्त है। लेकिन जीवन के रिक्त होने का कारण हम स्वयं हैं। हम जीवन को भरते नहीं हैं। हम उसे भरने नहीं देते हैं। हमने अपने चारों ओर एक कवच लगा रखा है— सुरक्षा—कवच। हम वलनरेबल होने से, खुले रहने से डरते हैं। हम अपने को हर चीज से बचाकर रखते हैं। और तब हम कब बन जाते हैं—मृत लाशें।
तंत्र कहता है जीवंत बनो, क्योंकि जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है। तुम जितने जीवंत होगे उतने ही परमात्मा होगे। और जब समग्रत: जीवंत होगे तो तुम्हारे लिए कोई मृत्यु नहीं है।

आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
चौतीसवां प्रवचन

तांत्रिक संभोग और समाधि

तुम्हारे प्रश्नों को लेने के पूर्व कुछ अन्य बातो को स्पष्ट करना जरूरी है, क्योंकि उनसे तुम्हें तंत्र के अर्थ और अभिप्राय को समझने में मदद मिलेगी।
तंत्र कोई नैतिक धारणा नहीं है। वह न नैतिक है न अनैतिक, तंत्र अधिनैतिक है। तंत्र विज्ञान है। और विज्ञान नैतिक— अनैतिक कुछ नहीं है। तुम्हारी अनैतिक और नैतिक धारणाएं तंत्र के लिए अप्रासंगिक हैं। तंत्र को इस बात से लेना—देना नहीं है कि आदमी का आचरण क्या होना चाहिए। तंत्र आदर्शों की चिंता नहीं लेता है। तंत्र की बुनियादी चिंता यह है कि यथार्थ क्या है, तुम वास्तव में क्या हो। इस भेद को ठीक से समझना जरूरी है। नैतिकता आदर्शों की फिक्र करती है, उसे फिक्र है कि तुम्हें कैसा होना चाहिए, क्या होना चाहिए। इसलिए नैतिकता बुनियादी रूप से निंदात्मक है। तुम कभी आदर्श नहीं हो सकते, इसलिए निंदित हो जाते हो। सब नैतिकता अपराध— भाव निर्मित करती है। तुम कभी आदर्श को नहीं पहुंच सकते, तुम सदा पीछे रह जाते हो। तुम्हारे और आदर्श के बीच सदा खाई बनी रहेगी, क्योंकि आदर्श असंभव है और नैतिकता उसे और भी असंभव बना देती है। आदर्श सदा भविष्य में है और तुम अभी तो जैसे हो वैसे हो। और तुम सदा अपनी तुलना आदर्श से करते रहते हो। तुम कभी पूर्ण मनुष्य नहीं हो, सदा कुछ न कुछ कमी रह जाती है। तब तुम अपने को अपराधी अनुभव करते हो, आत्म—निंदा अनुभव करते हो। तंत्र आत्म—निंदा के विरोध में है, क्योंकि आत्म—निंदा तुम्हें कभी रूपांतरित नहीं कर सकती। निंदा से सिर्फ पाखंड पैदा होता है। तब तुम यह दिखाने की चेष्टा करते हो कि तुम वह हो जो कि तुम वास्तव में नहीं हो। पाखंड का अर्थ यह है कि तुम आदर्श व्यक्ति नहीं हो, तुम जो हो वही हो, लेकिन दिखाते हो कि आदर्श व्यक्ति हो। उससे तुम्हारे भीतर टूट पैदा होती है, तुम खंडित हो जाते हो। तब तुम एक झूठा चेहरा ओढ़ लेते हो और तुम्हारे भीतर एक झूठा आदमी पैदा हो जाता है। तंत्र बुनियादी रूप से सच्चे आदमी की खोज है, झूठे की नहीं।
नैतिकता आवश्यक रूप से पाखंड पैदा करती है। उसके लिए ऐसा करना अनिवार्य है। पाखंड और नैतिकता में चोली—दामन का संबंध है। पाखंड नैतिकता का अंग है, उसकी छाया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ती है, क्योंकि नीतिवादी लोग ही पाखंड की सर्वाधिक निंदा करते हैं। लेकिन पाखंड के निर्माता वे ही हैं। और जब तक दुनिया से नैतिकता नहीं जाती तब तक पाखंड भी नहीं जा सकता है। वे दोनों साथ—साथ रहेंगे, वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
नीति तुम्हें आदर्श देती है और तुम आदर्श नहीं हो। आदर्श तुम्हें दिया ही इसलिए जाता है कि तुम आदर्श नहीं हो। लेकिन तब तुम अपने को गलत समझने लगते हो। और जिसे तुम गलत समझते हो वही तुम्हारा स्वाभाविक जीवन है। वह तुम्हें निसर्ग से मिला है, उसे लेकर तुम पैदा हुए हो। और तत्काल उसके साथ कुछ नहीं किया जा सकता है, तुम उसे बदल नहीं सकते हो। बदलना इतना आसान नहीं है। तुम केवल उसका दमन कर सकते हो। दमन आसान है।''
लेकिन तुम दो चीजें कर सकते हो। तुम एक मुखौटा, एक झूठा चेहरा निर्मित
कर सकते हो, तुम वह होने का अभिनय कर सकते हो जो तुम नहीं हो। उससे तुम अपना बचाव कर लेते हो, तुम समाज के बीच ज्यादा आसानी से, ज्यादा सुविधा से रह सकते हो। और तुम्हें भीतर के अपने यथार्थ को, अपने असली व्यक्ति को दबाना होगा, क्योंकि झूठे को तभी लादा जा सकता है जब सच्चे को दबा दिया जाए। फलत: तुम्हारा यथार्थ अचेतन में दब जाएगा और तुम्हारा झूठा व्यक्तित्व चेतन व्यक्तित्व बन जाएगा। तुम्हारा झूठा अंश ज्यादा प्रभावी हो जाएगा और सच्चा अंश नीचे दब जाएगा। तब तुम बंट गए, टूट गए। और तुम जितना ही दिखावा करोगे, अंतराल उतना ही बड़ा होता जाएगा।
बच्चा जब जन्म लेता है तो वह अखंड होता है, पूर्ण होता है। यही कारण है
कि बच्चा इतना सुंदर होता है। यह सौंदर्य पूर्णता का सौंदर्य है। बच्चे

15

उसे मंजिल मिल गई, लेकिन उससे कुछ भी नहीं मिला। उसकी आशाएं धूल में मिल गयीं।
यही कारण है कि जब कोई समाज समृद्ध हो जाता है, वह अशांत हो जाता है, वह उपद्रव में पड़ जाता है। आज अगर अमेरिका इतने उपद्रव में है तो उसका कारण है कि आशाएं पूरी हो गयीं, मंजिल मिल गई। अब वह अपने को और अधिक धोखा नहीं दे सकता। अगर अमेरिका की युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के सभी लक्ष्यों के प्रति विद्रोह कर रही है तो उसका कारण यही है कि सभी उपलब्धियां व्यर्थ सिद्ध हुई है।
भारत में हम यह सोच भी नहीं सकते हैं। हम नहीं सोच सकते हैं कि युवक स्वेच्छा से गरीब हो सकते हैं, हिप्पी बन सकते हैं। स्वेच्छा से गरीबी का वरण—हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते। हमें अभी आशा बनी है। हम भविष्य के प्रति आशा से भरे हैं कि किसी दिन देश धनवान होगा और यहां स्वर्ग उतरेगा। स्वर्ग सदा आशा में है।
इस झूठे व्यक्तित्व के कारण तुम जो भी करते हो, जो कुछ भी करते हो, जो कुछ भी देखते हो, सब झूठा हो जाता है।
तंत्र कहता है कि सत्य तुम्हें घटित हो सकता है, अगर तुम फिर से यथार्थ में, वास्तविकता में अपनी जड़ें जमा लो, सत्य में, वास्तविकता में अपनी नींव रख लो। लेकिन वास्तविकता में जड़ें जमाने के लिए तुम्हें अपने साथ बहुत—बहुत साहस की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि झूठ सुविधापूर्ण है, और तुमने झूठ का इतना अभ्यास किया हुआ है, और तुम्हारा मन झूठ से इस भांति संस्कारित है कि तुम्हें असलियत से बहुत भय मालूम पड़ेगा।

किसी ने पूछा है:
कल आपने कहा कि काम— कृत्य में समग्रत: उतरो, उसका सुख लो, उसका आनंद लो, उसमें डूबे रहो? और जब शरीर कांपने लगे तो कंपन ही हो जाओ। तो क्या आप हमें भोग लिखा रहे हैं?

यही विकृति है। यही तुम्हारा झूठा व्यक्तित्व है जो तुमसे बोल रहा है। झूठा व्यक्तित्व सदा किसी चीज का सुख लेने का विरोधी है। वह सदा तुम्हारे विरोध में है। वह कहता है कि सुख मत लो। वह सदा त्याग का पक्षपाती है। वह कहता है कि तुम दूसरों के लिए अपना बलिदान कर दो। यह बहुत सुंदर मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम इसी शिक्षा में पले हो कि दूसरों के लिए त्याग करो। इसे वे परोपकार कहते हैं। और अगर तुम सुख लेते हो तो वे तुम्हें स्वार्थी कहेंगे। और जब कोई कहता है कि यह स्वार्थ है तो सुख पाप बन जाता है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तंत्र की दृष्टि बिलकुल भिन्न है। तंत्र कहता है कि जब तक तुम स्वयं सुखी नहीं हो, तब तक तुम किसी को भी सुख नहीं पहुंचा सकते। जब तक तुम स्वयं से संतुष्ट नहीं हो, तब तक तुम दूसरों की सेवा नहीं कर सकते, तब तक तुम दूसरों के संतुष्ट होने में कुछ हाथ नहीं बंटा सकते। जब तक तुम खुद आनंद से नहीं भरे हो, तब तक तुम समाज के लिए एक खतरा हो। क्योंकि जो व्यक्ति त्याग करता है वह सदा पर—पीड़क हो जाता है। अगर तुम्हारी मां तुमसे हमेशा कहती रहे कि मैंने तुम्हारे लिए इतना त्याग किया तो समझना कि वह तुम्हें सताएगी। अगर कोई पति अपनी पत्नी से कहता रहे कि मैं तुम्हारे लिए त्याग कर रहा हूं तो समझना कि वह पर—पीड़क होगा, आततायी होगा।
त्याग सदा दूसरों को सताने की एक चालाक विधि है। जो लोग सदा त्याग करने में लगे हैं, वे बड़े खतरनाक लोग हैं, उनसे खतरे की संभावना बहुत है। उनसे सावधान रहो। और त्याग से बचो। यह शब्द ही कुरूप है।
सुख लो, आनंद से भरो। और जब तुम आनंद से भरे होते हो तो वही आनंद दूसरों तक पहुंचने लगता है। लेकिन वह त्याग नहीं है। तुम किसी पर उपकार नहीं करते हो, किसी को तुम्हें धन्यवाद देने की जरूरत नहीं है। बल्कि तुम दूसरों के प्रति अनुगृहीत अनुभव करोगे कि वे तुम्हारे आनंद में सम्मिलित हुए। त्याग, कर्तव्य, सेवा जैसे शब्द कुरूप हैं, गंदे हैं। उनमें हिंसा भरी है।

17

घटित होता है। अज्ञान से अतिक्रमण नहीं हो सकता, अज्ञान से सिर्फ पाखंड पैदा होता है।

अब मैं दूसरे प्रश्न लूंगा। किसी ने पूछा है:
ध्यान की प्रक्रिया में बाधा न पहुंचे, बल्कि सहयोग मिले, इस दृष्टि
से संभोग में कितनी बार उतरना उचित है?

यह प्रश्न हमारी नासमझी के कारण उठता है। तुम्हारे साधारण संभोग में
और तांत्रिक संभोग में बुनियादी भेद है। तुम्हारा काम— भोग सिर्फ तनाव से क्षणिक छुटकारा होता है, वह अच्छी छींक जैसा है। उसमें ऊर्जा फिंक जाती है और तुम हलके हो जाते हो। यह काम— भोग दीन—हीन करता है, यह सृजनात्मक नहीं है। यह ठीक है—राहत जैसा है। इससे तुम्हें आराम मिल जाता है, लेकिन और कुछ नहीं।
तांत्रिक संभोग बुनियादी रूप से बिलकुल उलटा और भिन्न है। वह छुटकारा पाने के लिए नहीं है, वह ऊर्जा को बाहर फेंकने के लिए नहीं है। तंत्र में स्खलन के बिना, ऊर्जा को बाहर फेंके बिना संभोग में रहना है, वह भी उसके आरंभ के साथ रहना है, अंत के साथ नहीं। इससे काम— भोग की गुणवत्ता बदल जाती है, उसका पूरा गुणधर्म भिन्न हो जाता है।
यहां दो चीजें समझने जैसी हैं। काम— भोग में दो प्रकार के शिखर— अनुभव हैं, दो प्रकार के आर्गाज्म हैं। एक आर्गाज्म से तुम परिचित हो, जिसमें तुम उत्तेजना के शिखर पर पहुंचकर उसके आगे नहीं जा सकते, अंत आ जाता है। उत्तेजना ऐसे बिंदु पर पहुंच जाती है जहां वह स्वैच्छिक नहीं रह जाती, ऊर्जा छलांग लेती है और बाहर निकल जाती है। उससे तुम खाली हो जाते हो, हलके हो जाते हो। कोई बोझ सा उतर जाता है और तुम विश्रांति और नींद में चले जाते हो।
तुम यहां काम— भोग का उपयोग ट्रैंक्वेलाइजर की तरह करते हो। यह प्रकृति प्रदत्त ट्रैंक्वेलाइजर है। इसके बाद अच्छी नींद आएगी, बशर्ते चित्त धर्म से बोझिल न हो। अन्यथा ट्रैक्येलाइजर भी व्यर्थ हो जाएगा। अगर तुम्हारा चित्त धारणाओं से बोझिल नहीं है तो ही काम— भोग ट्रैंक्वेलाइजर का काम कर सकता है। अगर तुम्हें अपराध— भाव पकड़ता है तो तुम्हारी नींद भी बिगड़ जाएगी। तब तुम्हें गिरावट अनुभव होगी, तब तुम आत्म—निंदा में संलग्न हो जाओगे। और तब तुम व्रत लोगे कि अब फिर मैं इस पाप में नहीं गिरूंगा। तब तुम्हारी नींद भी उपद्रव में पड़ जाएगी। लेकिन यदि तुम सहज हो, धर्म से, नीति से बोझिल नहीं हो तो काम— भोग टैंरक्वेलाइजर बन सकता है। यह एक तरह का आर्गाज्म है, काम का शिखर—अनुभव है, जिसमें उत्तेजना का शिखर प्राप्त होता है। तंत्र दूसरे प्रकार के शिखर—अनुभव की फिक्र लेता है। और अगर तुम पहले प्रकार को शिखर— अनुभव कहते हो तो तांत्रिक संभोग को घाटी—अनुभव कहना उचित होगा। इसमें तुम्हें उत्तेजना के शिखर पर नहीं पहुंचना है, वरन विश्राम की गहनतम घाटी में उतरना है। लेकिन दोनों के आरंभ में उत्तेजना से काम लेना है। इसलिए मैं कहता हूं कि आरंभ में दोनों समान हैं, लेकिन उनके अंत बिलकुल भिन्न हैं।
उत्तेजना का उपयोग दोनों में करना है। वहा से तुम या तो उत्तेजना के शिखर पर चढ़ोगे या विश्राम की घाटी में उतरोगे। पहली यात्रा तो तीव्र से तीव्रतर होते जाना है; तुम्हें उत्तेजना के साथ बढ़ना है, उत्तेजना को उसके शिखर तक पहुंचाना है। लेकिन दूसरी यात्रा में उत्तेजना केवल आरंभ में होगी। और पुरुष के प्रवेश करते ही प्रेमी और प्रेमिका दोनों विश्राम में हो सकते हैं। किसी हलचल की जरूरत नहीं है, दोनों प्रेम— आलिंगन में विश्रामपूर्ण हो सकते हैं। जब भी पुरुष या स्त्री को ऐसा लगे कि इंद्रियों का तनाव समाप्त होने को है, तभी थोड़ी गति और उत्तेजना की जरूरत है। लेकिन फिर विश्राम में चले जाना चाहिए।
तुम इस प्रगाढ़ आलिंगन को सख्लन के बिना घंटों लंबा सकते हो और उसके बाद दोनों गहरी नींद में सो जा सकते हो। यही घाटी— अनुभव है। इसमें दोनों व्यक्ति विश्रामपूर्ण हैं और उनका मिलन भी विश्रामपूर्ण होता है।

21

उपद्रव नहीं खडा करेगा, मुसीबत नहीं पैदा करेगा। हो सकेगा तो वह दूसरों को सुखी बनाने में सहयोग देगा, अन्यथा वह दूसरों को दुख तो कभी नहीं देगा। केवल तंत्र नए मनुष्य का निर्माण कर सकता है। और यह नया मनुष्य— समयातीत और निरहंकार को, अस्तित्व के साथ गहन अद्वैत को जानने वाला मनुष्य—अवश्य विकासमान होगा। एक नया आयाम खुल गया है। वह बहुत दूर नहीं है, वह दिन बहुत दूर नहीं है, जब काम या सेक्स विलीन हो जाएगा। जब काम अनजाने विदा हो जाता है, जब एक दिन अचानक तुम्हें पता चलता है कि काम बिलकुल विदा हो गया, उसकी कोई वासना न रही, तो ब्रह्मचर्य का जन्म होता है। लेकिन यह कठिन है। यह कठिन मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम्हें बहुत गलत शिक्षा दी गई है। और तुम इससे भयभीत हो, क्योंकि तुम्हारा मन संस्कारित है।
हम दो चीजों से बहुत डरते हैं, हम कामवासना और मृत्यु से बहुत डरते हैं। और वे दोनों ही बुनियादी हैं। धर्म का सच्चा साधक दोनों में प्रवेश करेगा। वह काम को जानने के लिए काम का अनुभव लेगा। क्योंकि काम को जानना जीवन को जानना है। और वह मृत्यु को भी जानना चाहेगा। क्योंकि जब तक तुम मृत्यु को नहीं जानते हो तब तक तुम शाश्वत जीवन को भी नहीं जान सकते।
अगर तुम काम में उसके मर्म तक प्रवेश कर सकी तो तुम जीवन को जान लोगे।
और वैसे ही अगर तुम स्वेच्छा से मृत्यु में उसके केंद्र तक प्रवेश कर जाओ तो तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे। तब तुम अमर हो, क्योंकि मृत्यु तो केवल परिधि पर घटित होती है।
काम और मृत्यु, दोनों एक सच्चे साधक के लिए बुनियादी हैं। लेकिन सामान्य मनुष्यता के लिए दोनों घबड़ाने वाले है। कोई उनकी चर्चा नहीं करता है। और दोनों बुनियादी हैं और दोनों गहन रूप से एक—दूसरे से संबंधित हैं। वे इतने जुड़े हुए हैं कि तुम कामवासना में प्रवेश करो और तुरंत तुम एक प्रकार की मृत्यु में प्रवेश करने लगते हो। क्योंकि काम—अनुभव में तुम मरते हो, तुम्हारा अहंकार विलीन होता है। काम— अनुभव में समय विलीन हो जाता है, तुम्हारा व्यक्तित्व विदा हो जाता है। तब तुम ही मरने लगते हो। संभोग सूक्ष्म मृत्यु है।
और अगर तुम्हें बोध हो जाए कि काम सूक्ष्म मृत्यु है तो मृत्यु तुम्हारे लिए बड़ी काम—समाधि का अनुभव बन जाएगी। कोई सुकरात मृत्यु में निर्भय प्रवेश करता है। बल्कि वह मृत्यु को जानने के लिए उत्साह से भरा है, उल्लास और उत्तेजना से भरा है। उसके हृदय में मृत्यु के लिए गहन स्वागत का भाव है। क्यों? क्योंकि अगर तुम संभोग की छोटी मृत्यु को जानते हो, अगर तुमने उससे प्राप्त होने वाला आनंद जाना है, तो तुम बड़ी मृत्यु को भी जानना चाहोगे। तुम उसके पीछे छिपे आनंद को भी भोगना चाहोगे।
लेकिन हमारे लिए काम और मृत्यु दोनों घबड़ाने वाले हैं। तंत्र के लिए दोनों अनुसंधान के आयाम हैं। उनसे होकर ही यात्रा है।

किसी ने पूछा है:
अगर किसी को कुंडलिनी जागरण का अनुभव हो तो क्या काम के शिखर अनुभवों
से उसकी ध्यान की ऊर्जा क्षीण नहीं होती है?

बुनियादी रूप से काम—कृत्य को न समझने के कारण ये सारे प्रश्न उठ रहे हैं। सामान्यत: तो यही होता है, अगर तुम्हारी कुंडलिनी ऊर्जा जागती है और सिर की तरफ उठती है तो तुम्हें सामान्य आर्गाज्म नहीं हो सकेगा। और अगर तुम उसकी कोशिश करोगे तो तुम्हें अपने भीतर गहन द्वंद्व का सामना करना होगा। क्योंकि ऊर्जा ऊपर उठ रही है और तुम उसे नीचे लाने की चेष्टा कर रहे हो।
लेकिन तांत्रिक आर्गाज्म में यह कठिनाई नहीं है, बल्कि यह सहयोगी होगा। ऊपर उठती ऊर्जा तांत्रिक आर्गाज्म के विरोध में नहीं है। तुम विश्रामपूर्ण हो सकते हो, और अपनी प्रेमिका के साथ यह विश्रामपूर्ण स्थिति ऊर्जा को ऊपर उठने में सहयोग देगा।
सामान्य काम—कृत्य में यह कठिनाई जरूर है। यही कारण है कि सभी गैर— तांत्रिक विधियां काम के विरोध में हैं। क्योंकि उन्हें नहीं मालूम है कि

23

यही समस्या है। जब मैं कहता हूं काम—कृत्य तो तुम्हें लगता है कि इसमें प्रयत्न निहित है। नहीं, प्रयत्न नहीं करना है। तुम बस अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी के साथ खेलना शुरू कर दो, खेलते रहो। एक—दूसरे को महसूस करो, एक—दूसरे के प्रति संवेदनशील बनो—जैसे बच्चे आपस में खेलते हैं या कुत्ते या अन्य जानवर खेलते हैं। खेलते रहो और काम—कृत्य के संबंध में कोई विचार मत करो। संभोग हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। अगर खेलते—खेलते वह घटित हो तो वह तुम्हें आसानी से घाटी में पहुंचा देगा। अगर तुम काम— भोग के संबंध में विचार करते हो तो तुम अपने से आगे निकल जाते हो। तुम अपनी प्रेमिका के साथ खेलते हुए काम—कृत्य का विचार कर रहे हो तो उसका मतलब है कि तुम्हारा खेल झूठा है। तब तुम वर्तमान में नहीं हो, तुम्हारा मन भविष्य में है। और यह मन सदा भविष्य में सरकता रहेगा। जब तुम संभोग में होगे तो मन उसको समाप्त करने का विचार करने लगेगा। मन सदा तुम्हारे आगे— आगे चलता है।
मन को ऐसा मत करने दो। बस खेलो और काम—कृत्य के बारे में भूल जाओ। वह घटित होगा। और जब वह घटित हो तो उसे घटित होने दो। तब विश्राम करना आसान होगा। जब संभोग घटित हो तो विश्राम करो। एक—दूसरे में डूबो, एक—दूसरे की उपस्थिति में रहो और आनंदित होओ।
परोक्ष रूप से कुछ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जब तुम उत्तेजित होते हो तो तुम्हारी श्वास तेजी से चलने लगती है। उत्तेजना में तेज श्वास की जरूरत है। तो विश्राम के लिए तुम गहरी श्वास लो, गहरी पर धीमी श्वास लो — तेज श्वास नहीं। श्वास को सरत्न—सहज बना लो तो संभोग लंबा होगा।
और बातचीत मत करो, कुछ मत बोलो। बोलने से भी उपद्रव होता है। मन का नहीं, शरीर का उपयोग करो। और मन का उपयोग सिर्फ उसे महसूस करने के लिए करो जो घटित हो रहा है। विचार मत करो, सिर्फ महसूस करो कि क्या हो रहा है। जो उष्णता बह रही है, जो प्रेम प्रवाहित हो रहा है, उसे अनुभव करो। और सजग रहो। लेकिन सजगता को भी प्रयास मत बनाओ। अप्रयास बहो, अनायास बहो। तब घाटी प्रकट होगी। और जब घाटी प्रकट होगी
घाटी को, विश्रामपूर्ण आर्गाज्म को प्राप्त करते ही अतिक्रमण है। तब काम काम नहीं रहता; वह ध्यान हो जाता है, समाधि हो जाता है।

आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
पैंतीसवां प्रवचन

स्वप्न नहीं,स्वप्नदर्शी सच है

सूत्र:

53—हे कमलाक्षी, हे सुभगे, गाते हुए, देखते हुए,
स्वाद लेते हुए या बोध बना रहे कि मैं हूं।
और शाश्वत आविर्भूत होता है।
54—जहां—जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्वतिक करो।
55—जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्म जागरण
विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदु पर बोधपूर्ण
रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।
56—भ्रांतियां छलती है, रंग सीमित करते है,
विभाज्य भी अविभाज्य है।

सभ्यता इस बात का प्रशिक्षण है कि कैसे झूठा हुआ जाए, नकली हुआ जाए। तंत्र ठीक विपरीत प्रक्रिया है, तंत्र तुम्हें झूठा होने से बचाता है। और अगर तुम झूठे हो गए हो तो तंत्र सिखाता है कि कैसे उस सत्य से फिर से संपर्क साधो जो तुम्हारे भीतर छिपा है, कि कैसे फिर से सच्चे हो जाओ। पहली चीज समझने की यह है कि हम कैसे झूठे होते चले जाते हैं। और जब यह प्रक्रिया समझ में आ जाती है तो तुरंत ही बहुत सी बातें बदल जाती हैं। और समझ ही रूपांतरण बन जाती है, क्रांति बन जाती है।
मनुष्य अविभाजित, अखंड जन्म लेता है। वह न शरीर है न मन, वह अखंड, एक व्यक्ति की भांति पैदा होता है। वह शरीर और मन दोनों है। यह कहना भी गलत है कि वह शरीर और मन दोनों है। वह शरीर—मन है। शरीर और मन उसके होने के दो पहलू हैं, अलग— अलग खंड नहीं। वे जीवन या ऊर्जा या किसी भी चीज अ, ब, स, केर दो छोर हैं, पर शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं।
सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति, संस्कार की प्रक्रिया विभाजन से शुरू होती है। हरेक व्यक्ति को सिखाया जाता है कि तुम एक नहीं, दो हो। और तब स्वभावत: हरेक व्यक्ति मन के साथ तादात्म्य करने लगता है, शरीर के साथ नहीं। फिर सोच—विचार की जो प्रक्रिया है वह तुम्हारा केंद्र बन जाती है। लेकिन विचार की प्रक्रिया केवल परिधि है, वह केंद्र नहीं है। क्योंकि तुम सोच— विचार के बिना भी जी सकते हो, कभी तुम उसके बिना जीते ही थे। जीने के लिए सोच—विचार आवश्यक नहीं है।
अगर तुम ध्यान में गहरे उतरो तो तुम तो रहोगे, लेकिन विचार— प्रक्रिया नहीं रहेगी। वैसे ही अगर तुम बेहोश हो जाओ तो तुम तो रहोगे, लेकिन विचार—प्रक्रिया नहीं रहेगी। गाढ़ी नींद में उतर जाने पर भी तुम तो रहोगे, लेकिन विचार—प्रक्रिया नहीं रहेगी। विचार—प्रक्रिया परिधि पर है, तुम्हारा होना कहीं और है—विचार—प्रक्रिया से बहुत गहरे में। लेकिन तुम्हें निरंतर सिखाया जाता है कि तुम दो हो, शरीर और मन हो। तुम्हें सिखाया जाता है कि दरअसल तुम मन हो और शरीर तुम्हारे अधिकार में है, तुम्हारी मालकियत में है। तब मन मालिक बन जाता है। और शरीर गुलाम। और तब तुम शरीर के साथ संघर्ष करते हो; और उससे अलगाव पैदा होता है, अंतराल पैदा होता है। और यह अलगाव ही समस्या है। सब मानसिक रोग इस अलगाव से जन्म लेते हैं, सब चिंताएं उससे ही पैदा होती हैं।
तुम्हारा होना तुम्हारे शरीर से जुड़ा हुआ है। और तुम्हारा शरीर अस्तित्व से पृथक नहीं है, अलग नहीं है, वह अस्तित्व का हिस्सा है। तुम्हारा शरीर समूचा ब्रह्मांड है, वह कोई सीमित और छोटी चीज नहीं है। तुमने हो सकता है न निरीक्षण किया हो, लेकिन अब निरीक्षण करना कि तुम्हारा शरीर दरअसल कहां समाप्त होता है। क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारा शरीर चमड़ी पर समाप्त हो जाता है? तो सूरज जो इतना दूर है, अगर वह अभी ठंडा हो जाए तो तुम भी तुरंत यहं। ठंडे हो जाओगे। अगर सूरज की किरणें यहां आना बंद कर

27

'हे कमलाक्षी, हे सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए यह बोध बना रहे कि मैं हूं? और शाश्वत आविर्भूत होता है।’
जब सूत्र कहता है कि 'बोध बना रहे कि मैं हूं, तो तुम क्या करोगे? क्या तुम याद करोगे कि मेरा नाम राम है, या जीसस है, या और कुछ है? क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं फलां परिवार का हूं फला धर्म का हूं फलां—फलां परंपरा का हूं? क्या तुम याद करोगे कि मैं अमुक देश का हूं अमुक जाति का हूं अमुक मत का हूं? क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं कम्युनिस्ट हूं या हिंदू या ईसाई हूं? तुम क्या स्मरण करोगे?
सूत्र कहता है कि 'बोध बना रहे कि मैं हूं,, इतना ही कहता है कि मैं हूं। किसी नाम की जरूरत नहीं है, किसी देश की जरूरत नहीं है, सिर्फ होने की जरूरत है कि तुम हो। तो अपने से यह मत कहो कि तुम कौन हो। यह मत कहो कि मैं यह हूं वह हूं। तुम हो, इस अस्तित्व को स्मरण करो।
लेकिन यह कठिन हो जाता है, क्योंकि हम कभी मात्र अस्तित्व को स्मरण नहीं करते। हम सदा उसे स्मरण करते हैं जो एक लेबल है, पदवी है, नाम है, वह अस्तित्व नहीं है। जब भी तुम अपने बारे में सोचते हो, तुम अपने नाम, धर्म, देश इत्यादि की सोचते हो, तुम कभी इस मात्र अस्तित्व की नहीं सोचते कि मैं हूं।
तुम इसकी साधना कर सकते हो। अपनी कुर्सी में या किसी पेड़ के नीचे विश्रामपूर्वक बैठ जाओ, सब कुछ भूल जाओ और इस अपने होनेपन को अनुभव करो। न ईसाई हो, न हिंदू न बौद्ध, न भारतीय, न अंग्रेज, न जर्मन; बस तुम हो। इसकी प्रतीति भर हो, भाव भर हो। और तब तुम्हारे लिए याद रखना आसान होगा कि यह सूत्र क्या कहता है।
'बोध बना रहे कि मैं हूं और शाश्वत आविर्भूत होता है।’
जिस क्षण तुम्हें बोध होता है कि मैं कौन हूं उसी क्षण तुम शाश्वत की धारा में फेंक दिए जाते हो। जो असत्य है, उसकी मृत्यु निश्चित है, केवल सत्य शेष रहता है।
यही कारण है कि हम मृत्यु से इतना डरते हैं, क्योंकि झूठ को मिटना ही है। असत्य सदा नहीं रह सकता है। और हम असत्य से बंधे हैं, असत्य से तादात्म किए बैठे हैं। तुममें जो हिंदू है, वह तो मरेगा; जो राम है या कृष्ण है, वह तो मरेगा; जो कम्युनिस्ट है, आस्तिक है, नास्तिक है, वह तो मरेगा—जो—जो नाम—रूप है वह मरेगा। और अगर तुम नाम—रूप के मोह में पड़े हो, उससे आसक्त हो तो जाहिर है कि मृत्यु का डर तुम्हें घेरेगा।
लेकिन तुम्हारे भीतर जो सत्य है, जो अस्तित्वगत है, जो आधारभूत है, वह अमृत है। जब नाम—रूप भूल जाते हैं और तुम्हारी दृष्टि भीतर के अनाम और अरूप पर पड़ती है, तब तुम शाश्वत में प्रवेश कर गए।
'बोध बना रहे कि मैं हूं और शाश्वत आविर्भूत होता है।’
यह विधि अत्यंत कारगर विधियों में से एक है और हजारों साल से सदगुरुओं ने इसका उपयोग किया है। बुद्ध इसे उपयोग में लाए, महावीर लाए, जीसस लाए। और आधुनिक जमाने में गुरजिएफ ने इसका खूब उपयोग किया। सभी विधियों से इस विधि की क्षमता सर्वाधिक है। इसका प्रयोग करो। यह समय लेगा, महीनों लग सकते है।
जब आस्पेंस्की गुरजिएफ के पास साधना कर रहा था तो उसे तीन महीने तक इस बात के लिए बहुत श्रम, कठिन श्रम करना पड़ा कि आत्म—स्मरण की एक झलक मिले। निरंतर तीन महीने तक आस्पेंस्की एक एकांत घर में रहकर एक ही प्रयोग करता रहा—आत्म—स्मरण का प्रयोग। तीस व्यक्तियों ने उस प्रयोग को आरंभ किया था और पहले सप्ताह के खतम होते—होते सत्ताइस व्यक्ति भाग खड़े हुए, सिर्फ तीन बचे। सारा दिन वे और कोई काम नहीं करते थे, सिर्फ स्मरण करते थे कि मैं हूं। सत्ताइस लोगों को ऐसा लगा कि इस प्रयोग से हम पागल हो जाएंगे, हमारे विक्षिप्त होने के सिवाय कोई चारा नहीं है। और वे गायब हो गए। वे फिर कभी नहीं वापस आए, वे गुरजिएफ से फिर कभी नहीं मिले। क्यों?
हम जैसे हैं, असल में हम विक्षिप्त ही हैं, पागल ही हैं। जो नहीं जानते हैं कि हम क्या हैं, हम कौन हैं, वे पागल ही हैं। लेकिन हम इस विक्षिप्तता को ही स्वास्थ्य माने बैठे हैं। जब तुम पीछे लौटने की कोशिश करोगे, जब तुम सत्य से संपर्क साधोगे तो वह विक्षिप्तता जैसा, पागलपन जैसा ही मालूम

31

पड़ेगा। हम जैसे हैं, जो हैं, उसकी पृष्ठभूमि में सत्य ठीक विपरीत है। और अगर तुम जैसे हो उसको ही स्वास्थ्य मानते हो तो सत्य जरूर पागलपन मालूम पड़ेगा।
लेकिन तीन व्यक्ति प्रयोग में लगे रहे। उन तीन में पी.डी. आस्पेंस्की
भी एक था। वे तीन महीने तक प्रयोग में जुटे रहे। पहले महीने के बाद उन्हें मात्र होने की—कि मैं हूं —झलक मिलने लगी। दूसरे महीने के बाद मैं भी गिर गया और उन्हें मात्र होनेपन की हूं —पन की झलक मिलने लगी। इस झलक में मात्र होना था, मैं भी नहीं था, क्योंकि मैं भी एक संज्ञा है। शुद्ध अस्तित्व न मैं है न तू वह बस है। और तीसरे महीने के बाद हूं —पन का भाव भी विसर्जित हो गया। क्योंकि हूं —पन का भाव भी एक शब्द है, यह शब्द भी विलीन हो जाता है। तब तुम बस हो और तब तुम जानते हो कि तुम कौन हो।
इस घड़ी के आने के पूर्व तुम नहीं पूछ सकते कि मैं कौन हूं। या तुम सतत पूछते रह सकते हो कि मैं कौन हूं मैं कौन हूं और मन जो भी उत्तर देगा वह गलत होगा, अप्रासंगिक होगा। तुम पूछते जाओ कि मैं कौन हूं मैं कौन हूं और एक क्षण आएगा जब तुम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते। पहले सब उत्तर गिर जाते हैं और फिर खुद प्रश्न गिर जाता है और खो जाता है। और जब यह प्रश्न भी कि 'मैं कौन हूं?' गिर जाता है, तुम जानते हो कि तुम कौन हो।
गुरजिएफ ने एक सिरे से इस विधि का प्रयोग किया: सिर्फ यह स्मरण रखना
है कि मैं हूं। रमण महर्षि ने इसका प्रयोग दूसरे सिरे से किया। उन्होंने इस खोज को कि 'मैं कौन हूं?' पूरा ध्यान बना दिया। उन्होंने कहा कि पूछते रही कि मैं कौन हूं? और इसके उत्तर में मन जो भी कहे उस पर विश्वास मत करो। मन कहेगा कि क्या व्यर्थ का सवाल उठा रहे हो! मन कहेगा कि तुम यह हो, तुम वह हो, कि तुम मर्द हो, तुम औरत हो, तुम शिक्षित हो, अशिक्षित हो, कि गरीब हो, अमीर हो, मन उत्तर दिए जाएगा, लेकिन तुम प्रश्न पूछते ही चले जाना। कोई भी उत्तर मत स्वीकार करना, क्योंकि मन के दिए गए सभी उत्तर गलत होंगे। वे उत्तर तुम्हारे झूठे हिस्से से आते हैं। वे शब्दों से आते हैं, वे शास्त्रों से आते हैं, वे तुम्हारे संस्कारों से आते हैं, वे समाज से आते हैं। सच तो यह है कि वे सब के सब दूसरों से आते हैं, वे तुम्हारे नहीं हैं। तुम पूछे ही चले जाओ। इस 'मैं कौन हूं?' के तीर को गहरे से गहरे में उतरने दो।
एक क्षण आएगा जब कोई उत्तर नहीं आएगा। वही सम्यक क्षण होगा। अब तुम उत्तर के करीब आ रहे हो। जब कोई उत्तर नहीं आता है, तुम उत्तर के करीब होते हो। क्योंकि अब मन मौन हो रहा है, अब तुम मन से बहुत दूर निकल गए हो। जब कोई उत्तर नहीं होगा और जब तुम्हारे चारों ओर एक शून्य निर्मित हो जाएगा तो तुम्हारा प्रश्न पूछना व्यर्थ मालूम होगा। तुम किससे पूछ रहे हो? जवाब देने वाला अब कोई नहीं है।
अचानक तुम्हारा प्रश्न भी गिर जाएगा। और प्रश्न के गिरते ही मन का आखिरी हिस्सा भी गिर गया, खो गया, क्योंकि यह प्रश्न भी मन का ही था। वे उत्तर भी मन के थे और यह प्रश्न भी मन का था। दोनों विलीन हो गए। अब तुम बस हो।
इसे प्रयोग करो। अगर तुम लगन से लगे रहे तो पूरी संभावना है कि यह विधि तुम्हें सत्य की झलक दे जाए। और सत्य शाश्वत है।

आत्म—स्मरण की दूसरी विधि:

जहां— जहां जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो उसे वास्तविक करो। तुम्हें प्यास लगी है, तुम पानी पीते हो, उससे एक सूक्ष्म संतोष प्राप्त होता है। पानी को भूल जाओ, प्यास को भी भूल जाओ और जो सूक्ष्म संतोष अनुभव हो रहा है उसके साथ रही। उस संतोष से भर जाओ, बस संतुष्ट अनुभव करो।
लेकिन मनुष्य का मन बहुत उपद्रवी है। वह केवल असंतोष और अतृप्ति अनुभव करता है, वह कभी संतोष नहीं अनुभव करता है। अगर तुम असंतुष्ट हो तो तुम उसे अनुभव करोगे और असंतोष से भर जाओगे। जब तुम प्यासे हो तो तुम्हें प्यास अनुभव होती है, तुम्हारा गला सूखता है। और अगर प्यास और बढ़ती है तो

'जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदु पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।’
तब तुम जानते हो कि मैं कौन हूं मेरा सच्चा स्वभाव क्या है, मेरा प्रामाणिक अस्तित्व क्या है। जागते हुए तुम झूठे हो। और यह तुम भलीभांति जानते हो। जब तुम जागे हुए हो, तुम झूठे बने रहते हो। तुम उस समय मुस्कुराते हो, जब कि आंसू बहाना ज्यादा सच होता। तुम्हारे आंसू भी भरोसे योग्य नहीं हैं। वे भी दिखाऊ हो सकते हैं, नकली हो सकते हैं, होने चाहिए इसलिए हो सकते हैं। तुम्हारी मुस्कूराहट झूठी है। जो लोग चेहरे पढ़ना जानते वे कह सकते हैं कि यह मुस्कूराहट रंग—रोगन से ज्यादा नहीं है, भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं हैं। यह मुस्कुराहट बस तुम्हारे चेहरे पर है, ओंठों पर है, ऊपरी है। यह तुम्हारे प्राणों से नहीं उठी है। कहीं उसकी जड़ें नहीं है और न कहीं उसके हाथ—पाँव ही है। वह ऊपर से ओढ़ी हुई है। वह भीतर से बाहर नहीं आई है, वह बाहर से थोपी गई है।
तुम जो भी कहते हो, तुम जो भी करते हो, सब नकली है। यह जरूरी नहीं है कि तुम यह नकली व्यापार जान—बूझकर करते हो। यह जरूरी नहीं है। उसके प्रति तुम सर्वथा अनजान भी हो सकते हो। तुम अनजान हो। अन्यथा इस नकली मूढ़ता को सतत जारी रखना बहुत कठिन हो जाए। यह व्यापार स्वचालित है। यह झूठ चलता रहता है जब तुम जागे हुए हो और यह झूठ तब भी चलता रहता है जब तुम सोए हुए हो — लेकिन तब और ढंग से चलता है। तुम्हारे सपने प्रतीकात्मक हैं, सच नहीं। हैरानी की बात है कि तुम अपने सपनों में भी सच्चे नहीं हो, तुम अपने सपनों में भी भयभीत हो और तुम प्रतीक निर्मित करते हो।
अब मनोविश्लेषक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करता रहता है, यही उसका धंधा है। और यह एक भारी धंधा बन गया है, क्योंकि तुम खुद अपने सपनों का विश्लेषण नहीं कर सकते हो। सपने प्रतीकात्मक हैं, वे सच नहीं हैं। वे सिर्फ प्रतीकों के द्वारा कुछ कहते हैं। अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहते हो, उससे छुटकारा पाना चाहते हो, तो तुम सपने में उसकी हत्या नहीं करोगे, तुम उसकी जगह किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या कर दोगे जो देखने में तुम्हारी मां जैसा हो। तुम अपनी चाची या किसी और की हत्या करोगे, अपनी मां की नहीं। तुम अपने सपने में भी प्रामाणिक नहीं हो सकते हो। यही कारण है कि मनोविश्लेषण की जरूरत पड़ती है, एक पेशेवर व्यक्ति की जरूरत पड़ती है, जो तुम्हारे सपनों की व्याख्या कर सके। लेकिन तुम सपने को भी इस ढंग से रख सकते हो कि मनोविश्लेषण भी धोखा खा जाए।
तुम्हारे सपने भी सर्वथा झूठे हैं। लेकिन अगर तुम जागते हुए सच्चे रह सकी तो तुम्हारे सपने सच हो सकते हैं, तब वे प्रतीकात्मक नहीं होंगे। तब अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहोगे तो तुम सपने में अपनी मां की ही हत्या करोगे, किसी और की नहीं। और फिर व्याख्या करने वाले की जरूरत नहीं होगी जो तुम्हें बताए कि तुम्हारे सपने का अर्थ क्या है। लेकिन हम इतने झूठे हैं, धोखेबाज हैं कि सपने के एकांत में भी संसार से, समाज से डरते हैं। मां की हत्या करना सबसे बड़ा पाप है। और पता नहीं, तुमने कभी इस पर विचार किया है कि नहीं कि मां की हत्या करना क्यों सबसे बड़ा पाप है। यह सबसे बड़ा पाप कहा गया है, क्योंकि प्रत्येक आदमी मां के प्रति गहरी शत्रुता अनुभव करता है। यह सबसे बड़ा पाप है और तुम्हें सिखाया जाता है, संस्कारित किया जाता है कि मां को चोट पहुंचाने का विचार करना भी पाप है। मां ने तुम्हें जन्म दिया है! सारी दुनिया में, सभी समाजों में यही बात सिखायी जाती है। धरती पर एक भी ऐसा समाज नहीं है जो इससे सहमत न हो कि मां की हत्या सबसे बड़ा पाप है। जिसने तुम्हें जन्म दिया उसे ही तुम मार रहे हो?
लेकिन यह सिखावन क्यों? गहरे में यह संभावना है कि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्यत: अपनी मां के विरोध में चला जाए, क्योंकि मां ने तुम्हें सिर्फ जन्म ही नहीं दिया, उसने तुम्हें झूठ और नकली बनने के लिए मजबूर भी किया। तुम जो भी हो, अपनी मां के बनाए हुए हो। अगर तुम एक नरक हो तो इसमें तुम्हारी मां का बड़ा हाथ है, सबसे बड़ा हाथ है। अगर तुम दुख में हो तो उस दुख में कहीं न कहीं तुम्हारी मां मौजूद है, क्योंकि मां ने तुम्हें जन्म दिया,

37

मनोचिकित्सक तुम्हारे जागरण की फिक्र नहीं करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वह बिलकुल झूठा है। अगर कुछ सच्चा, कुछ यथार्थ देखना हो तो वह केवल सपनों में देखा जा सकता है।
लेकिन तंत्र कहता है कि सपने भी उतने सच नहीं हैं। हालांकि जागरण की तुलना में वे ज्यादा सच हैं—यह पहेली सी मालूम होगी, क्योंकि हम सपनों को असत्य मानते हैं—वे जागरण की घड़ियों की बजाय ज्यादा सच हैं। क्योंकि सपनों में तुम अपने पहरे पर कम होते हो, नींद में सेंसर सोया रहता है, और दमित चीजें ऊपर आ सकती हैं, अपने को अभिव्यक्त कर सकती हैं। ही, यह अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होगी, पर प्रतीकों को समझा जा सकता है।
सारी दुनिया में मनुष्य के प्रतीक समान हैं। जागते हुए तुम भिन्न भाषा बोल सकते हो, लेकिन सपने में तुम वही भाषा बोलते हो जो सारे लोग बोलते हैं। सारी दुनिया की स्वप्न— भाषा एक है। अगर कामवासना दबाई गई है तो दुनियाभर में एक ही तरह के प्रतीक उसे अभिव्यक्त करेंगे। अगर भोजन की इच्छा को दबाया गया है, भूख को दमित किया गया है तो उसे भी सपने में सर्वत्र एक ही तरह के प्रतीक अभिव्यक्त करेंगे। स्वप्न— भाषा एक है। लेकिन प्रतीकों के कारण ही स्वप्नों के साथ एक दूसरी कठिनाई है। फ्रायड उनका अर्थ एक ढंग से कर सकता है, दा उनका अर्थ भिन्न ढंग से कर सकता है और एडलर उनका अर्थ और भी भिन्न ढंग से कर सकता है। अगर सौ मनोविश्लेषक तुम्हारा विश्लेषण करें तो वे सौ व्याख्याएं करेंगे। और तुम पहले से भी ज्यादा उलझन में पड़ जाओगे। एक ही चीज की सौ व्याख्याएं तुम्हें और भी भ्रांत कर देंगी।
तंत्र कहता है, तुम न जागते हुए सच हो और न सोते हुए सच हो, तुम इन दो अवस्थाओं के बीच में कहीं सच हो। इसलिए न जागरण की फिक्र करो और न नींद और स्वप्न की, सिर्फ अंतराल की फिक्र करो। उस अंतराल के प्रति जागो। एक से दूसरी अवस्था में गुजरते हुए इस अंतराल का दर्शन करो। और एक बार तुम जान जाते हो कि. यह अंतराल कब आता है, तुम उसके मालिक हो जाते हो। तब तुम्हें कुंजी मिल गई, तुम किसी भी वक्त उस अंतराल को खोलकर उसमें प्रवेश कर सकते हो। तब होने का एक भिन्न आयाम, एक नया आयाम खुलता है।

आत्म—स्मरण की चौथी और अंतिम विधि:

भ्रांतियां छलती हैं रंग सीमित करते हैं विभाज्य भी अविभाज्य हैं।
यह एक दुर्लभ विधि है जिसका प्रयोग बहुत कम हुआ है। लेकिन भारत के एक महानतम शिक्षक शंकराचार्य ने इस विधि का प्रयोग किया है। शंकर ने तो अपना पूरा दर्शन ही इस विधि के आधार पर खड़ा किया। तुम उनके माया के दर्शन को जानते हो। शंकर कहते हैं कि सब कुछ माया है। तुम जो भी देखते, सुनते या अनुभव करते हो, सब माया है। वह सत्य नहीं है, क्योंकि सत्य को इंद्रियों से नहीं जाना जा सकता।
तुम मुझे सुन रहे हो और मैं देखता हूं कि तुम मुझे सुन रहे हो, हो सकता
है कि यह सब स्वप्न हो। यह स्वप्न है या नहीं, यह तय करने का कोई उपाय नहीं है। हो सकता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं कि तुम मुझे सुन रहे हो। यह मैं कैसे जान सकता हूं कि यह स्वप्न नहीं, सत्य है? कोई उपाय नही है। च्चांगत्सु के बारे में कहा जाता है कि एक रात उसने स्वप्न देखा कि वह तितली हो गया है। सुबह जागने पर वह बहुत दुखी था—और वह दुखी होने वाला व्यक्ति नहीं था, लोगों ने कभी उसे दुखी नहीं देखा था। उसके शिष्य इकट्ठे हुए और उन्होंने पूछा गुरुदेव, आप इतने दुखी क्यों हैं?
च्चांगत्सु ने बताया कि एक सपने के कारण मैं दुखी हूं। उसके शिष्यों
ने कहा कि हैरानी की बात है कि आप सपने के कारण दुखी हैं! आपने तो हमें सदा यही सिखाया कि यदि सारा संसार भी दुख देने आए तो दुखी मत होना। और एक सपने के कारण आप दुखी हैं? आप क्या कह रहे हैं? च्चांगत्सु ने कहा कि यह सपना ही ऐसा है कि इससे मैं बहुत उलझन में पड़ गया हूं और इसलिए दुखी हूं। मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं।
शिष्यों ने पूछा कि इसमें हैरानी की बात क्या है?

झूठ। और अगली सुबह मैं च्चांगत्सु की तरह उलझन में पड़ सकता हूं कि अब कहीं तितली ही यह सपना तो नहीं देख रही है कि वह च्चांगत्सु हो गई है!
अब ये दो सपने हैं और तुलना का कोई उपाय नहीं है कि इनमें कौन सच है और कौन झूठ। लेकिन च्चांगत्सु एक चीज चूक रहा है—वह है स्वप्न देखने वाला। वह केवल सपनों की सोच रहा है, उनकी तुलना कर रहा है, और स्वप्न देखने वाले को चूक रहा है। वह उसे चूक रहा है जो सपना देखता है कि च्चांगत्सु तितली बन गया है। और वह उसे चूक रहा है जो विचार करता है कि बात बिलकुल उलटी भी हो सकती है—कि तितली सपना देख रही हो कि वह च्चांगत्सु हो गई है। यह देखने वाला कौन है? द्रष्टा कौन है? कौन है वह जो सोया हुआ था और अब जागा हुआ है? तुम मेरे लिए असत्य हो सकते हो, तुम मेरे लिए स्वप्न हो सकते हो, लेकिन मैं अपने लिए स्वप्न नहीं हो सकता। क्योंकि स्वप्न के होने के लिए भी एक सच्चे स्वप्न देखने वाले की जरूरत है। झूठे स्वप्न के लिए भी सच्चे स्वप्नदर्शी की जरूरत है। स्वप्न भी सच्चे स्वप्नदर्शी के बिना नहीं हो सकता है। तो स्वप्न को छोड़ो।
यह विधि कहती है. स्वप्न को भूल जाओ। सारा जगत माया है, तुम माया नहीं हो। तुम जगत के पीछे मत भागों, क्योंकि वहां सुनिश्चित होने की कोई संभावना नहीं है कि क्या सत्य है और क्या असत्य। और अब तो वैज्ञानिक शोध से भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।
पिछले तीन सौ वर्षों तक विज्ञान सुनिश्चित था और शंकर एक दार्शनिक,
एक कवि मालूम पड़ते थे। तीन सदियों तक विज्ञान असंदिग्ध था, सुनिश्चित था, लेकिन पिछले दो दशकों से विज्ञान का निश्चय अनिश्चय में बदल गया है। अब बड़े से बड़े वैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ भी निश्चित नहीं है और पदार्थ के साथ हम कभी निश्चित नहीं हो सकते। सब कुछ पुन: संदिग्ध हो गया है। सब कुछ प्रवाहमान, बदलता हुआ मालूम पड़ता है। बाहरी रूप—रंग ही निश्चित मालूम पड़ता है, लेकिन जैसे—जैसे तुम उसमें गहरे जाते हो, सब अनिश्चित होता जाता है, सब धुंधला— धुंधला होता जाता है।
शंकर कहते हैं—और तंत्र ने सदा कहा है—कि जगत माया है। शंकर के जन्म
के पहले भी तंत्र इस विधि का उपयोग करता था कि जगत माया है, उसे स्वप्नवत समझो। और अगर तुमने इसे माया समझा—और यदि तुमने जरा भी ध्यान दिया तो तुम जानोगे ही कि यह माया है—तो तुम्हारी चेतना का पूरा तीर भीतर की ओर मुड़ जाएगा, क्योंकि सत्य को जानने की अभीप्सा प्रगाढ़ है।
अगर सारा जगत अयथार्थ है, असत्य है, तो उसमें कोई आश्रय नहीं मिल सकता है। तब तुम छायाओं के पीछे भाग रहे हो; अपने समय, शक्ति और जीवन का अपव्यय कर रहे हो। अब भीतर की तरफ चलो, क्योंकि एक बात तो निश्चित है. कि मैं हूं। यदि सारा जगत भी माया है तो भी एक चीज निश्चित है कि कोई है जो जानता है कि यह माया है। ज्ञान भ्रांत हो सकता है, ज्ञेय भ्रांत हो सकता है, लेकिन ज्ञाता भ्रांत नहीं हो सकता। यही एकमात्र निश्चय है, एकमात्र चट्टान —है, जिस पर तुम खडे हो सकते हो।
यह विधि कहती है: संसार को देखो; यह स्वप्नवत है, माया है, वैसा बिलकुल नहीं है जैसा भासता है। यह बस इंद्रधनुष जैसा है। इस भाव की गहराई में उतरो और तुम अपने पर फेंक दिए जाओगे। और अपने अंतस पर आने के साथ—साथ तुम निश्चय को, सत्य को, असंदिग्ध को, परम को उपलब्ध हो जाते हो।
विज्ञान कभी परम तक नहीं' पहुंच सकता, वह सदा सापेक्ष रहेगा। सिर्फ धर्म परम को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि धर्म स्वप्न को नहीं,स्वप्नदर्शी को खोजता है। धर्म दृश्य को नहीं, द्रष्टा को खोजता है। धर्म उसे खोजता है जो चिन्मय है।

आज इतना ही।

41

तंत्र-सूत्र, भाग 3
छत्तीसवां प्रवचन

आत्म—स्मरण और विधायक दृष्टि

पहला प्रश्न:
आत्म—सरण अल्प— स्मरण की साधना मनुष्य के मन को कैसे रूपांतरित कर सकती है?

मनुष्य अपने में केंद्रित नहीं है, वह अपने केंद्र पर नहीं है। वह जन्म तो लेता है केंद्रित की तरह; लेकिन समाज, परिवार, संस्कृति, सब उसे केंद्र से च्युत कर देते हैं, बाहर कर देते हैं। वे यह काम जाने— अनजाने बहुत तरकीब से करते हैं। और इस तरह हरेक आदमी केंद्र से च्युत हो जाता है, भटक जाता है। इसके कारण हैं और वे कारण मनुष्य के जीवन—संघर्ष से संबंधित हैं। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसे एक अनुशासन देना पड़ता है, उसे स्वतंत्र नहीं छोड़ा जा सकता। अगर उसे पूरी स्वतंत्रता दे दी जाए तो वह स्व— केंद्रित रहेगा, सहज स्वभाव से जीएगा, नैसर्गिक होकर जीएगा। तब वह मौलिक होगा, जैसा है वैसा ही होगा, प्रामाणिक होगा। और तब आत्म—स्मरण साधने की जरूरत नहीं होगी, क्योंकि वह कभी केंद्र से च्युत नहीं होगा। वह केंद्रित होगा, आत्म—स्थित होगा।
लेकिन यह अब तक संभव नहीं हुआ है। इसलिए ध्यान की जरूरत होती है। ध्यान औषधि है। समाज रोग निर्मित करता है और फिर रोग का इलाज करना पड़ता है। धर्म औषधि है। अगर सचमुच एक ऐसा मानव—समाज विकसित हो जो स्वतंत्रता पर आधारित हो तो धर्म की कोई जरूरत न रहे। लेकिन क्योंकि हम बीमार हैं, हमें औषधि की जरूरत पड़ती है। और क्योंकि हम केंद्र से च्युत हैं, हमारे लिए केंद्रित होने के उपाय जरूरी हो जाते हैं। अगर किसी दिन धरती पर एक स्वस्थ समाज, आंतरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वस्थ समाज बनाना संभव हो जाए तो धर्म नहीं रहेगा।
लेकिन ऐसा समाज बनाना कठिन मालूम पड़ता है। बच्चे को अनुशासन देना जरूरी है। लेकिन जब तुम बच्चे को अनुशासित करते हो तो क्या करते हो? तुम उस पर कुछ थोपते हो जो उसके अनुकूल नहीं है, जो उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। तुम उससे कुछ ऐसी मल करते हो जिसे वह सहज भाव से कभी नहीं पूरा कर सकेगा। फिर तुम उसे दंडित करोगे, उसकी सराहना करोगे, उसे रिश्वत दोगे—तुम उसे सामाजिक बनाने के लिए सब कुछ करोगे, तुम उसे उसके प्राकृतिक जीवन से च्युत कर दोगे। तुम उसके चित्त में एक नया केंद्र निर्मित कर दोगे जो वहा कभी नहीं था। और यह केंद्र बढ़ेगा, बड़ा होगा और प्राकृतिक केंद्र विस्मृत हो जाएगा, अचेतन में दब जाएगा। तुम्हारा प्राकृतिक केंद्र अचेतन में, अंधकार में दब जाएगा और तुम्हारा अप्राकृतिक केंद्र तुम्हारा चेतन बन जाएगा।
वास्तव में अचेतन और चेतन के बीच कोई विभाजन नहीं है; विभाजन निर्मित किया गया है। तुम अखंड चेतना हो। यह विभाजन हो गया है, क्योंकि तुम्हारा अपना केंद्र किसी अंधेरे तलघर में दब गया है। तुम अभी अपने केंद्र के संपर्क में नहीं हो, तुम्हें भी उससे संपर्क करने की स्वीकृति नहीं है। तुम खुद भूल गए हो कि मेरा कोई केंद्र है। और तुम वैसे जीते हो जैसे समाज ने, संस्कृति ने, परिवार ने तुम्हें जीना सिखा दिया है। तुम एक झूठा जीवन जीते हो।
इस झूठे जीवन के लिए एक झूठे केंद्र की जरूरत है। तुम्हारा अहंकार वही झूठा केंद्र है, तुम्हारा चेतन मन वह झूठा केंद्र है। यही कारण है कि तुम कुछ भी करो, तुम आनंदित नहीं हो सकते हो। आनंदित होने के लिए सच्चा केंद्र चाहिए, सच्चा केंद्र ही विस्फोट को उपलब्ध हो सकता है। सच्चा केंद्र ही आनंद की परम संभावना को, उसके शिखर को उपलब्ध हो सकता है। झूठा केंद्र तो धूप—छाया का खेल है। तुम इससे मन को बहला सकते हो, तुम इससे आशा बांध सकते हो, लेकिन अंततः इससे निराशा के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता है। झूठे केंद्र के साथ यही हो सकता है।

42

योगी को नींद में भी अपना स्मरण रहता है और तुम्हें जागते हुए भी अपना स्मरण नहीं रहता। तुम रास्ते पर चल रहे हो और तुम्हें नहीं स्मरण है कि तुम हो।
प्रयोग करके देखो और तुम्हें तुम्हारी गुणवत्ता में बदलाहट महसूस होगी। यह स्मरण रखो कि मैं हूं और अचानक एक नया हलकांपन तुम्हें घेर लेता है 1 भारीपन विलीन हो जाता है, तुम निर्भार हो जाते हो। तुम झूठे केंद्र से हटकर फिर सच्चे केंद्र पर प्रतिष्ठित हो जाते हो। लेकिन यह कठिन है, श्रमसाध्य है, क्योंकि हम झूठे केंद्र से इतने बंधे हैं, ग्रस्त हैं। आत्म — स्मरण समय लेगा। लेकिन जब तक वह तुम्हारे लिए सहज नहीं होता, बिना प्रयास के नहीं होता, तब तक रूपांतरण संभव नहीं है। तुम तो अपना स्मरण रखना शुरू करो; अन्यथा कोई रूपांतरण संभव नहीं है।

दूसरा प्रश्न:
कल रात आपने कहा कि जीवन को सदा उसके विधायक आयामों में देखना चाहिए
और उसके नकारात्मक पक्ष जोर देना ठीक नहीं है। लेकिन क्या यह चुनाव नहीं है? और क्या यह समग्र सत्य के, जो है उसके साक्षात्कार के विरोध में नहीं जाता है?

यह चुनाव है। लेकिन जो व्यक्ति नकारात्मक है वह अचुनाव में छलांग नहीं ले सकता। यदि यह हो सकता होता तो अच्छा होता, लेकिन यह असंभव है। नकार से अचुनाव में गति असंभव है। क्योंकि नकारात्मक मन का अर्थ है कि तुम केवल कुरूप को देख सकते हो, केवल मृत्यु को देख सकते हो, केवल दुख को देख सकते हो, तुम जीवन के विधायक तत्वों को नहीं देख सकते। और स्मरण रहे, दुख को छोड़ना बड़ा कठिन है।
यह कहना अजीब मालूम पड़ता है, लेकिन मैं कहता हूं कि दुख से छलांग लेना कठिन है, सुख से छलांग लेना आसान है। जब तुम सुखी हो तो छलांग लगाना आसान है, क्योंकि सुख के साथ साहस आता है, सुख के साथ आनंद की बड़ी संभावना का द्वार खुलता है। सुख के साथ सारा जगत अपना घर मालूम पड़ता है। दुख में संसार नर्क मालूम पड़ता है। उसमें आशा नहीं, चारों तरफ निराशा ही निराशा नजर आती है। उस स्थिति में तुम छलांग नहीं ले सकते हो। दुख में आदमी कायर हो जाता है और वह दुख से चिपककर रहना चाहता है, क्योंकि यह दुख जाना—माना है।
दुख में तुम किसी साहसिक अभियान पर नहीं निकल सकते, उसके लिए एक सूक्ष्म सुख जरूरी है। तभी तुम ज्ञात को छोड़ सकते हो। तुम इतने सुखी हो कि अज्ञात से कोई डर न
रहा। और सुख ऐसा गहन है कि तुम जानते हो कि मैं जहां भी रहूंगा सुखी रहूंगा। विधायक चित्त के लिए कोई नर्क नहीं है, तुम जहां होगे वहीं स्वर्ग होगा। तुम अज्ञात में प्रवेश कर सकते हो, क्योंकि अब तुम जानते हो कि स्वर्ग मेरे साथ—साथ चलता है।
तुमने सुना है कि लोग स्वर्ग या नर्क जाते हैं। यह मूढ़ता—भरी बात है। कोई न स्वर्ग जाता है और न कोई नर्क जाता है। तुम अपना स्वर्ग—नर्क अपने साथ लिए चलते हो, तुम जहां जाते हो वहा अपने स्वर्ग—नर्क के साथ जाते हो। स्वर्ग और नर्क कोई द्वार नहीं हैं, वे तुम्हारे भार हैं जिन्हें तुम साथ लिए चलते हो।
केवल नृत्यमग्न हृदय के साथ ही तुम अज्ञात—अनजान के सागर में उतर सकते हो। यही वजह है कि मैं कहता हूं कि नकार से तुम चुनावरहित नहीं हो सकते। तुम अपने दुख से बंधे हो, वह जाना—माना है। तुम दुख से परिचित हो, तुम दुख से जुड़े हो। और अज्ञात की बजाय जाने—माने दुख में रहना बेहतर है। तुम कम से कम दुख से अभ्यस्त हो गए हो, तुम्हें उसके ढंग—ढांचे पता हैं। और तुमने अपने चारों ओर इस दुख से सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है, तुमने एक कवच लगा रखा है। अज्ञात दुख के लिए नयी सुरक्षा व्यवस्था चाहिए, इसलिए सदा अज्ञात दुख से ज्ञात दुख बेहतर है।
सुख के साथ बात बिलकुल बदल जाती है। सुखी आदमी ज्ञात सुख से अज्ञात सुख में जाना चाहता है, क्योंकि ज्ञात सुख उबाने वाला है। ज्ञात दुख से

अगर तुम्हारा चित्त नकारात्मक है तो सात सौ भी ज्यादा नहीं हैं। तुम
और ज्यादा खोज लोगे, उनका कोई अंत नहीं है।
विधायक चित्त तनावमुक्त हो सकता है। सच तो यह है कि अगर तुम विधायक हो
तो तनावग्रस्त नहीं हो सकते और अगर नकारात्मक हो तो तनावमुक्त नहीं हो सकते। नकारात्मक चित्त का संबंध ध्यान के साथ नहीं बन सकता, वैसा चित्त ध्यान—विरोधी होता है। वह ध्यान नहीं कर सकता, एक मच्छर भी उसके ध्यान को नष्ट करने के लिए काफी है। नकारात्मक चित्त के लिए शांति का, मौन का द्वार बंद हो जाता है। वह दुख के सृजन के द्वारा अपने को बनाए रखता है। वह अचुनाव की ओर कैसे गति कर सकता है?
कृष्णमूर्ति अचुनाव की बात किए जाते हैं और उनके जो श्रोता हैं वे सब नकारात्मक चित्त के लगि हैं। वे उन्हें सुनते हैं, लेकिन वे उन्हें समझते बिलकुल नहीं। और जब वे नहीं समझते हैं तो कृष्णमूर्ति सिर ठोंक लेते हैं कि वे समझते क्यों नहीं।
विधायक चित्त ही उसे समझ सकता है जो वे कहते हैं। लेकिन विधायक चित्त
को कहीं जाने की जरूरत नहीं है—न कृष्णमूर्ति के पास और न रजनीश के पास। सिर्फ नकारात्मक चित्त गुरु की खोज करता है। और नकारात्मक चित्त से अचुनाव की, द्वैत के पार जाने की, नकारात्मक और विधायक दोनों को जीने की बात करना व्यर्थ है। ऐसा नहीं है कि यह सत्य नहीं है, यह सत्य है, लेकिन उसकी बात करना व्यर्थ है। जो सुन रहा है उसका खयाल करना जरूरी है, वह बोलने वाले से ज्यादा महत्वपूर्ण है।
जैसा मैं देखता हूं तुम नकारात्मक हो। इसलिए पहले तुम्हें विधायक में रूपांतरित करने की जरूरत है। तुम्हें नहीं कहने वाले से ही कहने वाला बनाना है। तुम्हें जीवन को ही की दृष्टि से देखना चाहिए। और हा की दृष्टि के साथ ही यह धरती समग्रत रूपांतरित हो जाती है। और जब तुम्हें विधायक दृष्टि मिल जाए तभी तुम अचुनाव में छलांग लगा सकते हो। और तब वह आसान होगा, बहुत आसान होगा।
दुख का त्याग नहीं हो सकता, वह कठिन है। दुख से तुम्हारा लगाव है। सिर्फ सुख का त्याग हो सकता है। क्योंकि अब तुम जानते हो कि जब मैं नकार का त्याग करता हूं तो मुझे विधायक मिलता है, विधायक सुख प्राप्त होता है। तुम जानते हो कि नकार का त्याग करने से मुझे सुख मिलता है, इसलिए अगर मैं सुख का भी त्याग कर दूं विधायक मन का भी त्याग कर दूं तो मेरे लिए अनंत का द्वार खुल जाएगा। लेकिन सबसे पहले तुम्हें विधायक की प्रतीति जरूरी है। तभी, और केवल तभी, तुम छलांग ले सकते हो।

तीसरा प्रश्न:
अंतिम विधि के प्रसंग में कल आपने बताया कि माया के इस जगत में साधक
का आंतरिक चैतन्य ही उसका एकमात्र केंद्र है। इस संदर्भ में कृपया समझाएं कि इस माया के जगत में गुरु का महत्व क्या है? उसका काम क्या है?

यह माया का जगत तुम्हारे लिए माया नहीं है, तुम्हारे लिए यह बहुत यथार्थ है, सच्चा है। और गुरु का काम तुम्हें यह बताना है कि यह सत्य नहीं है। अभी यह जगत तुम्हारे लिए सत्य है। तुम कैसे सोच सकते हो कि यह माया है? तुम मिथ्या को मिथ्या की तरह तभी जानोगे जब तुम्हें सत्य की झलक मिल जाए; तभी तुलना का उपाय है। तुम्हारे लिए यह जगत माया नहीं है। तुमने सुना है, तुमने पढ़ा है कि यह जगत माया है और तुमने तोते की तरह इसे रट लिया है; और इसलिए तुम भी कहते रहते हो कि जगत माया है।
हर रोज कोई न कोई मेरे पास आता है और कहता है कि जगत माया है। और फिर कहता है कि मेरा मन बहुत चिंताग्रस्त है, तनावग्रस्त है; शांत होने का उपाय बताएं। और वह यह भी कहता है कि जगत माया है। अगर जगत माया है तो तुम्हारा मन तनावग्रस्त कैसे हो सकता है? अगर तुमने जान लिया कि जगत माया है तो जगत विदा हो जाएगा और जगत के साथ—साथ उसके सब दुख—संताप विदा हो जाएंगे।
लेकिन तुम्हारे लिए संसार है। तुम नहीं जानते कि संसार माया है। सुबह
जब नींद विदा हो जाती है और उसके साथ ही स्वप्न भी तो क्या तुम स्वप्नों की

48

चिंता लेते हो? क्या तुम परेशान होते हो कि सपने में मैं बीमार था या मर गया था? जब तक स्वप्न था, तुम परेशान थे कि बीमार हूं,कि मुझे दवा चाहिए, कि मेरे लिए डाक्टर को बुला दो। लेकिन सुबह जैसे ही तुम्हारी नींद खुली और सपने विदा हो गए तुम परेशान नहीं हो। अब तुम जानते हो कि यह सपना था और मैं बीमार नहीं हूं।
अगर कोई आकर मुझे कहे कि मैं जानता हूं कि यह सपना था कि मैं बीमार हूं लेकिन मुझे बताएं कि बीमारी से छुटकारे के लिए दवा कहा प्राप्त करूं, तो उसका क्या मतलब होगा? उसका मतलब होगा कि वह अभी भी सोया है, कि वह अभी भी सपने देख रहा है। इसका अर्थ है कि सपना अभी जारी है।
भारत में यह तोता—रटंत कि सारा संसार माया है, लोगों के मन में बहुत गहराई तक प्रवेश कर गई है। लेकिन यह प्रवेश झूठे केंद्र में हुआ है, यह विकास नहीं है। हमने सुना है; उपनिषद, वेद और ऋषि—मुनि सदियों से कहते आ रहे हैं कि संसार माया है। उन्होंने इस धारणा को इतने जोर से प्रसारित— प्रचारित किया है कि जो सोए हैं, जो सपने देख रहे हैं, उन्हें भी लगता है कि हम जागे हुए हैं। लेकिन सारा संसार सोया हुआ है और उनका दुख बताता है कि उनके लिए संसार यथार्थ है, उनका संताप कहता है कि संसार सत्य है।
गुरु का काम है कि तुम्हें सत्य की एक झलक दे। उसका काम तुम्हें सिखाना नहीं, जगाना है। गुरु शिक्षक नहीं है, जगाने वाला है। गुरु तुम्हें सिद्धांत नहीं देता है। अगर वह कोई सिद्धांत देता है तो वह दार्शनिक है। अगर वह संसार को माया कहता है और तर्क—वितर्क करता है, प्रमाणित करता है कि संसार माया है, अगर वह तुम्हें कोई बौद्धिक सिद्धांत देता है, तो वह गुरु नहीं है। वह शिक्षक हो सकता है, किसी विशेष विचारधारा का शिक्षक, लेकिन वह गुरु कतई नहीं है। गुरु सिद्धांत नहीं देता है, वह विधि देता है, उपाय देता है, ताकि तुम नींद से बाहर आ सको।
यही कारण है कि गुरु सदा तुम्हारे सपनों के लिए बाधा बन जाता है और गुरु के साथ रहना कठिन हो जाता है। शिक्षक के साथ रहना बहुत आसान है, वह कभी तुम्हारी नींद में बाधा नहीं डालता। सच तो यह है कि वह तुम्हारे ज्ञान — संग्रह को बढ़ाता है, वह तुम्हारे अहंकार को बढ़ाता है। शिक्षक तुम्हें पंडित बनने में सहायता देता है। उससे तुम्हारा अहंकार तृप्त होता है। अब तुम ज्यादा जानते हो, अब तुम ज्यादा तर्क—वितर्क कर सकते हो, तुम दूसरों को शिक्षा दे सकते हो। लेकिन गुरु सदा उपद्रवी होता है, वह तुम्हारी नींद में, तुम्हारी स्वप्न—तंद्रा में बाधा बन जाता है। हो सकता है, तुम बहुत सुंदर सपने देख रहे थे, तुम किसी यात्रा पर थे, सुंदर यात्रा पर। गुरु उसमें बाधा डालेगा और तुम नाराज होओगे।
इसलिए गुरु को सदा अपने शिष्यों से खतरा' रहता है। शिष्य किसी भी क्षण उसकी हत्या कर सकते हैं, क्योंकि वह विध्न डालेगा ही। वही तो उसका काम है। वह तुम्हें वैसे ही नहीं रहने दे सकता जैसे तुम हो। क्योंकि तुम गलत हो, झूठे हो। वह तुम्हारे झूठे व्यक्तित्व को मिटाएगा। और यह काम पीड़ादायी है।
यही कारण है कि यदि गहन प्रेम न हो तो यह काम असंभव है। अति घनिष्ठत की, अंतरंगता की जरूरत है; अन्यथा घृणा बीच में आ जाएगी। गुरु तुम्हें अपने निकट नहीं आने देगा, यदि तुमने समर्पण नहीं किया है। अन्यथा तुम शत्रु बनने वाले हो। तुम्हारे पूरी तरह समर्पण करने पर ही गुरु काम कर सकता है। क्योंकि उसका काम आध्यात्मिक सर्जरी है। और शिष्य को बहुत पीड़ा से गुजरना होगा। तो अगर उसका गुरु के साथ गहन आत्मीयता का संबंध नहीं है तो यह काम असंभव है। वह इतनी पीड़ा झेलने को राजी नहीं होगा। वह आनंद की खोज में आया था और गुरु उसे पीड़ा में डालता है! वह सुख का अनुभव लेने आया था और गुरु उसके लिए नर्क निर्मित करता है!
शुरू में तो नर्क ही होगा, क्योंकि तुम्हारी अपनी इमेज चूर—चूर हो जाएगी, तुम्हारी अपेक्षाएं चूर—चूर हो जाएंगी। तुमने जो भी जाना है, उसे तुम्हें फेंक देना होगा। तुम जो भी हो, गुरु उसे मिटाएगा। सच ही तुम्हें मृत्यु से गुजरना है।
भारत में प्राचीन दिनों में हम कहते थे: आचार्यो मृत्यु:। गुरु मृत्यु है। वह है। और जब तक तुम्हारी श्रद्धा समग्र नहीं है, यह सर्जरी

49

असंभव है। क्योंकि आरंभ में तो पीड़ा होगी, तुम्हारे दुख—दर्द उभरेंगे, तुम्हारे दमित नर्क ऊपर आएंगे। अगर गुरु में तुम्हें भरोसा है, गहन श्रद्धा है, तो ही तुम उसके साथ बने रह सकते हो। अन्यथा तुम भाग जाओगे, क्योंकि यह आदमी तुम्हें पूरी तरह अस्तव्यस्त कर रहा है, उपद्रव में डाल रहा है।
तो स्मरण रहे, गुरु का काम है तुम्हें तुम्हारे झूठे केंद्र का बोध कराना। तुम्हारे झूठे केंद्र के कारण तुम्हारा संसार ही झूठा हो गया है। संसार दरअसल माया नहीं है, वह तुम्हारी भ्रांत दृष्टि के कारण माया है। तुम्हारी आंखें सपनों से भरी हैं और तुम चारों ओर अपने सपनों को प्रक्षेपित कर रहे हो। और उससे ही सत्य असत्य हो जाता है। जब तुम्हारी आंखें शुद्ध होंगी, सत्य होंगी, तो यही संसार सत्य हो उठेगा। जब तुम्हारा झूठा केंद्र मिट जाएगा और तुम अपने सच्चे केंद्र पर, अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाओगे, तो यही संसार निर्वाण हो जाएगा।
झेन गुरु निरंतर कहते हैं कि यह संसार ही निर्वाण है, यह संसार ही मोक्ष है।
सब दृष्टि की बात है। झूठी आंखों से सब कुछ झूठा हो जाता है, सच्ची आंखों से सब कुछ सत्य हो जाता है। तुम्हारा झूठा व्यक्तित्व तुम्हारे चारों ओर झूठा संसार निर्मित कर देता है। और यह मत सोचो कि सब लोग एक ही संसार में रहते हैं। ऐसा नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति अपने ही संसार में रहता है। उतने ही संसार हैं जितने मन हैं, क्योंकि प्रत्येक मन अपनी दुनिया बना लेता है। अगर तुम परिवार में भी रहते हो तो पति अपनी दुनिया में रहता है और पत्नी अपनी दुनिया में रहती है। और रोज—रोज इन दुनियाओं के बीच टकराहट होती रहती है। वे कभी मिलती नहीं, वे बस टकराती हैं। मिलन असंभव है। मनों का मिलन नहीं हो सकता, सिर्फ टकराहट, सिर्फ संघर्ष होता है। जब मन नहीं है तब मिलन हो सकता है।
पत्नी अपनी ही दुनिया में रहती है, अपनी ही अपेक्षाओं में जीती है। उसके लिए वह असली पति नहीं है जो वस्तुत: संसार में है, वह पति की अपनी ही एक इमेज रखती है। पति भी अपनी दुनिया में रहता है और असली पत्नी उसकी पत्नी नहीं है। उसके पास भी पत्नी की एक इमेज है और जब कभी यह पत्नी इस इमेज से कम पड़ती है, द्वंद्व और संघर्ष का, क्रोध और घृणा का दौर शुरू हो जाता है। पति पत्नी की अपनी इमेज को प्रेम करता है, पत्नी पति की अपनी इमेज को प्रेम करती है। और वे दोनों इमेज काल्पनिक हैं, झूठी हैं, वे कहीं भी नहीं हैं। असली पति भी मौजूद है, असली पत्नी भी मौजूद है, लेकिन उनका मिलना कहीं नहीं हो सकता। क्योंकि इन दो असली व्यक्तियों के बीच में कल्पना के पति—पत्नी आ जाते हैं। वे सदा हैं। और वे असली को, वास्तविक को नहीं मिलने देते हैं।
प्रत्येक व्यक्ति अपने ही संसार में रहता है, वह अपने ही सपनों में, अपेक्षाओं में, प्रक्षेपणों में जीता है। तो जितने मन हैं उतने ही संसार हैं; और वे सब संसार माया हैं। जब तुम्हारा झूठा केंद्र विलीन होता है, पूरा जगत बदल जाता है। तब जो संसार है, वह सत्य है। तब तुम पहली दफा चीजों को वैसी देखते हो जैसी वे हैं। फिर कोई दुख नहीं रहता, क्योंकि माया के साथ अपेक्षाएं भी जाती रहती हैं। और सत्य में दुख नहीं होता है। तब व्यक्ति स्पष्ट देखता है कि ऐसा है, ऐसा तथ्य है। सिर्फ झूठ के साथ समस्याएं खडी होती हैं। और झूठ तुम्हें तथ्यों को कभी नहीं जानने देते हैं। मन के ये झूठ ही माया हैं।
गुरु का काम इतना है कि वह तुम्हारे झूठों को चकनाचूर कर दे, ताकि तथ्य तुम्हें उपलब्ध हो जाए और तुम तथ्य को उपलब्ध हो जाओ। यह तथ्यता ही, यह तथाता ही सत्य है। और जब तुम तथाता को जान लोगे तो गुरु भी वही नहीं रह जाएगा।
अभी यदि तुम गुरु के पास भी आते हो तो तुम गुरु की अपनी ही इमेज लेकर आते हो। कोई मेरे पास आता है तो वह मेरी एक इमेज लेकर आता है। और जब मैं उसकी अपेक्षा से मेल नहीं खाता तो वह कठिनाई में पड़ता है। लेकिन मैं उसकी अपेक्षाओं को कैसे पूरी कर सकता हूं? और अगर मैं सबकी अपेक्षाएं पूरी करने की चेष्टा करूं तो मैं उपद्रव में पडूंगा। हरेक शिष्य सोचता है कि मुझे

50

ऐसा—होना चाहिए, वैसा होना चाहिए उसकी गुरु की अपनी ही धारणा है। अगर मैं उसकी धारणाओं की पूर्ति नहीं करता हूं तो वह निराश होता है। लेकिन ऐसा होना अनिवार्य है। शिष्य मन लेकर आता है; और यही समस्या है। मुझे उसके मन को बदलना है, पोंछ देना है। शिष्य मन लेकर आता है और उसी मन से मुझे देखता है।
मैं एक परिवार के साथ ठहरा हुआ था। जैन परिवार था, वे लोग रात में भोजन नहीं करते थे। उस परिवार के जो वयोवृद्ध थे, पितामह थे, वे मेरी पुस्तकों के प्रेमी थे। मुझे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था; और किताब से प्रेम करना आसान है, किताब मुर्दा चीज है। वे मुझे मिलने आए। वे इतने वृद्ध थे कि अपने कमरे से उठकर आना भी उनके लिए कठिन था। वे बानबे वर्ष के थे। और वे मुझे मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि मैं ही आपके कमरे में आ जाऊंगा; लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं, मैं आपका बहुत आदर करता हूं मैं ही आऊंगा।
वे आए और उन्होंने मेरी भूरि— भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि आप बिलकुल तीर्थंकर जैसे हैं, जैनियों के सर्वोच्च तीर्थंकर महावीर जैसे हैं। जैनियों के सवोंच्च गुरु तीर्थंकर कहलाते हैं। तो उन्होंने कहा कि आप तीर्थंकर जैसे हैं। वे मेरी प्रशंसा ही प्रशंसा करते रहे।
इसी बीच सांझ उतर आयी और अंधेरा छाने लगा। घर के अंदर से कोई आया और मुझसे बोला कि देर हो रही है, आप जाकर भोजन कर लें। मैंने उससे कहा कि जरा रुको, इन वृद्ध सज्जन को अपनी बात पूरी कर लेने दो, फिर मैं भोजन कर लूंगा। उन वृद्ध ने कहा: आप क्या कह रहे हैं? क्या आप रात होने पर भोजन करेंगे? मैंने कहा कि मेरे लिए सब ठीक है। तो उन वृद्ध सज्जन ने कहा कि मैं अपने वचन वापस लेता हूं आप तीर्थंकर नहीं हैं। जो व्यक्ति इतना भी नहीं जानता कि रात में खाना महापाप है, वह और क्या जानेगा!
अब मेरे साथ इस व्यक्ति का मिलन नहीं हो सकता, वह असंभव है। यदि मैं रात में भोजन नहीं लेता तो मैं तीर्थंकर था। मैंने अभी भोजन लिया भी नहीं था, मैंने कहा भर था कि मैं रात में भोजन लूंगा और एकाएक मैं तीर्थंकर न रहा। उन वृद्ध सज्जन ने मुझे कहा कि मैं आपसे कुछ सीखने आया था, लेकिन अब वह असंभव है। अब मुझे लगता है कि मैं ही आपको कुछ सिखाऊं।
जब यह संसार माया हो जाता है तो तुम्हारा गुरु भी उसका एक हिस्सा होगा
और वह दृष्टि भी विलीन होगा। इसलिए जब शिष्य जागता है तो गुरु नहीं रहता है। यह बात परस्पर विरोधी मालूम पड़ेगी। जब शिष्य सच में ही बोध को उपलब्ध होता है तो गुरु नहीं रहता।
बौद्ध संत सरहा के अनेक सुंदर गीत हैं, वह प्रत्येक गीत के अंत में कहता है: और सरहा विलीन हो गया। वह कुछ उपदेश करता है, कुछ समझता है। वह कहता है. न संसार है और न निर्वाण है, न शुभ है और न अशुभ है। पार जाओ, और सरहा विलीन होता है।
अब तक यह पहेली रही है कि सरहा क्यों बार—बार कहता है कि सरहा विलीन होता है। अगर तुम सच ही सरहा के इस गीत को, उसके इस उपदेश को उपलब्ध हो जाओ कि न शुभ है न अशुभ, न संसार है न निर्वाण, अगर शिष्य सचमुच इस सत्य के प्रति जाग जाए तो सरहा विलीन हो जाएगा। गुरु कहां रहेगा? गुरु तो शिष्य के संसार का हिस्सा था। अब न कोई गुरु होगा और न कोई शिष्य। वे एक हो जाएंगे। जब शिष्य जागता है तो वह गुरु हो जाता है और सरहा विलीन हो जाता है। तब गुरु कहां? गुरु भी तुम्हारे स्वप्न का, माया—जगत का हिस्सा है।
लेकिन इसके कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। कृष्णमूर्ति कहे जाते हैं कि कोई गुरु नहीं है। और वे सही हैं। यह परम सत्य है। जब तुम बुद्ध हो गए तो तुम ही गुरु हो, कोई दूसरा गुरु नहीं है। लेकिन यह तो परम सत्य है और इस सत्य के घटित होने के पूर्व गुरु है क्योंकि शिष्य है। शिष्य ही गुरु को निर्मित करता है; वह शिष्य की जरूरत है।
तो स्मरण रहे, अगर तुम्हें मिथ्या गुरु मिलता है तो उसका अर्थ है कि तुम्हें मिथ्या गुरु की ही पात्रता थी। मिथ्या शिष्य सही गुरु को नहीं पा सकता है। तुम अपना गुरु आप निर्मित करते हो। गुरु छोटा है या बड़ा है, यह भी तुम पर निर्भर करता है। तुम्हें तुम्हारी पात्रता के मुताबिक ही गुरु मिलता है। अगर तुम्हें गलत व्यक्ति मिल जाता है तो उसका कारण तुम हो। उसके लिए वह गलत व्यक्ति नहीं, तुम ही जिम्मेवार हो।

51

[illegible]

[illegible]

तंत्र-सूत्र, भाग 3
सैतीसवां प्रवचन

स्वीकार रूपांतरण है

सूत्र:

57—तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।
58—यह तथाकथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र—कृति
जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।
59—प्रिय, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के
मध्य में अवधान को स्थिर करो।
60—विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है।
इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।

जो मूलभूत मन है वह दर्पण की भांति है; वह शुद्ध है। वह शुद्ध ही रहता है। उस पर धूल जमा हो सकती है, लेकिन उससे दर्पण की शुद्धता नष्ट नहीं होती। धूल शुद्धता को मिटा नहीं सकती, लेकिन वह शुद्धता को आच्छादित कर सकती है। सामान्य मन की यही अवस्था है—वह धूल से ढंका है। लेकिन धूल में दबा हुआ मौलिक मन भी शुद्ध ही रहता है। वह अशुद्ध नहीं हो सकता, यह असंभव है। और अगर उसका अशुद्ध होना संभव होता तो फिर उसकी शुद्धता को वापस पाने का उपाय नहीं रहता। अपने आप में मन शुद्ध ही रहता है—सिर्फ धूल से आच्छादित हो जाता है।
हमारा जो मन है वह मौलिक मन + धूल है, वह शुद्ध मन + धूल है, वह परमात्म—मन. धूल है; और जब तुम जान लोगे कि इस मन को कैसे उघाड़ा जाए कैसे धूल से मुक्त किया जाए, तो तुमने सब जान लिया जो जानने योग्य है और तुमने सब पा लिया जो पाने योग्य है।
ये सभी विधियां यही बताती हैं कि कैसे तुम्हारे मन को रोज—रोज की धूल
से मुक्त किया जाए। धूल का जमा होना लाजिमी है; धूल स्वाभाविक है। जैसे अनेक रास्तों से यात्रा करते हुए यात्री पर धूल जमा हो जाती है वैसे ही तुम्हारे मन पर भी धूल जमा होती है। तुम भी अनेक जन्मों से यात्रा कर रहे हो; तुमने भी बड़ी दूरियां तय की हैं; और फलत: बहुत—बहुत धूल इकट्ठी हो गई है।
विधियों में प्रवेश करने के पहले अनेक बातें समझने जैसी हैं। एक कि आंतरिक रूपांतरण के प्रति पूरब की दृष्टि पश्चिम की दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। ईसाइयत समझती है कि मनुष्य की आत्मा को कुछ हुआ है, जिसे वह पाप कहती है। पूरब ऐसा नहीं सोचता है। पूरब का खयाल है कि आत्मा को कुछ नहीं हुआ है; कुछ हो भी नहीं सकता। आत्मा अपनी परिपूर्ण शुद्धता में है; उससे कोई पाप नहीं हुआ है। इसलिए पूरब में मनुष्य निंदित नहीं है; वह पतित नहीं है। बल्कि इसके विपरीत मनुष्य ईश्वरीय बना रहता है—जो वह है, जो वह सदा रहा है।
और यह स्वाभाविक है कि धूल जमा हो। धूल का जमा होना अनिवार्य है। वह पाप
नहीं है; महज गलत तादात्म्य है। हम मन से, धूल से तादात्म्य कर लेते हैं। हमारे अनुभव, हमारे ज्ञान, हमारी स्मृतियां सब धूल है। तुमने जो भी जाना है, जो भी अनुभव किया है, जो भी तुम्हारा अतीत रहा है, सब धूल है। मूलभूत मन को पुन: प्राप्त करने का अर्थ है कि शुद्धता को पुन: प्राप्त किया जाए—अनुभव और ज्ञान से, स्मृति और अतीत से मुक्त शुद्धता को।
समूचा अतीत धूल है। और हमारा तादात्म्य अतीत से है, उस चैतन्य से नहीं
जो सदा मौजूद है। इस पर इस भांति विचार करो। तुम जो कुछ जानते हो वह सदा अतीत का है; और तुम वर्तमान में हो, अभी और यहीं हो। जीना सदा वर्तमान में है। तुम्हारा सारा ज्ञान धूल है। जानना तो शुद्ध है, शुद्धता है; लेकिन ज्ञान धूल है। जानने की क्षमता, जानने की ऊर्जा, जानना तुम्हारा मूलभूत स्वभाव है। उस जानने के जरिए तुम ज्ञान इकट्ठा कर लेते हो; वह ज्ञान धूल जैसा है। अभी और यहां, इसी क्षण तुम बिलकुल शुद्ध हो, परम शुद्ध हो; लेकिन

55

इस शुद्धता के साथ तुम्हारा तादात्म्य नहीं है। तुम्हारा तादात्म्य तुम्हारे अतीत के साथ है, सारे संगृहीत अतीत के साथ है।
तो ध्यान की सारी विधियां बुनियादी रूप से तुम्हें तुम्हारे अतीत से तोड़कर अभी और यहां से जोड्ने के उपाय हैं, तुम्हें तुम्हारे वर्तमान में प्रवेश देने के उपाय हैं।
बुद्ध खोज रहे थे कि कैसे चेतना की इस शुद्धता को फिर से प्राप्त किया जाए कैसे अतीत से मुक्त हुआ जाए। क्योंकि जब तक तुम अतीत से मुक्त नहीं होते, तुम बंधन में रहोगे, तुम गुलाम बने रहोगे। अतीत तुम पर बोझ की तरह है, और इस अतीत के कारण वर्तमान सदा अनजाना रह जाता है। अतीत ज्ञात है, और इस अतीत के चलते तुम वर्तमान को चूकते जाते हो, जो बहुत आणविक है, सूक्ष्म है। और अतीत के कारण ही तुम भविष्य का प्रक्षेपण करते हो, निर्माण करते हो। अतीत ही भविष्य में प्रक्षेपित हो जाता है; और दोनों ही झूठ हैं। अतीत बीत चुका और भविष्य होने को बाकी है, दोनों नहीं हैं। और जो है, वह वर्तमान, वह अस्तित्व इन दो अनस्तित्वों के बीच छिपा है, दबा है।
बुद्ध खोज में थे, वे एक गुरु से दूसरे गुरु के पास गए। वे खोज में थे
और अनेक गुरुओं के पास गए जो सबके सब जाने—माने गुरु थे। उन्होंने उनकी बात सुनी; उन्होंने उनके अनुसार साधना की। गुरुओं ने जो कुछ करने को कहा, बुद्ध ने सब किया। उन्होंने अनेक ढंग से अपने को अनुशासित किया, साधा; लेकिन वे तृप्त न हुए। और कठिनाई यही थी कि गुरु भविष्य में उत्सुक थे, मृत्यु के बाद किसी मोक्ष में उत्सुक थे। वे किसी भविष्य में, किसी ईश्वर में, किसी निर्वाण में, किसी मोक्ष में उत्सुक थे। और बुद्ध अभी और यहां में उत्सुक थे। इसलिए दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं हो सका।
बुद्ध ने हरेक गुरु से कहा कि मैं अभी और यहां में उत्सुक हूं मैं अभी
और यहां में समग्र होना चाहता हूं पूर्ण होना चाहता हूं। और गुरु कहते कि यह उपाय करो, वह उपाय करो; और अगर ठीक से उपाय करोगे तो भविष्य में किसी दिन, किसी भविष्य जीवन में, किसी भविष्य अवस्था में तुम पा लोगे। देर— अबेर बुद्ध ने एक—एक करके सभी गुरुओं को छोड़ दिया, और फिर उन्होंने स्वयं ही, अकेले ही प्रयोग किया। क्या किया उन्होंने?
बुद्ध ने बहुत सरत्न काम किया। तुम इसे एक बार जान लो तो यह बहुत सरत्न है, सीधा—साफ है। लेकिन नहीं जानने पर वह बहुत कठिन है, असंभव सा ही है। उन्होंने एक ही काम किया; वे वर्तमान क्षण में रहे। वे अपने अतीत को भूल गए, अपने भविष्य को भूल गए। उन्होंने कहा कि मैं अभी और यहीं होऊंगा, मैं सिर्फ होऊंगा।
और अगर तुम एक क्षण के लिए भी सिर्फ हो सके तो तुमने स्वाद जान लिया, अपनी शुद्ध चेतना का स्वाद। और एक बार ले लेने पर यह स्वाद भूलता नहीं है। वह स्वाद तुम्हारे साथ रहता है; और वही रूपांतरण बन जाता है।
अतीत से अपने को अनावृत करने के, धूल को हटाकर अपने मन के दर्पण में झांकने के अनेक उपाय हैं। ये सारी विधियां उसके ही भिन्न—भिन्न उपाय हैं। लेकिन स्मरण रहे, प्रत्येक विधि के प्रति एक गहरी समझ जरूरी है। ये विधियां यांत्रिक नहीं हैं; क्योंकि उन्हें चेतना को अनावृत करना है, उघाड़ना है। वे यांत्रिक नहीं हैं।
तुम इन विधियों का प्रयोग यांत्रिक ढंग से भी कर सकते हो। और अगर ऐसा करोगे तो तुम्हें मन की थोड़ी शांति भी प्राप्त हो जाएगी; लेकिन वह मूलभूत शुद्धता नहीं होगी। तुम्हें थोड़ा मौन उपलब्ध हो सकता है; लेकिन वह मौन अभ्यासजनित मौन होगा। वह भी मन की धूल का ही हिस्सा होगा। वह मूलभूत शुद्धता नहीं होगी।
तो इनका प्रयोग यांत्रिक ढंग से मत करो। एक गहरी समझ की जरूरत है। और समझ से ये विधियां तुम्हारी आत्मा को उघाड़ने में, आविष्कृत करने में बहुत सहयोगी होंगी।

साक्षीत्व की पहली विधि:
तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।
'तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रही।’

56

जब तुम्हें कामना घेरती है, चाह पकड़ती है, तो तुम उत्तेजित हो जाते हो, उद्विग्न हो जाते हो। यह स्वाभाविक है। जब चाह पकड़ती है तो मन डोलने लगता है, उसकी सतह पर लहरें उठने लगती हैं। कामना तुम्हें खींचकर कहीं भविष्य में ले जाती है; अतीत तुम्हें कहीं भविष्य में धकाता है। तुम उद्विग्न हो जाते हो, बेचैन हो जाते हो। अब तुम चैन में न रहे। चाह बेचैनी है, रुग्णता है।
यह सूत्र कहता है: 'तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।’
लेकिन अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? कामना का अर्थ ही उद्वेग है, अशांति है; फिर अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? शांत कैसे रहा जाए? और वह भी कामना के तीव्रतम क्षणों में!
तुम्हें कुछ प्रयोगों से गुजरना होगा तो ही तुम इस विधि का अभिप्राय समझ सकते हो। तुम क्रोध में हो; क्रोध ने तुम्हें पकड़ लिया है। तुम अस्थायी रूप से पागल हो, आविष्ट हो, अवश हो। तुम होश में नहीं हो। इस अवस्था में अचानक स्मरण करो कि अनुद्विग्न रहना है—मानो तुम कपड़े उतार रहे हो, नग्न हो रहे हो। भीतर नग्न हो जाओ, क्रोध से निर्वस्त्र हो जाओ। क्रोध तो रहेगा, लेकिन अब तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो अनुद्विग्न है, शांत है। तुम्हें पता होगा कि क्रोध परिधि पर है; बुखार की तरह वह वहा है। परिधि कांप रही है; परिधि अशांत है। लेकिन तुम उसके द्रष्टा हो सकते हो। और यदि तुम उसके द्रष्टा हो सके तो तुम अनुद्विग्न रहोगे। तुम उसके साक्षी हो जाओ, और तुम शांत हो जाओगे। यह शांत बिंदु ही तुम्हारा मूलभूत मन है।
मूलभूत मन अशांत नहीं हो सकता; वह कभी अशांत नहीं होता है। लेकिन तुमने उसे कभी देखा नहीं है। जब क्रोध होता है तो तुम्हारा उससे तादात्म्य जाता है। तुम भूल जाते हो कि क्रोध तुमसे भिन्न है, पृथक है। तुम उससे एक हो जाते हो; और तुम उसके द्वारा सक्रिय हो जाते हो, कुछ करने लगते हो। और तब दो चीजें संभव हैं।
तुम क्रोध में किसी के प्रति, क्रोध के विषय के प्रति हिंसात्मक हो सकते हो; लेकिन तब तुम दूसरे की ओर गति कर गए। क्रोध ने तुम्हारे और दूसरे के बीच जगह ले ली। यहां मैं हूं जिसे क्रोध हुआ है, फिर क्रोध है और वहां तुम हो, मेरे क्रोध का विषय। क्रोध से मैं दो आयामों में यात्रा कर सकता हूं। या तो मैं तुम्हारी तरफ जा सकता हूं अपने क्रोध के विषय की तरफ। तब तुम, जिसने मेरा अपमान किया, मेरी चेतना के केंद्र बन गए; तब मेरा मन तुम पर केंद्रित हो गया। यह एक ढंग है क्रोध से यात्रा करने का।
दूसरा ढंग है कि तुम अपनी ओर, स्वयं की ओर यात्रा करो। तुम उस व्यक्ति
की ओर नहीं गति करते जिसने तुम्हें क्रोध करवाया, बल्कि उस व्यक्ति की तरफ जाते हो जो क्रोध अनुभव करता है। तुम विषय की ओर न जाकर विषयी की ओर गति करते हो।
साधारणत: हम विषय की ओर ही बढ़ते हैं। और विषय की ओर बढ़ने से मन का धूल— भरा हिस्सा उत्तेजित और अशांत हो जाता है; और तुम्हें अनुभव होता है कि मैं अशांत हूं। अगर तुम भीतर की ओर मुड़ो, अपने केंद्र की ओर मुड़ो, तो तुम धूल वाले हिस्से के साक्षी हो जाओगे। तब तुम देख सकोगे कि धूल वाला हिस्सा तो अशांत है, लेकिन मैं अशांत नहीं हूं। और तुम किसी भी इच्छा के साथ, किसी भी अशांति के साथ यह लेकर प्रयोग कर सकते हो।
तुम्हारे मन में कामवासना उठती है; तुम्हारा सारा शरीर उससे अभिभूत
हो जाता है। अब तुम काम—विषय की ओर, अपनी वासना के विषय की ओर जा सकते हो। चाहे वह वास्तव में वहा हो या न हो। तुम कल्पना में भी उसकी तरफ यात्रा कर सकते हो। लेकिन तब तुम और ज्यादा अशांत होते जाओगे। तुम अपने केंद्र से जितनी दूर निकल जाओगे उतने ही अधिक अशांत होते जाओगे। सच तो यह है कि दूरी और अशांति सदा समान अनुपात में होती हैं। तुम अपने केंद्र से जितनी दूर होंगे उतने ज्यादा अशांत होंगे और केंद्र के जितने करीब होंगे उतने कम अशांत होगे। और अगर तुम ठीक केंद्र पर हो तो कोई अशांति नहीं है।
हर तूफान के बीचो—बीच एक केंद्र होता है जो बिलकुल शांत रहता है; वैसे ही क्रोध के तूफान के केंद्र पर, काम के तूफान के केंद्र पर, किसी भी वासना के तूफान के केंद्र—ठीक केंद्र पर कोई तूफान नहीं होता है। और कोई

57

इसीलिए तंत्र वासना के विरोध में नहीं है। वह कहता है. वासना में उतरो, लेकिन उस केंद्र को स्मरण रखो जो शांत है। तंत्र कहता है कि इस प्रयोग के लिए कामवासना का भी उपयोग किया जा सकता है। काम—कृत्य में उतरो, लेकिन अनुद्विग्न रही, शांत रहो; और साक्षी रहो, गहरे में द्रष्टा बने रहो। जो भी हो रहा है वह परिधि पर हो रहा है और तुम केवल देखने वाले हो, दर्शक हो।
यह विधि बहुत उपयोगी हो सकती है और इससे तुम्हें बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन यह कठिन होगा। क्योंकि जब तुम अशांत होते हो तो तुम सब कुछ भूल जाते हो। तुम यह भूल जा सकते हो कि मुझे ध्यान करना है। तो फिर इसे इस भांति प्रयोग करो। उस क्षण के लिए मत रुको जब तुम्हें क्रोध होता है। उस क्षण के लिए मत रुको। अपना कमरा बंद करो और क्रोध के किसी अतीत अनुभव को स्मरण करो जिसमें तुम पागल ही हो गए थे। उसे स्मरण करो और फिर से उसका अभिनय करो।
यह तुम्हारे लिए सरत्न होगा। उस अनुभव को फिर से अभिनीत करो, उसे फिर
से जीओ। स्मरण ही मत करो, उसे जीओ। स्मरण करो कि किसी ने तुम्हारा अपमान किया था; स्मरण करो कि अपमान करते हुए उसने क्या कहा था और फिर तुमने क्या प्रतिक्रिया की थी। पूरी चीज को फिर से अभिनीत करो, फिर से पूरा नाटक दोहराओ।
शायद तुम्हें पता न हो कि मन टेप—रिकार्डिंग यंत्र जैसा ही है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं, अब तो यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अगर तुम्हारे स्मृति— केंद्रों को इलेक्ट्रोड से छुआ जाए तो वे केंद्र फिर से संगृहीत अनुभवों को दोहराने लगते हैं। उदाहरण के लिए, तुमने कभी क्रोध किया था और वह घटना तुम्हारे मन के टेप—रिकार्डर पर रिकार्ड है; ठीक उसी अनुक्रम में वह रिकार्ड है जिस अनुक्रम में वह घटित हुई थी। अगर उसे इलेक्ट्रोड से छुओगे तो वह घटना पुन: जीवंत होकर दोहरने लगेगी। तुम्हें वही—वही भाव फिर से होंगे जो क्रोध करते समय हुए थे। तुम्हारी आंखें लाल हो जाएंगी; तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा, ज्वरग्रस्त हो जाएगा; पूरी कहानी फिर दोहरेगी। और ज्यों ही इलेक्ट्रोड को वहा से हटाओगे, नाटक बंद हो जाएगा। यदि तुम उसे फिर ऊर्जा देते हो, वह फिर बिलकुल शुरू से चालू हो जाता है।
अब वे कहते हैं कि मन एक रिकार्डिंग मशीन है और तुम किसी भी अनुभव को दोहरा सकते हो।
लेकिन स्मरण ही मत करो, उसे फिर से जीओ। अनुभव को फिर जीना शुरू करो और
मन उसे पकड़ लेगा। वह घटना वापस लौट आएगी और तुम उसे फिर जीओगे। और इसे पुन: जीते हुए अनुद्विग्न रही, शांत रहो। अतीत से शुरू करो। और यह सरत्न है, क्योंकि अब यह नाटक है। यह यथार्थ स्थिति नहीं है। और अगर तुम यह करने में समर्थ हो गए तो जब सच ही क्रोध की स्थिति पैदा होगी, तुम उसे भी कर सकोगे। और यह प्रत्येक कामना के साथ किया जा सकता है; प्रत्येक कामना के साथ किया जाना चाहिए।
अतीत के अनुभवों को फिर से जीना बड़े काम का है। हम सब के मन में घाव हैं; ऐसे घाव हैं जो अभी भी हरे हैं। अगर तुम उन्हें फिर से. जी लोगे तो तुम निर्भार हो जाओगे। अगर तुम अपने अतीत में लोट सके और अधूरे अनुभवों को जी सके तो तुम अपने अतीत के बोझ से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा मन ताजा हो जाएगा; धूल झड़ जाएगी।
अपने अतीत में से कोई ऐसा अनुभव स्मरण करो जो तुम्हारे देखे अधूरा पड़ा है। तुम किसी की हत्या करना चाहते थे, तुम किसी को प्रेम करना चाहते थे; तुम यह या वह करना चाहते थे। लेकिन वे सारे काम अपूर्ण रह गए अधूरे रह गए। और वह अधूरी चीज तुम्हारे मन के आकाश पर बादल की भांति मंडराती रहती है। वह तुम्हें और तुम्हारे कृत्यों को सदा प्रभावित करती रहती है। उस बादल को विसर्जित करना होगा। तो उसके कालपथ को पकड़कर मन में पीछे लौटो और उन कामनाओं को फिर से जीओ जो अधूरी रह गई हैं, उन घावों को फिर से जीओ जो अभी भी हरे हैं। वे घाव भर जाएंगे; तुम स्वस्थ हो जाओगे। और इस प्रयोग के द्वारा तुम्हें एक झलक मिलेगी कि कैसे किसी अशांत स्थिति में शांत रहा जाए।
’तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।’

59

गुरजिएफ ने इस विधि का खूब प्रयोग किया। वह इसके लिए परिस्थितियां निर्मित करता था। लेकिन परिस्थितियां निर्मित करने के लिए समूह जरूरी है, आश्रम जरूरी है। तुम अकेले यह नहीं कर सकते। फाउंटेनब्लू में गुरजिएफ ने एक आश्रम बनाया था। और वह बड़ा कुशल गुरु था जो जानता था कि स्थिति कैसे निर्मित की जाती है।
तुम किसी कमरे में प्रवेश करते हो जहां एक समूह पहले से बैठा है। तुम कमरे में प्रवेश करते हो और तभी कुछ किया जाता है जिससे तुम क्रोधित हो जाते हो। और वह चीज इस स्वाभाविक ढंग से की जाती कि तुम्हें कभी कल्पना भी नहीं होती कि यह परिस्थिति तुम्हारे लिए निर्मित की जा रही है। यह एक उपाय था। कोई व्यक्ति कुछ कहकर तुम्हें अपमानित कर देता है और तुम अशांत हो जाते हो। और फिर हर कोई उस अशांति को बढ़ावा देता है और तुम पागल ही हो जाते हो। और जब तुम ठीक विस्फोट के बिंदु पर पहुंचते हो तो गुरजिएफ चिल्लाकर कहता है. स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो!
ऐसी परिस्थिति निर्मित की जा सकती है, लेकिन केवल वहीं जहां अनेक लोग अपने ऊपर काम कर रहे हों। और जब गुरजिएफ चिल्लाकर कहता कि स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो; तो तुम जान जाते कि यह परिस्थिति पहले से तैयार की गई थी। लेकिन अब तुम्हारा उद्वेग, तुम्हारी अशांति इतनी शीघ्रता से, इतनी जल्दी मिटने नहीं वाली है। इस अशांति की जड़ें तुम्हारे शरीर में हैं; तुम्हारी ग्रंथियों ने तुम्हारे शरीर में जहर छोड़ दिए हैं। तुम्हारा शरीर उससे प्रभावित है। क्रोध इतनी शीघ्रता से नहीं जाने वाला है। अब जबकि तुम्हें पता हो गया है कि मुझे धोखा दिया गया है, कि किसी ने सच ही मुझे अपमानित नहीं किया, तो भी तुम कुछ नहीं कर सकते। क्रोध जहां का तहां है, तुम्हारा शरीर क्रोध की स्थिति में है।
लेकिन एक बात होती है कि अचानक तुम्हारा ज्वर भीतर शांत होने लगता है। क्रोध अब सिर्फ शरीर पर, परिधि पर है, केंद्र पर तुम अचानक शीतल होने लगते हो। और अब तुम जानते हो कि मेरे भीतर एक बिंदु है जो अनुद्विग्न है, शांत है। और तुम हंसने लगते हो। अभी भी तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल हैं, तुम्हारा चेहरा पशुवत हिंसक बना हुआ है; लेकिन तुम हंसने लगते हो। अब तुम्हें दो चीजें पता हैं. एक अनुद्विग्न केंद्र और दूसरी उद्विग्न परिधि।
तुम एक—दूसरे के लिए सहयोगी हो सकते हो। तुम्हारा परिवार ही आश्रम
बन सकता है; तुम एक—दूसरे की मदद कर सकते हो। मित्र आश्रम बन सकते हैं और एक—दूसरे की सहायता कर सकते हैं। तुम अपने परिवार से बात करके तय कर सकते हो, पूरा परिवार तय कर सकता है कि पिता के लिए या मां के लिए एक परिस्थिति पैदा की जाए; और पूरा परिवार उस परिस्थिति के पैदा करने में हाथ बंटाता है। जब मां या पिता पूरी तरह विक्षिप्त हो जाते हैं तो सब हंसने लगते हैं और कहते हैं: बिलकुल अनुद्विग्न रहो!
तुम परस्पर एक—दूसरे की मदद कर सकते हो।
और यह अनुभव बहुत अदभुत है। जब तुम्हें किसी उत्तेजित परिस्थिति के भीतर एक शीतल केंद्र का पता चल जाए तो तुम उसे भूल नहीं सकते। और तब तुम किसी भी तरह की अशांत परिस्थिति में उसे स्मरण कर सकते हो, उसे पुन: उपलब्ध कर सकते हो।
पश्चिम में अब एक विधि का, चिकित्सा—विधि का प्रयोग हो रहा है, जिसे
वे साइकोड्रामा कहते हैं। वह सहयोगी है और इसी तरह की विधियों पर आधारित है। इस साइकोड्रामा में तुम एक अभिनय करते हो, एक खेल खेलते हो। शुरू में तो वह खेल ही है, लेकिन देर—अबेर तुम उसके वशीभूत हो जाते हो। और जब तुम वशीभूत होते हो, आविष्ट होते हो तो तुम्हारा मन सक्रिय हो जाता है। क्योंकि तुम्हारे शरीर और मन स्वचालित ढंग से काम करते हैं; वे स्वचालित व्यवहार करते हैं।
तो साइकोड्रामा में व्यक्ति क्रोध की स्थिति में सचमुच क्रोधित हो जाता है। तुम सोच सकते हो कि वह अभिनय कर रहा है, लेकिन ऐसी बात नहीं है। संभव है कि वह सच में ही क्रोधित हो गया हो; केवल अभिनय ही न कर रहा हो। वह कामना के वश में है, उद्वेग के वश में है, भाव के वश में है। और जब वह सच में उनसे आविष्ट होता है तभी उसका अभिनय यथार्थ मालूम पड़ता है।

60

'यह तथाकथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र—कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।’
अगर तुम दुखी हो तो इसलिए कि तुमने जगत को बहुत गंभीरता से लिया है।
और सुखी होने का कोई उपाय मत खोजो, सिर्फ अपनी दृष्टि को बदलो। गंभीर चित्त से तुम सुखी नहीं हो सकते, उत्सव मनाने वाला चित्त ही सुखी हो सकता है। इस पूरे जीवन को एक नाटक, एक कहानी की तरह लो। ऐसा ही है। और अगर तुम उसे इस भांति ले सके तो तुम दुखी नहीं होगे। दुख अति गंभीरता का परिणाम है।
सात दिन के लिए यह प्रयोग करो। सात दिन तक एक ही चीज स्मरण रखो कि सारा जगत नाटक मात्र है—और तुम वही नहीं रहोगे जो अभी हो। सिर्फ सात दिन के लिए प्रयोग करो। तुम्हारा कुछ खो नहीं जाएगा, क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए भी तो कुछ नहीं है। तुम प्रयोग कर सकते हो। सात दिन तक सब कुछ को नाटक समझो, तमाशा समझो।
इन सात दिनों में तुम्हें तुम्हारे बुद्ध—स्वभाव की, तुम्हारी आंतरिक पवित्रता की अनेक झलकें मिलेंगी। और इस झलक के मिलने के बाद तुम फिर वही नहीं रहोगे जो हो। तब तुम सुखी होगे। और तुम सोच भी नहीं सकते कि वह सुख किस तरह का होगा, क्योंकि तुमने कोई सुख नहीं जाना है। तुमने सिर्फ दुख की कम—अधिक मात्राएं भर जानी हैं; कभी तुम ज्यादा दुखी थे और कभी कम। तुम नहीं जानते हो कि सुख क्या है, तुम उसे नहीं जान सकते हो। जब तुम्हारी जगत की धारणा ऐसी है कि तुम उसे बहुत गंभीरता से लेते हो तो तुम नहीं
जान सकते कि सुख क्या है। सुख तो तभी घटित होता है जब तुम्हारी यह धारणा दृढ़ होती है कि यह जगत केवल एक लीला है।
इस विधि को प्रयोग में लाओ और हर चीज को उत्सव की तरह लो, हर चीज को उत्सव मनाने के भाव से करो। ऐसा समझो कि यह नाटक है, कोई असली चीज नहीं। अगर तुम पति हो तो नाटक के पति बन जाओ; अगर तुम पत्नी हो तो नाटक की पत्नी बन जाओ। अपने संबंधों को खेल बना लो। बेशक खेल के नियम हैं; खेल के लिए नियम जरूरी हैं। विवाह नियम है, तलाक नियम है। उनके बारे में गंभीर मत होओ। वे नियम हैं और एक नियम से दूसरा नियम निकलता है। तलाक बुरा है, क्योंकि विवाह बुरा है। एक नियम दूसरे नियम को जन्म देता है। लेकिन उन्हें गंभीरता से मत लो और फिर देखो कि कैसे तत्काल तुम्हारे जीवन का गुणधर्म बदल जाता है।
आज रात अपने घर जाओ और अपनी पत्नी या पति या बच्चों के साथ ऐसे व्यवहार करो जैसे कि तुम किसी नाटक में भूमिका निभा रहे हो। और फिर उसका सौंदर्य देखो। अगर तुम श्रइमका निभा रहे हो तो तुम उसमें कुशल होने की कोशिश करोगे, लेकिन उद्विग्न नहीं होगे। उसकी कोई जरूरत नहीं है। तुम अपनी भूमिका निभाकर सोने चले जाओगे। लेकिन स्मरण रहे कि यह अभिनय है। और सात दिन तक इसका सतत खयाल रखो। तब तुम्हें सुख उपलब्ध होगा। और जब तुम जान लोगे कि क्या सुख है तो फिर दुख में गिरने की जरूरत नहीं रही, क्योंकि यह तुम्हारा ही चुनाव है।
तुम दुखी हो, क्योंकि तुमने जीवन के प्रति गलत दृष्टि चुनी है। तुम सुखी हो सकते हो, अगर दृष्टि सम्यक हो जाए। बुद्ध सम्यक दृष्टि को बहुत महत्व देते हैं। वे सम्यक दृष्टि को ही आधार बनाते हैं, बुनियाद बनाते हैं। सम्यक दृष्टि क्या है? उसकी कसौटी क्या है?
मेरे देखे कसौटी यह है: जो दृष्टि तुम्हें सुखी करे वह सम्यक दृष्टि है। और जो दृष्टि तुम्हें दुखी—पीड़ित बनाए वह असम्यक दृष्टि है। और कसौटी बाह्य नहीं है, आंतरिक है। और कसौटी तुम्हारा सुख है।

साक्षीत्व की तीसरी विधि:
प्रिये न सुख में और न दुख में बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।
प्रत्येक चीज ध्रुवीय है, अपने विपरीत के साथ है। और मन एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर डोलता रहता है, कभी मध्य में नहीं ठहरता।

64

क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न सुखी थे न दुखी? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न स्वस्थ थे न बीमार? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न यह थे न वह? जब तुम ठीक मध्य में थे, ठीक बीच में थे?
मन अविलंब एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर तुम सुखी हो तो देर
— अबेर तुम दुख की तरफ गति कर जाओगे और शीघ्र गति कर जाओगे। सुख विदा हो जाएगा और तुम दुख में हो जाओगे। अगर तुम्हें अभी अच्छा लग रहा है तो देर— अबेर तुम्हें बुरा लगने लगेगा। और तुम बीच में कहीं नहीं रुकते, इस छोर से सीधे उस छोर पर चले जाते हो। घड़ी के पेंडुलम की तरह तुम बाएं से दाएं और दाएं से बाएं डोलते रहते हो। और पेंडुलम डोलता ही रहता है।
एक गुह्य नियम है। जब पेंडुलम बायीं ओर जाता है तो लगता तो है कि बायीं ओर जा रहा है, लेकिन सच में तब वह दायीं ओर जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। और वैसे ही जब वह दायीं ओर जा रहा है तो बायीं ओर जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। तो जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जब तुम सुखी हो रहे हो तो तुम दुखी होने के लिए शक्ति जुटा रहे हो। तो जब मैं तुम्हें हंसते देखता हूं तो जानता हूं कि रोने का क्षण दूर नहीं है।
भारत के गांवों में माताएं यह जानती हैं। जब कोई बच्चा बहुत हंसने लगता है तो वे कहती हैं कि उसका हंसना बंद करो, अन्यथा वह रोएगा। यह होने ही वाला है। अगर कोई बच्चा बेहद खुश हो तो उसका अगला कदम दुख में पड़ने ही वाला है। इसलिए माताएं उसे रोकती हैं, अन्यथा वह दुखी होगा।
लेकिन यही नियम विपरीत ढंग से भी लागू होता है; और लोग यह नहीं जानते हैं। जब कोई बच्चा रोता है और तुम उसे रोने से रोकते हो तो तुम उसका रोना ही नहीं रोकते हो, तुम उसका अगला कदम भी रोक रहे हो। अब वह सुखी भी नहीं हो पाएगा। बच्चा जब रोता है तो उसे रोने दो। बच्चा जब रोता है तो उसे मदद दो कि और रोए। जब तक उसका रोना समाप्त होगा, वह शक्ति जुटा लेगा, वह सुखी हो सकेगा।
अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब बच्चा रोता—चीखता हो तो उसे रोको मत, उसे मनाओ मत, उसे बहलाओ मत। उसके ध्यान को रोने से हटाकर कहीं अन्यत्र ले जाने की कोशिश मत करो, उसे रोना बंद करने के लिए रिश्वत मत दो। कुछ मत करो, बस उसके पास मौन बैठे रहो और उसे रोने दो, चिल्लाने दो, चीखने दो। तब वह आसानी से सुख की ओर गति कर पाएगा। अन्यथा न वह रो सकेगा और न सुखी हो सकेगा।
हमारी यही स्थिति हो गई है; हम कुछ नहीं कर पाते हैं। हम हंसते हैं तो आधे दिल से और रोते हैं तो आधे दिल से। लेकिन यही मन का प्राकृतिक नियम है, वह एक छोर से दूसरे छोर पर गति करता रहता है। यह विधि इस प्राकृतिक नियम को बदलने के लिए है।
'प्रिये, न सुख में और न दुख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।’
किन्हीं भी ध्रुवों को, विपरीतताओ को चुनो और उनके मध्य में स्थिर होने की चेष्टा करो। इस मध्य में होने के लिए तुम क्या करोगे? मध्य में कैसे होओगे?
एक बात कि जब दुख में होते हो तो क्या करते हो? जब दुख आता है तो तुम उससे बचना चाहते हो, भागना चाहते हो। तुम दुख नहीं चाहते हो; तुम उससे भागना चाहते हो। तुम्हारी चेष्टा रहती है कि तुम उससे विपरीत को पा लो, सुख को पा लो, आनंद को पा लो। और जब सुख आता है तो तुम क्या करते हो? तुम चेष्टा करते हो कि सुख बना रहे, ताकि दुख न आ जाए; तुम उससे चिपके रहना चाहते हो। तुम सुख को पकड़कर रखना चाहते हो और दुख से बचना चाहते हो। यही स्वाभाविक दृष्टिकोण है, ढंग है।
अगर तुम इस प्राकृतिक नियम को बदलना चाहते हो, उसके पार जाना चाहते हो, तो जब दुख आए तो उससे भागने की चेष्टा मत करो, उसके साथ रहो, उसको भोगो। ऐसा करके तुम उसकी पूरी प्राकृतिक व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर दोगे। तुम्हें सिरदर्द है, उसके साथ रहो। आंखें बंद कर लो और सिरदर्द पर ध्यान करो, उसके साथ रहो। कुछ भी मत करो,

65

बस साक्षी रहो। उससे भागने की चेष्टा मत करो। और जब सुख आए और तुम किसी क्षण विशेष रूप से आनंदित अनुभव करो तो उसे पकड़कर उससे चिपको मत।
आंखें बंद कर लो और उसके साक्षी हो जाओ।
सुख को पकड़ना और दुख से भागना धूल— भरे चित्त के स्वाभाविक गुण हैं।
और अगर तुम साक्षी रह सकी तो देर—अबेर तुम मध्य को उपलब्ध हो जाओगे।
प्राकृतिक नियम तो यही है कि एक से दूसरी अति पर आते—जाते रहो। अगर तुम साक्षी रह सको तो तुम मध्य में होगे।
बुद्ध ने इसी विधि के कारण अपने पूरे दर्शन को मज्झिम निकाय—मध्य मार्ग कहा है। वे कहते हैं कि सदा मध्य में रहो, चाहे जो भी विपरीतताए हों, तुम सदा मध्य में रहो। और साक्षी होने से मध्य में हुआ जाता है। जिस क्षण तुम्हारा साक्षी खो जाता है, तुम या तो आसक्त हो जाते हो या विरक्त। अगर तुम विरक्त हुए तो दूसरी अति पर चले जाओगे और आसक्त हुए तो इस अति पर बने रहने की चेष्टा करोगे। लेकिन तब तुम कभी मध्य में नहीं होगे। सिर्फ साक्षी बनो, न आकर्षित होओ और न विकर्षित।
सिरदर्द है तो उसे स्वीकार करो। वह तथ्य है। जैसे वृक्ष हैं, मकान है, रात है, वैसे ही सिरदर्द है। आख बंद करो और उसे स्वीकार करो। उससे बचने की चेष्टा मत करो। वैसे ही तुम सुखी हो तो सुख के तथ्य को स्वीकार करो। उससे चिपके रहने की चेष्टा मत करो और दुखी होने का प्रयत्न भी मत करो; कोई भी प्रयत्न मत करो। सुख आता है तो आने दो; दुख आता है तो आने दो। तुम शिखर पर खड़े द्रष्टा बने रहो, जो सिर्फ चीजों को देखता है। सुबह आती है, शाम आती है, फिर सूरज उगता है और डूब जाता है, तारे हैं और अंधेरा है, फिर सूयोंदय—और तुम शिखर पर खड़े द्रष्टा हो।
तुम कुछ कर नहीं सकते; तुम सिर्फ देखते रहते हो। सुबह आती है, इस तथ्य
को तुम भलीभांति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अब सांझ आएगी, क्योंकि सांझ सुबह के पीछे—पीछे आती है। वैसे ही जब सांझ आती है तो तुम उसे भी भलीभांति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अब सुबह आएगी, क्योंकि सुबह सांझ के पीछे—पीछे आती है। जब दुख है तो तुम उसके भी साक्षी हो। तुम जानते हो कि दुख आया है, देर—अबेर वह चला जाएगा और उसका विपरीत ध्रुव आ जाएगा। और जब सुख आता है तो तुम जानते हो कि वह सदा नहीं रहेगा, दुख कहीं पास ही छिपा होगा, आता ही होगा। तुम खुद द्रष्टा बने रहते हो।
अगर तुम आकर्षण और विकर्षण के बिना, लगाव और दुराव के बिना देखते रहे
तो तुम मध्य में आ जाओगे। और जब पेंडुलम बीच में ठहर जाएगा तो तुम पहली दफा देख सकोगे कि संसार क्या है। जब तक तुम दौड़ रहे हो, तुम नहीं जान सकते कि संसार क्या है। तुम्हारी दौड़ सब कुछ को भ्रांत कर देती है, धूमिल कर देती है; और जब दौड़ बंद होगी तो तुम संसार को देख सकोगे। तब तुम्हें पहली बार सत्य के दर्शन होंगे। अकंप मन ही जानता है कि सत्य क्या है; कंपित मन सत्य को नहीं जान सकता।
तुम्हारा मन ठीक कैमरे की भांति है। अगर तुम चलते हुए फोटो लेते हो तो
जो भी चित्र बनेगा वह धुंधला— धुंधला होगा, अस्पष्ट होगा, विकृत होगा। कैमरे को हिलना नहीं चाहिए; कैमरा हिलेगा तो चित्र बिगड़ेगा ही।
तुम्हारी चेतना एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर गति करती रहती है और इस भांति जो सत्य जानते हो वह भ्रांति है, दुःस्वप्न है। तुम नहीं जानते हो कि क्या क्या है; सब भ्रम है, सब धुआं— धुआं है। सत्य से तुम वंचित रह जाते हो। सत्य को तुम तब जानते हो जब तुम मध्य में ठहर जाते हो, जब पेंडुलम ठहर जाता है और तुम्हारी चेतना वर्तमान के क्षण में होती है, केंद्रित होती है। अचल और अकंप चित्त ही सत्य को जानता है।
'प्रिये, न सुख में और न दुख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।’

साक्षीत्व की चौथी विधि:
विषय और वासना जैसे दूसरों में हैं वैसे ही मुझमें हैं। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।
यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम सदा अपने क्रोध को उचित मानते हो, लेकिन जब कोई दूसरा क्रोधित होता है तो तुम

66

अपने पर भी लागू करो। दोहरे मापदंड मत गढ़ो। एक मापदंड रखने से तुम पूरी तरह रूपांतरित हो जाओगे। एक मापदंड तुम्हें ईमानदार बनाएगा और पहली दफा तुम सत्य को सीधा देखोगे जैसा वह है।
'विषय और वासना जैसे दूसरों में हैं वैसे ही मुझमें हैं। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।’
तुम उन्हें स्वीकार कर लो और वे रूपांतरित हो जाएंगी। लेकिन हम क्या
कर रहे हैं? हम स्वीकार करते हैं कि विषय—वासना दूसरों में है। जो—जो गलत है वह दूसरों में है और जो—जो सही है वह तुम में है। तब तुम रूपांतरित कैसे होगे? तुम तो रूपांतरित ही हो। तुम सोचते हो कि मैं तो अच्छा ही हूं; दूसरे सब लोग बुरे हैं। रूपांतरण की जरूरत संसार को है, तुम्हें नहीं। इसी दृष्टिकोण के कारण नेता, क्रांतिया और पैगंबर पैदा होते हैं। वे
घर के मुंडेरों पर चढ़कर चिल्लाते हैं कि दुनिया को बदलना है, कि इंकलाब लाना है। हम क्रांति पर क्रांति किए जाते हैं और कुछ भी नहीं बदलता है। मनुष्य वही का वही रहता है, दुनिया पुराने दुखों से ही ग्रस्त रहती है। चेहरे और नाम बदल जाते हैं; पर दुख बना रहता है।
दुनिया को बदलने की बात नहीं है। तुम गलत — हो। प्रश्न है कि तुम कैसे बदलो। धार्मिक प्रश्न यह है कि मैं कैसे बदलू? दूसरों को बदलने की बात राजनीति है। राजनीतिज्ञ सोचता है कि मैं तो बिलकुल ठीक हूं; कि मैं तो आदर्श हूं जैसा कि सारी दुनिया को होना चाहिए। वह अपने को आदर्श मानता है। वह आदर्श—पुरूष है और उसका काम दुनियां को बदलना है।
धार्मिक व्यक्ति जो कुछ भी दूसरों में देखता है उसे अपने भीतर भी देखता है। अगर हिंसा है तो वह सोचने लगता है कि यह हिंसा मुझमें है या नहीं। अगर लोभ है, अगर उसे कहीं लोभ दिखाई पड़ता है, तो उसका पहला खयाल यह होता है कि यह लोभ मुझमें है या नहीं। और जितना ही खोजता है वह पाता है कि मैं ही सब बुराई का स्रोत हूं। तब फिर प्रश्न यह नहीं है कि संसार को कैसे बदला जाए; तब फिर प्रश्न यह है कि अपने को कैसे बदला जाए। और बदलाहट उसी क्षण होने लगती है जब तुम एक मापदंड अपनाते हो। उसे अपनाते ही तुम बदलने लगे।
दूसरों की निंदा मत करो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी निंदा करो। नहीं, बस दूसरों की निंदा मत करो। और अगर तुम दूसरों की निंदा नहीं करते हो तो तुम्हें उनके प्रति गहन करुणा का भाव होगा। क्योंकि सब की समस्याएं समान हैं। अगर कोई पाप करता है—समाज की नजर में जो पाप है—तो तुम उसकी निंदा करने लगते हो। तुम यह नहीं सोचते कि तुम्हारे भीतर भी उस पाप के बीज पड़े हैं। अगर कोई हत्या करता है तो तुम उसकी निंदा करते हो।
लेकिन क्या तुमने कभी किसी की हत्या करने का विचार नहीं किया है? क्या उसका बीज, उसकी संभावना तुम्हारे भीतर भी नहीं छिपी है? जिस आदमी ने हत्या की है वह एक क्षण पूर्व हत्यारा नहीं था, लेकिन उसका बीज उसमें था। वह बीज तुममें भी है। एक क्षण बाद कौन जानता है, तुम भी हत्यारे हो सकते हो! उसकी निंदा मत करो; बल्कि स्वीकार करो। तब तुम्हें उसके प्रति गहन करुणा होगी, क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह कोई भी कर सकता है, तुम भी कर सकते हो। निंदा से मुक्त चित्त में करुणा होती है। निंदा—रहित चित्त में गहन स्वीकार होता है। वह जानता है कि मनुष्यता ऐसी ही है, कि मैं भी ऐसा ही हूं। तब सारा जगत तुम्हारा प्रतिबिंब बन जाएगा; वह तुम्हारे लिए दर्पण का काम देगा। तब प्रत्येक चेहरा तुम्हारे लिए आईना होगा; तुम प्रत्येक चेहरे में अपने को ही देखोगे।
'विषय और वासना जैसे दूसरों में हैं वैसे ही मुझमें हैं। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।’
स्वीकार ही रूपांतरण बन जाता है। यह समझना कठिन है, क्योंकि हम सदा इनकार करते हैं और उसके बावजूद हम बिलकुल नहीं बदल पाते हैं। तुममें— लोभ है, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को लोभी मानने को राजी नहीं है। तुम कामुक हो, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को कामुक मानने को राजी नहीं है। तुम क्रोधी हो, तुममें क्रोध है; लेकिन तुम उसे इनकार कर देते हो। तुम एक मुखौटा ओढ़ लेते हो और उसे उचित बताने की

68

यह सूत्र कहता है कि स्वीकार रूपांतरण है, क्योंकि स्वीकार से बोध संभव होता है।
आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
अड़तीसवां प्रवचन

जीवन एक मनोनाट्य है

पहला प्रश्न:
आधुनिक समय में मूलभूत मन किस प्रकार अतीत के ज्ञान और अनुभवों से तादात्मय कर लेता है?

मन शुद्ध है और उसमें कोई अशुद्धि नहीं प्रवेश कर सकती। यह असंभव है।
मन बुद्ध— भाव है, मन परम है। लेकिन जब मैं मन कहता हूं तो उसका मतलब तुम्हारे मन से नहीं है, मेरा मतलब उस मन से है जिसमें मैं—तू नहीं है। तुम अशुद्धि हो। और ठीक तुम्हारे पीछे मूलभूत मन है। तुम धूल हो। इसलिए पहले तो यह समझने की कोशिश करो कि तुम क्या हो और तभी तुम समझोगे कि मौलिक मन अतीत से, स्मृतियों से, धूल से तादात्म्य कैसे कर लेता है।
तुम क्या हो? अगर इसी वक्त मैं पूछूं कि तुम क्या हो तो तुम इस प्रश्न
का उत्तर दो ढंग से दोगे। एक उत्तर शाब्दिक होगा जिसमें तुम अपने अतीत का वर्णन करोगे। तुम कहोगे कि मेरा अमुक नाम है, मैं अमुक परिवार का हूं मेरा अमुक धर्म है, मैं अमुक देश का रहने वाला हूं। तुम कहोगे कि मैं शिक्षित हूं या अशिक्षित हूं मैं धनी हूं या गरीब हूं। ये सब के सब अतीत के अनुभव हैं; और तुम ये सब नहीं हो। तुम उनसे होकर गुजरे हो, वे तुम्हारी राह में आए हैं, लेकिन तुम्हारा अतीत इकट्ठा होता जाता है। यह शाब्दिक उत्तर होगा, लेकिन यह सही उत्तर नहीं होगा। यह तुम्हारा मन बोल रहा है, तुम्हारा झूठा अहंकार तर्क दे रहा है।
अगर तुम अभी अपने पूरे अतीत को अलग हो जाने दो, अगर तुम अपने मां—बाप, अपने परिवार, अपने धर्म और देश को—जो कि सब के सब आकस्मिक हैं—भूल जाओ और सिर्फ अपने साथ रहो, तो तुम कौन हो? कोई नाम—रूप तुम्हारी चेतना में नहीं प्रकट होगा; सिर्फ यह बोध रहेगा कि तुम हो। तुम यह नहीं कह सकोगे कि तुम कौन हो; तुम इतना ही कहोगे कि मैं हूं। जिस क्षण तुम कौन का उत्तर दोगे, तुम अतीत में चले गए।
तुम मात्र चैतन्य हो, एक शुद्ध मन, एक निर्दोष दर्पण। अभी, इसी क्षण तुम हो। तुम क्या हो? मात्र एक बोध कि मैं हूं।’मैं' भी जरूरी नहीं है, तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही अधिक हूं—पन को, अस्तित्व को अनुभव करोगे। अस्तित्व शुद्ध मन है। लेकिन इस अस्तित्व का कोई आकार नहीं है, यह निराकार है। इस अस्तित्व का कोई नाम नहीं है, यह अनाम है।
लेकिन जो तुम वस्तुत: हो, उससे तुम्हारा परिचय देना कठिन होगा। समाज में दूसरों से संबंधित होने के लिए तुम्हें नाम—रूप की जरूरत पड़ेगी।
तुम्हारा अतीत तुम्हें नाम—रूप देता है। नाम और रूप उपयोगी है; उनके बिना जीना कठिन होगा। वे जरूरी है; लेकिन तुम वे सब नहीं हो। वे सिर्फ लेबल हैं। लेकिन इस उपयोगिता के कारण मौलिक मन नाम और रूप के साथ तादात्म्य कर लेता है।
एक बच्चा जन्म लेता है, वह अभी शुद्ध चैतन्य है। लेकिन उसे पुकारने के लिए, उसकी पहचान के लिए तुम उसे एक नाम दे देते हो। आरंभ में बच्चा अपने लिए भी अपने नाम का ही उपयोग करेगा। वह यह नहीं कहेगा कि मुझे भूख लगी है, वह कहेगा कि राम को भूख लगी है—राम अगर उसका नाम है। वह कहेगा कि राम को बहुत भूख लगी है। बाद में वह सीखेगा कि ऐसा कहना ठीक नहीं है, मैं अपने लिए राम का उपयोग नहीं कर सकता; इस नाम से तो दूसरे मुझे पुकारेंगे। और तब वह अपने लिए मैं का उपयोग सीखेगा। पहले वह नाम के साथ तादात्म्य करेगा; फिर मैं के साथ।
यह उपयोगी है, तुम्हें इसकी जरूरत है। इसके बिना जीना कठिन होगा। लेकिन इसी उपयोगिता के कारण व्यक्ति नाम के साथ तादात्म्य कर लेता है, अपने को नाम ही समझने लगता है।
तुम इस तादात्म्य के पार जा सकते हो। और जब तुम इसके पार जाने लगते हो,
तब तुम अपने मूलभूत चैतन्य को पुन: प्राप्त होने लगते हो। तब तुम्हारा ध्यान आरंभ हो गया। लेकिन यह ध्यान तभी आरंभ होता है जब तुम अपने नाम—रूप

71

इसीलिए मनुष्य में एक आध्यात्मिक असंतोष बना रहता है। तुम असीम हो, उससे कम से कभी काम नहीं चलेगा; उससे कम से तुम कभी तृप्त न हो सकोगे।
लेकिन हर सीमा सीमित होगी। और उसकी जरूरत है। वह जरूरी है, उपयोगी भी है, लेकिन वह सच नहीं है। वह सत्य नहीं है।
यह जो आंतरिक दर्पण है, आंतरिक मन है, वह शुद्ध चैतन्य है—चैतन्य मात्र है।
प्रकाश को देखो। तुम कहते हो कि यह कमरा प्रकाश से भरा हुआ है। लेकिन तुम प्रकाश को कैसे देख सकते हो? तुमने खुद प्रकाश को कभी नहीं देखा है, तुम उसे देख नहीं सकते। तुम सदा कोई प्रकाशित वस्तु देखते हो। प्रकाश दीवार पर पड़ता है, किताबों पर पड़ता है, लोगों पर पड़ता है। और उन वस्तुओं पर प्रकाश प्रतिबिंबित होता है। क्योंकि तुम इन वस्तुओं को देख पाते हो, तुम कहते हो कि प्रकाश है। और जब तुम वस्तुओं को नहीं देख पाते तो कहते हो कि अंधेरा है। तुमने कभी शुद्ध प्रकाश को, स्वयं प्रकाश को नहीं देखा है। प्रकाश सदा दूसरों से प्रतिबिंबित होकर दिखाई देता है।
चैतन्य या बोध प्रकाश से भी ज्यादा शुद्ध है। वह अस्तित्व में शुद्धतम संभावना है। अगर तुम समग्रत: शांत हो जाओ तो सभी सीमाएं विलीन हो जाएंगी और तुम यह नहीं कह पाओगे कि मैं कौन हूं। तुम मात्र हो। क्योंकि तुलना के लिए कोई विषय नहीं है, तुम नहीं कह सकते कि मैं देखने वाला हूं या आत्मा हूं या चैतन्य हूं। चैतन्य की इस शुद्धता के कारण तुम सदा अपने को किसी अन्य वस्तु के द्वारा जानते हो, तुम अपने को सीधे—सीधे नहीं जान सकते।
इसलिए जब तुम सीमाएं बनाते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम अपने को जानते हो। नाम के साथ तुम समझते हो कि मैं अपने को जानता हूं; धन के साथ तुम समझते हो कि मैं अपने को जानता हूं। तुम्हारे आस—पास कोई सीमा बनती है और शुद्ध चैतन्य प्रतिबिंबित हो उठता है।
जब बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए तो उन्होंने कहा कि मैं नहीं रहा।
जब तुम भी उस अवस्था को उपलब्ध होओगे तो तुम भी कहोगे कि मैं नहीं रहा। क्योंकि सीमा के बिना तुम कैसे हो सकते हो? जब शंकर ज्ञान को उपलब्ध हुए तो उन्होंने कहा कि मैं पूर्ण हो गया, ब्रह्म हो गया।
दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। अगर तुम पूर्ण हो तो भी तुम न रहे। पूर्ण
या शून्य दो ही संभावनाएं हैं और दोनों में तुम नहीं रहते हो। अगर तुम पूर्ण हो, ब्रह्म हो, तो तुम नहीं हो। और जब तुम नहीं हो, समग्रत: शून्य हो, तब भी तुम नहीं हो।
यही कारण है कि तादात्म्य करना जीवन का आवश्यक अंग हो जाता है। और यह अच्छा है। क्योंकि जब तक तादात्म्य नहीं होगा तब तक अतादात्मय भी संभव नहीं हो सकता है। जब तक तुम तादात्म्य नहीं बनाते तब तक तुम तादात्म्य— मुक्ति को कैसे उपलब्ध होओगे? कम से कम एक बार तो तादात्मय करना जरूरी है। इसे ऐसे समझो। अगर तुम स्वस्थ पैदा होते हो और कभी बीमार नहीं होते तो तुम कभी भी अपने स्वास्थ्य को नहीं जान सकते, उसके प्रति बोधपूर्ण नहीं हो सकते। तुम उसे नहीं जान सकते, क्योंकि स्वास्थ्य के बोध के लिए रोग की, बीमारी की पृष्ठभूमि आवश्यक है। यह जानने के लिए कि तुम स्वस्थ थे या कि स्वास्थ्य क्या है, तुम्हें बीमार पड़ना होगा। दूसरा ध्रुव, विपरीत छोर जरूरी हो जाता है।
पूर्वी गुह्य विद्या कहती है कि संसार इसीलिए है कि तुम्हें परमात्मा
का अनुभव हो सके। संसार विपरीत पृष्ठभूमि निर्मित करता है। किसी स्कूल में जाकर देखो, शिक्षक काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है। वह सफेद दीवार पर भी लिख सकता है, लेकिन तब लिखना व्यर्थ होगा। वह दिखाई ही नहीं पड़ेगा, वह अदृश्य होगा। दिखाई देने के लिए काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखना जरूरी है। सफेद लिखावट के दृश्य होने के लिए काला ब्लैकबोर्ड जरूरी है।
संसार ब्लैकबोर्ड है और उसके कारण तुम दृश्य हो जाते हो। यह अंतर्निहित ध्रुवीयता है, विपरीतता है। और यह अच्छा है। यही कारण है कि हमने पूर्व में यह कभी नहीं कहा कि संसार बुरा है। हम संसार को एक विद्यापीठ की भांति, एक प्रशिक्षण—भूमि की भांति लेते हैं।

73

जब बुद्ध निर्वाण को उपलब्ध हुए तो उनसे पूछा गया कि आपने क्या पाया। बुद्ध ने कहा कि मैंने पाया तो कुछ नहीं, उलटे बहुत कुछ गंवाया। मैंने कुछ नहीं पाया, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि मैंने जो पाया वह सदा से था ही; वह मेरा स्वभाव था। बुद्ध ने कहा कि मेरा स्वभाव कभी मुझसे छिना नहीं था; इसलिए कुछ पाने का प्रश्न नहीं उठता। मैंने वह पाया है जो था ही, जो पाया हुआ ही था। हौ, मैंने अपना अज्ञान गंवाया।
तादात्म्य अज्ञान है। यह इस जागतिक लीला का, इस महाखेल का हिस्सा है
कि तुम्हें अपने को खोना पड़ेगा, ताकि अपने को पुन: पा सको। यह अपने को खोना अपने को पाने का एक उपाय है, और एकमात्र उपाय है। अगर तुमने बहुत कुछ पहले ही खो दिया है तो तुम पुन: पा सकते हो। और अगर अभी बहुत नहीं खोया है तो और खोना होगा। उसके पहले कुछ नहीं किया जा सकता, उसके पहले कोई उपाय नहीं है। जब तक तुम घाटी में, अंधेरे में, संसार में पूरी तरह नहीं खो जाते, तब तक कुछ नहीं किया जा सकता है। खोओ, ताकि पा सको।
यह विरोधाभासी मालूम पड़ता है। लेकिन जगत ऐसा ही है, प्रक्रिया ऐसी ही है।

दूसरा प्रश्न:
यदि यह प्रतीति हो की जीवन एक साइाकोड्रामा है तो व्यक्ति विरक्त और अकेला अनुभव करने लगता है। इस भांति उसके जीवन की निष्ठा, तींव्रता और गहराई खो जाती है। कृपापूर्वक समझाएं कि इस स्थिति में क्या किया जाए। तब फिर जीवन के प्रति सम्यक दृष्टि क्या है?

यदि यह प्रतीति हो कि जीवन एक साइकोड्रामा है तो व्यक्ति विरक्त और अकेला अनुभव करने लगता है।’
तो अनुभव करो! समस्या क्यों बनाते हो? अगर तुम विरक्त और अकेले अनुभव करते हो तो उसे अनुभव करो। लेकिन हम समस्या पैदा किए जाते हैं। जो भी होता है, हम तुरंत उससे समस्या निर्मित कर लेते हैं। अकेले और विरक्त अनुभव करो। और अगर तुम अपने अकेलेपन के साथ सहजता से रह सके तो वह विसर्जित हो जाएगा। और अगर तुम अकेलेपन के पार जाने के लिए उसके साथ कुछ कर रहे हो तो वह कभी विलीन न होगा; वह बना रहेगा।
अभी मनोविज्ञान में एक नयी दृष्टि पैदा हुई है जो कहती है कि अगर तुम किसी चीज के साथ, बिना उसे समस्या बनाए, रह सके तो वह मिट जाती है। और यह तंत्र की बहुत पुरानी सिखावन है। जापान में पिछले दस—बारह वर्षों से एक छोटी सी चिकित्सा—विधि प्रयोग की जा रही है। और पश्चिम के मनोविश्लेषक और मनोचिकित्सक इस विधि का अध्ययन कर रहे हैं। यह झेन चिकित्सा है और बहुत अदभुत है।
अगर कोई व्यक्ति विक्षिप्त या पागल हो जाता है तो उस पुरुष या स्त्री
को एकांत कमरे में रख दिया जाता है और उससे कह दिया जाता है: अपने साथ रहो, तुम जैसे भी हो अपने साथ रहो। तुम विक्षिप्त हो तो ठीक है। तब विक्षिप्त ही हो जाओ और उसके साथ रहो। और डाक्टर कोई हस्तक्षेप नहीं करते हैं। उसे भोजन दे दिया जाता है, उसकी जरूरतें पूरी कर दी जाती हैं, उसका ध्यान रखा जाता है, लेकिन कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। रोगी को स्वयं के साथ रहना है। और दस दिन के अंदर उसमें बदलाहट होने लगती है। पश्चिमी मनोविश्लेषण वर्षों श्रम करता है और बुनियादी रूप से कुछ भी नहीं बदलता है।
इस झेन रोगी को क्या होता है? बाहर से कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। बस
इस तथ्य की स्वीकृति होती है कि ठीक है, तुम विक्षिप्त हो, उसमें कुछ नहीं किया जा सकता। झेन कहता है कि एक वृक्ष छोटा है और एक वृक्ष बहुत बड़ा है, तो ठीक है; एक छोटा है और दूसरा बड़ा; उसमें कुछ नहीं किया जा सकता। जैसे ही तुम किसी चीज को स्वीकार कर लेते हो, तुम उसका अतिक्रमण करने लगते हो। इंग्लैंड के एक बड़े मौलिक मनोचिकित्सक आर डी लैग ने यह प्रस्तावित किया है कि अगर हम पागल आदमी को अपने आप पर छोड़ दें, ध्यान दें, प्रेम दें, उसकी जरूरतें पूरी कर दें, लेकिन उसके साथ हस्तक्षेप न करें, तो वह तीन— चार सप्ताह के भीतर पागलपन से मुक्त हो जाएगा। उनका कहना है कि अगर कोई

75

हस्तक्षेप न किया जाए तो पागलपन दस दिनों से ज्यादा नहीं टिक सकता। अगर तुम हस्तक्षेप करोगे तो तुम प्रक्रिया को लंबा दोगे।
लेकिन जब तुम हस्तक्षेप नहीं करते हो तो क्या होता है? तुम अकेलापन अनुभव करते हो तो अकेलापन अनुभव करो—वही तुम्हारी स्थिति है। लेकिन जब तुम अकेलापन अनुभव करते हो तो तुम कुछ करने लगते हो; और तब तुम बंट गए। तब तुम्हारा एक हिस्सा अकेलापन अनुभव करता है और दूसरा हिस्सा उसे बदलने में लग जाता है। यह गलत है और बेतुका है। यह तो ऐसा ही है जैसे तुप अपने जूते के बंद पकड़कर अपने को ऊपर आकाश में उठाने की कोशिश करो। यह बात ही बेतुकी है। तुम अकेले हो, तो क्या कर सकते हो? कोई दूसरा भी कुछ करने को नहीं है। तुम अकेले हो तो अकेले रहो। यही तुम्हारी नियति है, तुम इसी भांति बने हो। और जब तुम इसे स्वीकार कर लेते हो तो क्या होता है? अगर तुम स्वीकार कर लो तो तुम्हारा विभाजन समाप्त हो जाएगा; तुम एक हो जाओगे, तुम अखंड हो जाओगे। तो अगर तुम उदास और खिन्न हो तो उदास और खिन्न रहो, कुछ करो मत। और तुम
कर भी क्या सकते हो? तुम जो भी करोगे वह तुम्हारी उदासी से ही तो आएगा। उससे तो उलझन और बढ़ेगी। तुम परमात्मा से प्रार्थना कर सकते हो, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना इतनी उदास होगी कि वह परमात्मा को भी उदास कर जाएगी। उतनी हिंसा मत करो। तुम्हारी प्रार्थना भी उदास होगी ही। तुम ध्यान कर सकते हो। लेकिन तब तुम क्या करोगे? उदासी वहां भी बनी रहेगी। क्योंकि तुम उदास हो, तुम जो भी करोगे, उदासी तुम्हारा पीछा करेगी। उससे उलझन बढ़ेगी, निराशा ही हाथ आएगी। सफलता संभव नहीं है। और असफल होने पर उदासी और सघन होगी। और यह दुष्टचक्र चलता रहेगा।
इससे तो अच्छा है कि पहली उदासी के साथ ही रहो। दूसरे और तीसरे चक्र गढ़ने से क्या फायदा? पहले के साथ ही रहो। जो मौलिक है वह सुंदर है। दूसरा झूठा होगा; तीसरा तो और दूर पड जाएगा। उन्हें मत रचो। पहला ही सुंदर है। तुम उदास हो, उसका मतलब है कि अस्तित्व अभी तुम्हारे साथ इसी रूप में घटित हो रहा है। तुम उदास हो तो उदास रहो। प्रतीक्षा करो और साक्षी रहो।
तुम बहुत देर तक उदास नहीं रह सकते, क्योंकि इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। यह जगत एक प्रवाह है। जगत तुम्हारे लिए अपने मूलभूत नियम को नहीं बदल सकता, ताकि तुम सदा के लिए उदास रह सको। यहां कुछ भी स्थायी नहीं है, हर चीज प्रवाहमान है, हर चीज बदल रही है। अस्तित्व नदी की भांति है, वह तुम्हारे लिए—सिर्फ तुम्हारे लिए—नहीं रुक सकती कि तुम सदा—सदा उदास बने रहो। अस्तित्व की नदी बह रही है, वह आगे बढ़ चुकी। अगर तुम अपनी उदासी को देखोगे तो पाओगे कि तुम्हारी उदासी भी अगले क्षण वैसी ही नहीं रहेगी। वह भिन्न हो गई है, वह बदल गई है। बस उसे देखो, उसके साथ रहो। कुछ करो मत। बस इसी तरह कुछ न करने से रूपांतरण घटित होता है। और इसे ही प्रयत्नहीन प्रयत्न कहते हैं।
तो उदासी को अनुभव करो। उसका स्वाद लो, उसे जीओ। यह तुम्हारी नियति है। तब अचानक तुम्हें लगेगा कि उदासी विलीन हो गई। क्योंकि जो आदमी उदासी को भी स्वीकार करता है, वह उदास कैसे रह सकता है? जो चित्त उदासी को भी स्वीकार कर लेता है, वह उदास नहीं रह सकता। उदासी के होने के लिए अस्वीकार करने वाला चित्त जरूरी है। वह कहता है: यह अच्छा नहीं है, वह अच्छा नहीं है, यह नहीं होना चाहिए, वह नहीं होना चाहिए; ऐसा नहीं होना चाहिए वैसा नहीं होना चाहिए। वह सब कुछ को इनकार करता है, नामंजूर करता है, उसे कुछ भी स्वीकार नहीं है। उसके लिए 'नहीं' बुनियादी है। ऐसा चित्त सुख में भी कुछ इनकार योग्य खोज लेगा।
अभी कल ही एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा. ध्यान में गहराई आ रही है
और मैं बहुत आनंदित अनुभव करता हूं लेकिन मुझे संदेह होता है कि कहीं यह आनंद भ्रम तो नहीं है! क्योंकि पहले कभी मैंने ऐसा आनंद नहीं जाना था; यह मेरी भांति हो सकती है। इससे मैं संदेह में पड़ गया हूं। कृपा करके मेरा संदेह दूर करें।
अगर इनकार करने वाले मन को सुख भी घटित हो तो वह उस पर भी संदेह करेगा।
उसे लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो गई है। मैं और सुखी? जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है।
सिर्फ चंद दिनों के ध्यान से ऐसा नहीं हो सकता है।

76

अस्वीकार करने वाले चित्त के लिए सब कुछ अस्वीकार है। लेकिन अगर तुम अपने म् अकेलेपन को, अपनी उदासी को, अपने दुख को स्वीकार कर सको तो तुम उसके पार जाने लगे। स्वीकार ही अतिक्रमण है। स्वीकार करके तुमने उदासी के पाव के नीचे से जमीन हटा दी; उदासी अब खड़ी नहीं रह सकती।
इसे प्रयोग करो। जो भी तुम्हारी चित्त—दशा हो उसे स्वीकार करो और उस समय की प्रतीक्षा करो जब वह खुद बदले। तुम उसे नहीं बदल रहे हो। तब तुम उस सौंदर्य को अनुभव करोगे जो आता ही तब है जब चित्त—दशा अपने आप बदलती है। तुम पाओगे कि यह ऐसा ही है जैसे सूरज सुबह उगता है और सांझ डूबता है, और उसके उगने—डूबने का सिलसिला चलता रहता है और उसके लिए कुछ नहीं किया जा सकता।
अगर तुम अपनी चित्त—दशा को अपने आप बदलते देख लो तो तुम उसके प्रति तटस्थ रह सकते हो, तुम उससे दूर, मीलों दूर रह सकते हो जैसे कि कहीं दूर यह सब घट रहा है। जैसे सूरज उगता और डूबता है, वैसे ही उदासी आती—जाती है, सुख आता—जाता है, पर तुम उसमें नहीं हो। दुख—सुख अपने आप आते—जाते हैं, चित्त—दशाएं अपने आप आती—जाती हैं।’यदि यह प्रतीति हो कि जीवन एक साइकोड्रामा है तो व्यक्ति विरक्त और अकेला अनुभव करने लगता है।’
तो वैसा अनुभव करो!
'इस भांति उसके जीवन की निष्ठा, तीव्रता और गहराई खो जाती है।’
तो उसे खो जाने दो। जो निष्ठा और गहराई खो सकती है, वह सच्ची नहीं है,
वह नकली है, झूठ है। और यह अच्छा है कि गलत चीजें नष्ट हो जाएं। सच्ची गहराई कैसे नष्ट हो सकती है? सच्ची गहराई की परिभाषा ही यह है कि वह नष्ट नहीं हो सकती चाहे तुम कुछ भी करो। अगर तुम बुद्ध को अशांत कर सको तो वे बुद्ध नहीं हैं। तुम चाहे जो भी करो, वे अनुद्विग्न रहेंगे, शांत रहेंगे। बेशर्त अनुद्विग्नता ही बुद्ध—स्वभाव है।
सच्चा कभी नष्ट नहीं होता, सच्चा सदा बेशर्त है। मैं तुम्हें प्रेम करता हूं और कहता हूं कि क्रोध मत करो, क्रोध करोगे तो मेरा प्रेम खो जाएगा। ऐसा प्रेम जितनी जल्दी खो जाए उतना अच्छा। अगर प्रेम सच्चा है तो तुम कुछ भी करो, उससे उसमें फर्क नहीं पड़ेगा; प्रेम रहेगा। और तभी उसका कोई मूल्य है।
अगर संसार को साइकोड्रामा की भांति, नाटक की भांति देखने से तुम्हारे जीवन की तीव्रता, तुम्हारी गहराई खो जाती है, तो वह तीव्रता, वह गहराई बचाने योग्य नहीं थी। वह झूठी थी। वह तीव्रता विदा हो जाती है, क्योंकि वह नाटक का एक खेल भर थी। और तुम सोचते थे कि वह सच्ची थी और उसमें गहराई थी। अब तुम जानते हो कि वह नाटक का हिस्सा थी। वैसे ही जो निष्ठा खो जाती है वह सच्ची नहीं थी। तुम सोचते थे कि वह सच्ची थी, लेकिन सच्ची नहीं थी। इसी कारण से जीवन को नाटक की तरह देखते ही वह निष्ठा विलीन हो गई।
यह ऐसा ही है, मानो एक अंधेरे कमरे में रस्सी पड़ी थी और तुम्हें लगा कि सांप है। लेकिन सांप है नहीं। अब तुम एक दीया लेकर कमरे में आते हो और सांप खो जाता है और सिर्फ रस्सी रह जाती है। दीए के आने पर जो सांप खो गया वह सांप कभी नहीं था।
अगर तुम जीवन को अभिनय की भांति देखोगे तो जो झूठ है वह विलीन हो जाएगा और जो सत्य है वह पहली दफा तुममें प्रकट होगा। रुको और असत्य को खो जाने दो। प्रतीक्षा करो। एक अंतराल होता है, जब असत्य बिदा होता है और सत्य प्रकट होता है, उसके पहले एक अंतराल होगा। जब झूठी छायाएं बिलकुल खो जाएंगी, जब तुम्हारी आंखें उनसे बिलकुल खाली हो जाएंगी,जब तुम्हारी आंखें झूठी छायाओं से मुक्त हो जाएंगी, तब तुम उस सत्य को देख सकोगे जो सदा था। लेकिन उसके लिए प्रतीक्षा चाहिए।
'कृपापूर्वक समझाएं कि इस स्थिति में क्या किया जाए।’
कुछ भी नहीं। कृपा करके कुछ भी मत करो। तुमने बहुत कुछ क्र—करके ही
तो सब गड्ड—मड्ड कर दिया है। तुम करने में इतने कुशल हो कि तुमने अपने चारों ओर इतनी उलझन, इतना उपद्रव पैदा कर लिया है—न केवल अपने लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी। कुछ भी मत करो, वह तुम्हारी अपने ऊपर बड़ी करुणा होगी। थोड़ी करुणा करो। कुछ मत करो, क्योंकि झूठा मन, उलझा हुआ मन, सब कुछ को और भी उलझा देता है। उलझे हुए मन के साथ कुछ करने की बजाय प्रतीक्षा करना बेहतर

77

है, ताकि उलझन विसर्जित हो जाए। वह विसर्जित होगी; क्योंकि इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। सिर्फ गहन धैर्य की जरूरत है।
मैं तुम्हें एक कहानी कहूंगा। बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे थे। दिन तप रहा था, ठीक दोपहरी थी। उन्हें प्यास लगी, तो उन्होंने अपने शिष्य आनंद से कहा: वापस जाओ। अभी हमने एक छोटा सा झरना पार किया था, वहां जाओ और मेरे लिए पानी ले आओ। आनंद वापस गया। लेकिन वह झरना बहुत छोटा था और अभी—अभी कुछ बैलगाड़ियां उससे गुजरी थीं। पानी हिल गया था और गंदा हो गया था। सारा कीचड़ ऊपर आ गया था और पानी पीने योग्य नहीं रहा था।
आनंद ने सोचा कि मैं लौट चलूं और वह लौट गया। उसने बुद्ध से कहा कि वह पानी तो बिलकुल गंदा हो गया है और पीने योग्य नहीं है। आनंद ने कहा: मुझे आज्ञा दें कि मैं आगे जाऊं। यहां से कुछ मीलों पर ही एक नदी है, मैं जाकर उससे पानी ले आता हूं। लेकिन बुद्ध ने उससे कहा कि नहीं, उसी झरने पर वापस जाओ।
बुद्ध ने कहा तो आनंद को फिर वहीं वापस जाना पड़ा। लेकिन वह आधे मन से गया, क्योंकि वह जानता था कि मैं पानी नहीं ला पाऊंगा; सिर्फ समय गंवाना होगा। और उसे भी प्यास लग रही थी। लेकिन जब बुद्ध ने कहा तो उसे जाना पड़ा। वह फिर बुद्ध के पास लौटकर बोला आपने नाहक जिद्द की। वह पानी पीने योग्य नहीं है। लेकिन बुद्ध ने फिर कहा. तुम फिर वहीं जाओ। और बुद्ध के कहने पर आनंद को फिर वहीं जाना पड़ा।
आनंद जब तीसरी बार झरने पर पहुंचा तो पानी बिलकुल साफ था। कीचड़ बैठ गया था, सूखे पत्ते बह गए थे और पानी फिर शुद्ध का शुद्ध था। तब आनंद हंसा। वह पानी लेकर नाचता हुआ वापस आया। वह बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और बोला. आपके सिखाने के ढंग अदभुत हैं। आपने आज मुझे एक महान पाठ दिया—कि सिर्फ धैर्य चाहिए और कुछ भी हमेशा नहीं रहता है।
और बुद्ध की मूलभूत देशना यही है कि कुछ भी स्थायी नहीं है, सब कुछ बहा
जा रहा है। फिर चिंता क्यों? उसी झरने पर वापस जाओ, अब तक सब कुछ बदल गया होगा। कुछ भी बिना बदले नहीं रहता है। सिर्फ धैर्य चाहिए। फिर—फिर वहीं जाओ। क्षणों की बात है और पत्ते बह जाएंगे और कीचड़ बैठ जाएगा और फिर पानी स्वच्छ हो जाएगा।
और जब आनंद दूसरी बार झरने पर जा रहा था तो उसने बुद्ध से कहा कि आप जाने को कहते हैं तो मैं जाता हूं; लेकिन क्या मैं वहां पानी को स्वच्छ करने के लिए कुछ कर सकता हूं? बुद्ध ने कहा कि कुछ मत करना, अन्यथा तुम पानी को और गंदा कर दोगे। और झरने में उतरना भी मत; बाहर ही रहना। किनारे बैठकर प्रतीक्षा करना। तुम झरने में उतरकर उपद्रव ही पैदा करोगे। झरना अपने आप ही बहता है, उसे बहने देना।
कुछ भी स्थायी नहीं है। जीवन एक प्रवाह है। हेराक्लाइटस ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं उतर सकते, एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है। क्योंकि नदी तो बह गई; उसका सब कुछ बदल गया। और यही नहीं कि नदी बह गई, तुम भी इस बीच बह गए हो, तुम भी बदल गए हो। तुम भी एक नदी हो।
हर चीज की क्षणभंगुरता को देखो। जल्दी मत करो। कुछ भी करने की चेष्टा
मत करो। बस प्रतीक्षा करो। समग्रत: निष्क्रिय होकर प्रतीक्षा करो। और तुम अगर प्रतीक्षा कर सके तो रूपांतरण होगा। प्रतीक्षा ही रूपांतरण बन जाएगी।

तीसरा प्रश्न:
साक्षी की साधना मुझ मौन, स्थिर और शांत बना देती है, लेकिन मेरे मित्र मुझसे कहते हैं कि मैं गंभीर हो गया हूं। और वे जो कहते हैं उसमें कुछ सार भी मालूम देता है। कृपया समझाएं की कोई व्यक्ति कैसे मौन और लीला — भाव में साथ— साथ विकास करे।

यदि तुम सचमुच मौन हो गए हो तो तुम्हें इसकी फिक्र न रहेगी कि दूसरे क्या कहते हैं। और यदि दूसरों की राय अभी तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण है तो तुम मौन नहीं हुए हो। सच तो यह है कि तुम इंतजार में हो कि वे कुछ कहें, कि वे प्रशंसा करें कि तुम मौन हो गए हो। क्या तुम्हारे मौन को उनके समर्थन

78

की जरूरत है? तुम्हें उनके प्रमाणपत्र की जरूरत है? तब तुम आश्वस्त नहीं हो कि तुम मौन हो गए हो।
दूसरों के मत अर्थपूर्ण हैं, क्योंकि तुम खुद कुछ नहीं जानते हो। मत कभी ज्ञान नहीं है। तुम दूसरों के मत इकट्ठे किए जाते हो, क्योंकि तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या हो, तुम कौन हो, तुम्हें क्या हो रहा है। तुम्हें दूसरों से पूछना पड़ता है कि मुझे क्या हो रहा है।
तुम्हें दूसरों से पूछना पड़ेगा? अगर तुम सच में मौन और शांत हो गए हो
तो न कोई मित्र हैं और न कोई मत अर्थपूर्ण हैं। तब तुम हंस सकते हो। उन्हें कहने दो जो वे कहना चाहें। लेकिन नहीं, तुम प्रभावित होते हो। वे जो कुछ कहते हैं वह तुममें गहरे उतर जाता है, तुम उससे उत्तेजित हो जाते हो। तुम्हारा मौन झूठा है, आरोपित है, अभ्यासजन्य है। वह सहज रूप से तुममें नहीं खिला है। तुमने जबरदस्ती अपने को मौन कर लिया है, लेकिन भीतर अभी उबल रहे हो। यह मौन सतह पर ही है। अगर कोई कहता है कि तुम मौन नहीं हो, अगर कोई कहता है कि यह अच्छा नहीं है, या अगर कोई कहता है कि यह झूठा है, तो तुम अशांत हो जाते हो और तुम्हारा मौन खो जाता है। मौन खो गया है। इसीलिए तुम मुझसे यह पूछ रहे हो।
’और वे जो कहते हैं उसमें कुछ सार भी मालूम देता है।’
तुम गंभीर हो गए हो। पर गंभीर होने में गलत क्या है? अगर तुम गंभीर ही पैदा हुए हो, गंभीर होने को ही पैदा हुए हो, तो तुम गंभीर होओगे। तुम जबरदस्ती खेलपूर्ण नहीं हो सकते; अन्यथा तुम्हारा खेलपूर्ण होना ही गंभीर हो जाएगा और तुम उसको भी नष्ट कर दोगे। कई खिलाडी भी बड़े गंभीर होते है। वह अपने खेलों में इतने गंभीर हो जाते है कि खेल और ज्यादा चिंता और उपद्रव के कारण बन जाते हैं।
मैं किसी व्यक्ति के संस्मरण पढ़ रहा था जो कि एक बडा उद्योगपति था और रोज—रोज की समस्याओं से पीड़ित था। किसी ने उससे कहा कि तुम गोल्फ खेलो, उससे तुम्हारी चिंता कम हो जाएगी। उसने गोल्फ खेलना शुरू किया, लेकिन वह वही आदमी रहा। वह अपने गोल्फ के बारे में इतना उत्तेजित हो गया कि उसकी नींद खो गई। वह सारी रात गोल्फ खेला करता। पहले काम का बोझ था, अब गोल्फ दूसरा बोझ बन गया—पहले से भी बड़ा बोझ। वह गोल्फ खेलता था, लेकिन गंभीर मन से, पुराने मन से खेलता था।
अगर तुम गंभीर हो तो गंभीर हो, उसके बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता। गंभीर होओ और गंभीर बने रहो। तब तुम खेलपूर्ण होने लगे। तब तुम अपनी गंभीरता के प्रति गैर—गंभीर होने लगे; तुम गंभीर न रहे। तब तुम अपनी गंभीरता को खेल की तरह लेने लगे। तुम कहते हो कि ठीक है, परमात्मा ने मुझे यही भूमिका अदा करने को दी है, सो मैं गंभीर आदमी होऊंगा और गंभीरता की भूमिका निभाऊंगा।
तो गहरे में गंभीरता विसर्जित होने लगी। मेरी बात समझे? तुम खेल में गंभीरता ला सकते हो और तुम गंभीरता को खेल बना सकते हो। अगर तुम उदास हो, गंभीर हो, तो सब से कह दो कि मैं जन्मजात गंभीर हूं और मैं गंभीर रहूंगा। लेकिन अपनी गंभीरता के संबंध में गंभीर मत बनो। बस गंभीर रहो। और जब तुम इसके बारे में हंस सकते हो तो गंभीरता विदा हो जाएगी। और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि वह कब चली गई।
और दूसरे क्या कहते हैं, उस पर ध्यान मत दो। यह एक बीमारी है। वे दूसरे तुम्हें विक्षिप्त कर देंगे। वे दूसरे कौन हैं? और तुम्हें उनमें इतनी रुचि क्यों है? वे तुम्हें पागल बनाते हैं और तुम उन्हें पागल बनाते हो, क्योंकि उनके लिए तुम दूसरे हो। दूसरे की राय को इतना महत्व क्यों देना? अपने स्वयं के अनुभवों पर ध्यान दो, अपने स्वयं के अनुभवों के प्रति प्रामाणिक रहो। अगर तुम्हें गंभीर रहना रास आता है तो वही ठीक है। अगर तुम समझते हो कि साक्षी की साधना से तुम मौन और शांत हो गए हो तो दूसरे की फिक्र क्या करनी! दूसरों के मत से उत्तेजित क्या होना!
लेकिन हम आश्वस्त नहीं हैं, इसलिए दूसरों के मत बटोरते रहते हैं। तुम्हें तो हस्ताक्षर— अभियान चलाना चाहिए। लोगों से कहो कि अगर आप सोचते हैं कि मैं बुद्ध हो गया हूं तो इस पर हस्ताक्षर कर दें। और जब हर

79

कोई हस्ताक्षर कर दे, कम से कम जब बहुमत तुम्हारे साथ हो, तो तुम बुद्ध हो गए। लेकिन बुद्ध होने का मार्ग यह नहीं है।
'और कृपापूर्वक समझाएं कि कोई व्यक्ति कैसे मौन और लीला— भाव में साथ
— साथ विकास करे।’
विकास होता है। इससे अन्यथा कभी नहीं हुआ है। व्यक्ति मौन और लीला— भाव में साथ—साथ विकसित होता है। लेकिन अगर तुम्हारा मौन झूठा है तो समस्या खड़ी होती है। जिन्होंने भी मौन जाना है वे सदा लीलापूर्ण रहे हैं, सदा गैर—गंभीर रहे हैं। वे हंस सके; दूसरों पर ही नहीं, अपने ऊपर भी हंस सके।
आज से चौदह सौ साल पहले बोधिधर्म भारत से चीन गए थे। उन्होंने अपना एक जूता अपने सिर पर रखा हुआ था—एक जूता पांव में था और दूसरा सिर पर। चीन का सम्राट बू उसके स्वागत के लिए आया हुआ था। यह देखकर वह परेशान हो उठा। अफवाहें तो बहुत सुनी थीं कि यह आदमी अजीबोगरीब है, लेकिन वह बुद्धपुरुष था और सम्राट अपने राज्य में उसका स्वागत करना चाहता था। वह परेशान हो गया। उसके दरबारी भी परेशान हो गए। वे सोचने लगे कि यह किस तरह का व्यक्ति है! और बोधिधर्म हंस रहा था।
दूसरों के सामने कुछ कहना अशोभन होता, इसलिए सम्राट चुप रहा। जब सभी लोग चले गए और बोधिधर्म और सम्राट बोधिधर्म के कमरे में गए तो सम्राट ने पूछा कि आप अपने को इस तरह मूर्ख क्यों बना रहे हैं? आप अपना एक जूता सिर पर क्यों रखे हुए हैं?
बोधिधर्म हंसा और बोला: क्योंकि मैं अपने ऊपर हंस सकता हूं। और यह अच्छा है कि आप मेरी असलियत को जान लें कि मैं ऐसा व्यक्ति हूं। और मैं अपने सिर को पांव से ज्यादा मूल्य नहीं देता हूं मेरे लिए दोनों समान हैं। मेरे लिए ऊंच—नीच विलीन हो गए हैं। और दूसरी बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि मैं इस बात की जरा भी परवाह नहीं करता कि दूसरे मेरे बारे में क्या कहते हैं। और यह अच्छा है, जिस क्षण मैंने आपके राज्य में प्रवेश किया, मैंने चाहा कि आप जान लें कि मैं किस तरह का आदमी हूं।
यह बोधिधर्म एक दुर्लभ रत्न है। बहुत कम लोग हुए हैं जो उनकी तुलना में आ सकें। वे क्या बता रहे थे? वे यही बता रहे थे कि अध्यात्म के इस मार्ग पर तुम्हें व्यक्ति की तरह अकेले चलना है, समाज यहां अप्रासंगिक हो जाता है।
कोई व्यक्ति जार्ज गुरजिएफ के साक्षात्कार के लिए आया था। आने वाला
एक बड़ा पत्रकार था। गुरजिएफ के शिष्य बहुत उत्सुक थे कि अब एक बड़े समाचारपत्र में उनके गुरु की कहानी, उसके चित्र और समाचार छपने जा रहे हैं। उन्होंने उस पत्रकार का बहुत खयाल रखा, उसकी अच्छी तरह देखभाल की। वे अपने गुरु को करीब—करीब भूल ही गए और पत्रकार के आस—पास मंडराते रहे। और फिर साक्षात्कार शुरू हुआ, लेकिन दरअसल वह साक्षात्कार कभी शुरू
ही नहीं हुआ। जब पत्रकार ने कोई प्रश्न पूछा तो गुरजिएफ ने कहा एक मिनट रुको। उसके बगल में ही एक स्त्री बैठी थी; गुरजिएफ ने उससे पूछा कि आज कौन सा दिन है? उस स्त्री ने कहा कि आज रविवार है। गुरजिएफ ने कहा. यह कैसे हो सकता है? कल तो शनिवार था, तो आज रविवार कैसे हो सकता है? कल तो तुमने कहा था कि आज शनिवार है, शनिवार के बाद रविवार कैसे आ सकता है?
पत्रकार उठ खड़ा हुआ और उसने कहा कि मैं जाता हूं यह आदमी तो पागल मालूम पड़ता है। सभी शिष्य हैरान थे, जो कुछ घटित हुआ, उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। जब पत्रकार चला गया तो गुरजिएफ हंस रहा था।
दूसरे क्या कहते हैं यह प्रासंगिक नहीं है। तुम स्वयं जो अनुभव करते हो, उसके प्रति प्रामाणिक बनो, लेकिन प्रामाणिक बनो। अगर तुम्हें सच्चा मौन घटित हुआ हो तो तुम हंस सकते हो।
डोजेन एक झेन गुरु था। उसके संबंध में कहा जाता है कि जब वह बुद्धत्व
को उपलब्ध हुआ तो अनेक लोगों ने पूछा कि उसके बाद आपने क्या किया? डोजेन ने कहा कि मैंने एक प्याली चाय बुलायी। अब और करने को क्या था; सब तो समाप्त हो चुका था। और डोजेन अपनी गैर—गंभीरता के प्रति गंभीर था और अपनी गंभीरता के प्रति गैर—गंभीर था। सच ही तब क्या बच रहता है?

80

अंतिम प्रश्न:
आय कहते हैं कि स्वीकार रूपांतरित करता है, लेकिन फिर ऐसा क्यों होता
है कि जब मैं अपनी भावनाओं और वासनाओं को स्वीकार करता हूं तो मैं रूपांतरित अनुभव करने की बजाय अपने को पशुवत अनुभव करता हूं?

यही तुम्हारा रूपांतरण है, यही तुम्हारा सत्य है। और पशु होने में गलत क्या है? मैंने अब तक एक भी ऐसा मनुष्य नहीं देखा है जिसकी तुलना पशु से की जा सके। सुजुकी कहा करता था: मैं मनुष्य की तुलना में एक मेंढक को— एक मेंढक को भी—ज्यादा प्रेम करता हूं। सरोवर के किनारे बैठे मेंढक को तो देखो, वह कितना ध्यानमग्न बैठता है! उसे देखो, वह इतना ध्यानमग्न है कि सारा संसार भी उसे नहीं हिला सकता। वह बैठा है और बैठा है, सारे जगत के साथ एक होकर बैठा है। और सुजुकी कहा करता था कि जब मैं अज्ञानी था तो मनुष्य था और जब मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ तो मैं बिल्ली हो गया।
बिल्ली को देखो। वह विश्राम में उतरने का राज जानती है और उसने विश्राम—कला पर एक भी किताब नहीं पढ़ी है। बिल्ली को देखो; कोई मनुष्य बिल्ली से बेहतर गुरु नहीं हो सकता। बिल्ली विश्रामपूर्ण है और सका है। तुम अगर विश्रामपूर्ण होगे तो तुरंत नींद में चले जाओगे। और बिल्ली अपनी नींद में भी सजग रहती है। प्रत्येक क्षण उसका शरीर तनावरहित और विश्रामपूर्ण रहता है।
पशु होने में बुरा क्या है? मनुष्य के अहंकार ने तुलना निर्मित की है;
वह कहता है कि हम पशु नहीं हैं। लेकिन कोई पशु मनुष्य नहीं होना चाहेगा। पशु अस्तित्व के साथ बड़े नैसर्गिक ढंग से रहते हैं, लयबद्ध होकर जीते हैं। वे चिंताग्रस्त नहीं होते; वे तनावग्रस्त नहीं होते। निश्चित ही, वे कोई धर्म निर्मित नहीं करते, क्योंकि उन्हें धर्म की जरूरत नहीं है। उनके समाज में मनोविश्लेषक भी नहीं होते; इसलिए नहीं कि वे विकसित नहीं हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी जरूरत नहीं है। पशुओं में गलत क्या है? यह निंदा क्यों?
यह निंदा मनुष्य के अहंकार का हिस्सा है। मनुष्य सोचता है कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। किसी पशु ने उसकी श्रेष्ठता की घोषणा की स्वीकृति नहीं दी है। डार्विन ने कहा कि आदमी बंदर का विकास है। लेकिन अगर तुम बंदरों से पूछोगे तो मुझे नहीं लगता कि वे मानेंगे कि आदमी विकास है; वे यही कहेंगे कि आदमी पतन है। मनुष्य अपने को केंद्र मानता है। इसकी कोई जरूरत नहीं है, यह अहंकार की बकवास है।
अगर तुम पशुवत महसूस करते हो तो इसमें कुछ गलत नहीं है। पशुवत हो जाओ;
और समग्रता से हो जाओ, पूरे होश से हो जाओ। वह होश ही पहले तुम्हारे पशु को उघाड़ेगा, क्योंकि वही तुम्हारा यथार्थ है। तुम्हारी मनुष्यता झूठी है, चमड़ी से ज्यादा नीचे वह नहीं जाती। कोई तुम्हारा अपमान करता है और तुम्हारा मनुष्य नहीं, तुम्हारा पशु बाहर आ जाता है। कोई तुम्हारी निंदा करता है और तुम्हारा पशु बाहर आ जाता है, मनुष्य नहीं। पशु ही है, मनुष्य तो नहीं के बराबर है।
अगर तुम सब कुछ स्वीकार कर लेते हो तो यह नहीं के बराबर मनुष्य विदा
हो जाएगा। यह झूठा है। और तुम अपने सच्चे पशु को जान सकते हो। और सच्चाई को जानना शुभ है। और अगर तुम सजगता साधते रहे तो तुम इसी पशु के भीतर परमात्मा को पा लोगे। और झूठे मनुष्य की बजाय सच्चा पशु होना बेहतर है— सदा बेहतर है। सच्चाई असली बात है।
तो मैं पशुओं के विरोध में नहीं हूं; मैं केवल खो के विरोध में हूं। झूठे मनुष्य मत बनो; सच्चे पशु बनो। उस सच्चाई से ही तुम प्रामाणिक हो जाओगे, प्राणवान हो जाओगे। तुम ज्यादा से ज्यादा होशपूर्ण होते जाओ और धीरे—धीरे तुम उस अंतर्तम केंद्र पर पहुंचोगे जो पशु से ज्यादा सच है—और यही परमात्मा है।
ध्यान रहे, परमात्मा तुममें ही नहीं है, वह सभी पशुओं में भी है। और वह पशुओं में ही नहीं है, वह वृक्षों में भी है, चट्टानों में भी है। परमात्मा

83

[illegible] [illegible] [illegible] [

तंत्र-सूत्र, भाग 3
उन्चालीसवां प्रवचन

यहीं मन बुद्ध है

सूत्र:

61—जैसे जल से लहरें उठतीं है और अग्नि से लपटें,
वैसेही सर्वव्यापक हम से लहराता है।
62—जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर,
उसी स्थान पर, यह।
63—जब किसी इंद्रिय—विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो,
उसी बोध में स्थित होओ।

श्री अरविंद ने कहीं कहा है कि पूरा जीवन योग है। और यह बात सही है। हर चीज ध्यान बन सकती है। और जब तक हर चीज ध्यान न बने, समझना कि तुम्हें ध्यान नहीं घटित हुआ है। ध्यान खंड—खंड में नहीं होता है। या तो ध्यान होता है—और जब वह होता है तो तुम पूरे के पूरे उसमें होते हो—या वह नहीं होता है। तुम अपने जीवन के एक अंश को ध्यानपूर्ण नहीं बना सकते; वह असंभव है। लेकिन सब जगह वही कोशिश चलती है।
तुम पूरे—पूरे ही ध्यानपूर्ण हो सकते हो; तुम्हारा कोई अंश ध्यानपूर्ण नहीं हो सकता। वह असंभव है। क्योंकि ध्यान तुम्हारा स्वभाव है; वह श्वास लेने जैसा है। तुम चाहे जो भी करो, तुम श्वास लेते रहते हो। तुम्हारे करने से उसका कुछ लेना—देना नहीं है; तुम सतत श्वास लेते रहते हो। चलते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए सोए हुए, तुम श्वास लेना जारी रखते हो। तुम ऐसा नहीं कर सकते कि कभी श्वास लो और कभी न लो। यह एक सातत्य है। ध्यान आंतरिक श्वास है। और जब मैं कहता हूं कि ध्यान अंतस की श्वास है
तो मैं कोई प्रतीक के अर्थ में नहीं कहता हूं। ध्यान वस्तुत: आंतरिक श्वास है। जिस भांति तुम हवा की श्वास लेते हो, उसी भांति चेतना की श्वास भी ले सकते हो। और जब तुम चेतना की श्वास भीतर—बाहर लेना शुरू कर देते हो तो तुम मात्र शरीर नहीं रहे। इस उच्चतर श्वास—प्रश्वास के शुरू होने से, इस चेतना के, जीवन के श्वास—प्रश्वास के आरंभ होने से तुम एक नए लोक में, एक नए आयाम में प्रवेश कर जाते हो। वह आयाम ही अध्यात्म है। तुम्हारी श्वास शारीरिक है; ध्यान आध्यात्मिक है।
तो तुम अपने जीवन के एक खंड को ध्यानपूर्ण नहीं बना सकते हो। ऐसा नहीं
है कि तुम सुबह ध्यान कर लो और फिर दिनभर के लिए उसे भूल जाओ। ऐसा नहीं है कि तुम मंदिर या चर्च गए, वहा ध्यान किया और ध्यान से वैसे ही बाहर निकल आए जैसे मंदिर से बाहर आ जाते हो। यह संभव नहीं है। और अगर तुम ऐसी चेष्टा करोगे तो वह चेष्टा झूठी होगी। तुम मंदिर में प्रवेश कर सकते हो और बाहर आ सकते हो; लेकिन वैसे ही तुम ध्यान में प्रवेश करके बाहर नहीं आ सकते। जब तुम ध्यान में प्रवेश करते हो तो प्रवेश कर ही गए। अब तुम जहां भी जाओगे, ध्यान तुम्हारे साथ होगा।
यह बहुत बुनियादी, प्राथमिक बात है, जिसे सतत स्मरण रखना चाहिए। दूसरी बात कि तुम ध्यान में कहीं से भी प्रवेश कर सकते हो; क्योंकि सारा जीवन गहन ध्यान में है। पर्वत ध्यान में हैं; तारे ध्यान में हैं; फूल, पेड़—पौधे, हवाएं ध्यान में हैं। और तुम कहीं से भी ध्यान में प्रवेश कर सकते हो। कुछ भी हो, कुछ भी प्रवेश—द्वार बन सकता है।
इसका प्रयोग हो चुका है। यही कारण है कि इतनी विधियां हैं। यही वजह है
कि इतने धर्म हैं। और इसीलिए एक धर्म दूसरे को नहीं समझ सकता है, क्योंकि उनके प्रवेश—द्वार भिन्न—भिन्न हैं। और कोई—कोई धर्म तो ऐसे हैं जो धर्म के नाम से भी नहीं जाने जाते। कुछ लोगों को तो तुम धार्मिक की भांति पहचानोगे भी नहीं, क्योंकि उनका प्रवेश—द्वार इतना भिन्न है।
उदाहरण के लिए एक कवि है। किसी गुरु के पास गए बिना भी, धार्मिक, तथाकथित धार्मिक हुए बिना भी एक कवि ध्यान में उतर सकता है। उसकी कविता, उसकी सृजनात्मकता द्वार बन सकती है, वह उससे ही ध्यान में प्रवेश कर सकता

85

है। या कोई कुम्हार, जो मिट्टी के बर्तन बनाता है, मिट्टी के बर्तन बनाते हुए ही ध्यान में जा सकता है। उसका शिल्प ही द्वार बन सकता है। या कोई धनुर्विद अपनी धनुर्विद्या के द्वारा ध्यान में उतर जा सकता है। वैसे ही कोई माली भी। कोई कहीं से भी प्रवेश कर सकता है।
तुम जो भी करते हो वही चीज विधि बन सकती है। अगर उसे करते हुए बोध की गुणवत्ता बदल जाए तो वही चीज विधि बन सकती है। तो तुम जितनी चाहो उतनी विधियां हो सकती हैं। कोई भी कृत्य द्वार बन सकता है। कृत्य या विधि या उपाय या मार्ग महत्वपूर्ण नहीं हैं; महत्वपूर्ण है चेतना की वह गुणवत्ता जिससे तुम उस कृत्य को करते हो।
भारत के एक महान संत, कबीर, जुलाहे थे और ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद
भी जुलाहे ही बने रहे। उनके हजारों शिष्य थे। उनके शिष्य उनसे कहते थे कि अब आप कपड़ा बुनना बंद कीजिए; अब आपको यह सब करने की जरूरत नहीं है। हम हैं, हम आपकी हर तरह देखभाल करेंगे। कबीर हंसकर कहते: यह बुनना बुनना भर नहीं है। मेरा कपड़ा बुनना तो बाहरी कृत्य है, लेकिन इसके साथ—साथ मेरे भीतर कुछ होता है जिसे तुम नहीं देख सकते। यह मेरा ध्यान है।
कपड़ा बुनते—बुनते कोई जुलाहा ध्यानी कैसे हो जा सकता है? तुम जिस चित्त से कपडा बुनते हो, अगर वह चित्त ध्यानपूर्ण है तो फिर कृत्य प्रासंगिक नहीं है। कृत्य तो अप्रासंगिक है।
एक दूसरे संत हुए जो कुम्हार थे। उनका नाम गोरा था। वे मिट्टी के बर्तन बनाते थे। बर्तन बनाते हुए गोरा नाचते थे, गीत गाते थे। जब वे चाक पर बर्तन गढ़ते थे तो जैसे—जैसे बर्तन चाक पर केंद्रीभूत होता था, गोरा भी अपने भीतर केंद्रीभूत हो जाते थे। तुम्हें तो एक ही चीज दिखाई देती कि चाक घूम रहा है, मिट्टी का बर्तन आकार ले रहा है और गोरा उसे केंद्रीभूत कर रहे हैं। तुम्हें एक ही केंद्रीकरण दिखाई देता; लेकिन उसके साथ—साथ, युगपत, एक दूसरा केंद्रीकरण भी घटित हो रहा था—गोरा भी केंद्रिभूत हो रहे थे। बर्तन को गढ़ते हुए, बर्तन को रूप देते हुए, वे खुद भी आंतरिक चेतना के अदृश्य जगत में रूपायित हो रहे थे।
जब बर्तन निर्मित हो रहा था—वह उनका असली कृत्य नहीं था—तो वे साथ
ही साथ अपना भी सृजन कर रहे थे।
कोई भी कृत्य ध्यानपूर्ण हो सकता है। और एक बार तुमने जान लिया कि कैसे कोई कृत्य ध्यानपूर्ण होता है तो फिर कठिनाई नहीं है। तब तुम अपने सभी कृत्यों को ध्यान में रूपांतरित कर सकते हो। और तब सारा जीवन योग बन जाता है। तब सड़क पर चलना, या दफ्तर में काम करना, या सिर्फ बैठना, कुछ भी न करना ध्यान बन सकता है। कुछ भी ध्यान बन सकता है। स्मरण रहे, ध्यान कृत्य में नहीं है, कृत्य की गुणवत्ता में है।
अब हम विधियों में प्रवेश करेंगे।

पहली विधि:
जैसे जल से लहरें उठती हैं और अग्नि से लपटें वैसे ही सर्वव्यापक हम
से लहराता है।

पहले तो यह समझने की कोशिश करो कि लहर क्या है और तब तुम समझ सकते हो
कि कैसे यह चेतना की लहर तुम्हें ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सकती है।
तुम सागर में उठती लहरों को देखते हो। वे प्रकट होती हैं; एक अर्थ में
वे हैं और फिर भी किसी गहरे अर्थ में वे नहीं हैं। लहर के संबंध में समझने की यह पहली बात है। लहर प्रकट होतीं है; एक अर्थ में लहर है। लेकिन किसी गहरे अर्थ में लहर नहीं है, गहरे अर्थ में सिर्फ सागर है। सागर के बिना लहर नहीं हो सकती; और जब लहर है भी तो भी वह सागर ही है। लहर रूप भर है, सत्य नहीं है। सागर सत्य है, लहर केवल रूप है।
भाषा के कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। क्योंकि हम कहते हैं लहर, इससे लगता है कि लहर कुछ है। बेहतर हो कि हम लहर न कहकर लहराना कहें; लहर नहीं, लहराना ही है। वह कोई वस्तु नहीं, एक क्रिया भर है। वह एक गति है,

86

अस्तित्व पर छोड़ दो। झेन सदगुरु डोजेन कहा करता था—जब उसे भूख लगती थी तो वह कहता था—कि ऐसा लगता है कि अस्तित्व को मेरे द्वारा भूख लगी है। जब उसे प्यास लगती तो वह कहता था कि मेरे भीतर अस्तित्व प्यासा है।
यह ध्यान तुम्हें उसी स्थिति में पहुंचा देगा। तब तुम्हारा अहंकार बिखर जाता है, मिट जाता है और सब कुछ ब्रह्मांड का हिस्सा हो जाता है। तब जो भी होता है, अस्तित्व को होता है। तुम अब यहां नहीं हो। और तब कोई पाप नहीं है; तब कोई जिम्मेवारी नहीं है।
मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम उच्छृंखल हो जाओगे। मेरा मतलब यह भी नहीं
है कि तुम पापी हो जाओगे। पाप असंभव हो जाएगा, क्योंकि पाप अहंकार के इर्द — गिर्द ही घटित होता है। जिम्मेवारी नहीं रहेगी, क्योंकि अब तुम गैर— जिम्मेवार नहीं हो सकते। अब तो केवल तुम हो; इसलिए किसके प्रति जिम्मेवार होगे?
अब अगर तुम किसी को मरते देखोगे तो तुम्हें लगेगा कि उसके साथ, उसके भीतर, मैं ही मर रहा हूं तब तुम्हें लगेगा कि पूरा जगत मर रहा है और मैं उस जगत का अंश हूं। और अगर किसी फूल को खिलते देखोगे तो तुम उसके साथ—साथ खिलोगे। अब सारा ब्रह्मांड तुममय है। और ऐसी घनिष्ठता में, ऐसी लयबद्धता में होना समाधि में होना है। ध्यान मार्ग है और यह एकता का भाव, सब के साथ जुड़े होने का भाव, मंजिल है।
इसे प्रयोग करो। सागर को स्मरण रखो और लहर को भूल जाओ। और ध्यान रहे,
जब भी तुम लहर को स्मरण करोगे और लहर की भांति व्यवहार करने लगोगे तो तुम भूल करोगे और उसके कारण दुख में पड़ोगे। कहीं कोई ईश्वर नहीं है जो तुम्हें दंड दे रहा है। जब भी तुम किसी भ्रांति के शिकार होते हो, तुम अपने को दंड देते हो। जगत में एक नियम है, धर्म है, ताओ है। अगर तुम इसके साथ लयबद्ध चलते हो तो तुम आनंद में हो। यदि तुम उसके विपरीत चलोगे, तुम अपने को दुख में पाओगे। वहां आकाश में कोई नहीं बैठा है तुम्हें दंडित करने को। वहां तुम्हारे पापों का कोई बही—खाता नहीं है; न उसकी कोई जरूरत है।
यह ठीक गुरुत्वाकर्षण जैसा है। अगर तुम सही ढंग से चलते हो तो गुरुत्वाकर्षण सहयोगी होता है; गुरुत्वाकर्षण के बिना तुम चल नहीं सकते। लेकिन अगर तुम गलत ढंग से चलोगे तो गिरोगे; अपनी हड्डी भी तोड़ ले सकते हो। लेकिन कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है; सिर्फ नियम है गुरुत्वाकर्षण का, निरपेक्ष नियम है। अगर तुम गलत चलोगे और गिरोगे तो तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी। और ठीक से चलोगे तो उसका मतलब है कि तुम गुरुत्वाकर्षण का सही उपयोग कर रहे हो। ऊर्जा का सही और गलत दोनों तरह से उपयोग हो सकता है।
जब तुम अपने को लहर मानते हो तो तुम जागतिक नियम के विरोध में हो, तुम सत्य के विरोध में हो। तब तुम अपने लिए दुख निर्मित करोगे। कर्म के सिद्धांत का यही मतलब है। कोई कानून बनाने वाला नहीं है; परमात्मा कोई जज नहीं है। जज होना कुरूप बात है। और अगर ईश्वर कोई जज होता तो अब तक बिलकुल ही ऊब गया होता या पागल हो गया होता। वह कोई जज नहीं है; वह कोई कंट्रोलर नहीं है; वह कोई कानून बनाने वाला भी नहीं है। जगत के अपने ही नियम हैं। और बुनियादी नियम यह है कि सच्चा होना आनंद में होना है और झूठा होना दुख में होना है।

दूसरी विधि:
जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है भीतर या बाहर उसी स्थान पर यह।

यह मन द्वार है—यही मन। जहां कहीं यह मन भटकता है, जो कुछ यह सोचता है, मनन करता है, सपने देखता है—यही मन और यही क्षण द्वार है।
यह एक अति क्रांतिकारी विधि है; क्योंकि हम कभी नहीं सोचते कि साधारण
मन द्वार है। हम सोचते हैं कि कोई महान मन, कोई बुद्ध या जीसस का मन प्रवेश कर सकता है। हम सोचते हैं कि बुद्ध या जीसस के पास कोई असाधारण मन है। और यह सूत्र कहता है कि तुम्हारा साधारण मन ही द्वार है—वही मन जो सपने देखता है, कल्पनाएं करता है, ऊलजलूल सोच—विचार करता है। यही मन द्वार है जो कुरूप कामनाओं और वासनाओं से, क्रोध और लोभ से खचाखच भरा है; जिसमें वह

90

देना था; कुर्सी से उठने की क्या जरूरत थी। और प्रश्नकर्ता तो बहुत भयभीत हो उठा। लिंची अपनी बेधक दृष्टि उस व्यक्ति पर जमाए पास आया। उसने उस आदमी का गला पकड़ लिया,उसे झकझोरा और कहा: आंखें बंद करो और उसका स्मरण करो जा यह प्रश्न पूछ रहा है। कि मैं कौन हूं।
उस आदमी ने आंखें बंद की—हालांकि डरते—डरते बंद की। वह अपने भीतर खोजने गया कि किसने यह प्रश्न पूछा है। और वह वापस नहीं आया। भीड़ प्रतीक्षा करती रहीं,प्रतीक्षा करती रही,प्रतीक्षा करती रहीं। उस आदमी का चेहरा मौन और शांत हो गया। तब लिंची ने उसे फिर झकझोरा: अब बाहर आओ और सबको बताओ कि तुम कौन हो। वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा: जवाब देने का आपका खूब अद्भुत ढंग है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति अभी मुझसे यही पूछे तो मैं भी वही करूंगा; मैं उत्तर नहीं दे सकता।
यह दृष्टि की, परिप्रेक्ष्य की बदलाहट थी। तुम पूछते हो कि मैं कौन हूं। और तुम्हारा मन प्रश्न पर केंद्रित है, जब कि उत्तर के ठीक पीछे प्रश्नकर्ता में छिपा है। दृष्टि को बदलों; अपने पर लौट ओओ।
यह सूत्र कहता है: जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर यह।
विषय से मन पर चले आओ और तुम फिर साधारण मन न रहे। तुम विषयों के कारण साधारण हो। दृष्टि के बदलते ही तुम स्वयं बुद्ध हो जाते हो। तुम बुद्ध ही हो; लेकिन अनेक बादलों के नीचेदबे हो। इतना ही नहीं कि तुम बादलों से दबे हो; तुम उनसे बंधे हो, तुम उन्हें जाने भी नहीं देते।
तुम सोचते हो कि बादल मेरी संपदा है। तुम सोचते हो कि जितने बादल होंगे; मैं उतना ही बेहतर, उतना ही ज्यादा समृद्ध हो जाऊंगा। और तुम्हारा सारा आकाश, सारा आंतरिक आकाश उनसे आच्छादित है, ढंका है, एक अर्थ में बादलों का जीवन ही संसार है।
यह बात एक क्षण में घट सकती है—यह दृष्टि की बदलाहट। यह सदा अचानक ही घटती है। मैं यह नहीं कहा रहा हूं कि तुम कुछ भी मत करो और यह अचानक घटेगी। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। लेकिन यह क्रमिक ढंग से नहीं घटता है। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। करना ही होगा। तब करते—करते एक दिन वह क्षण आता है जब तुम भाप बनने के सही तापमान पर पहुंच जाते हो। अचानक पानी—पानी नहीं रहता है। वह भाप बन गया। अचानक तुम विषय से बाहर हो गए; तुम्हारी आंखें अब बादलों पर नहीं अटकी है। अब अचानक तुम आंतरिक आकाश की तरफ भीतर मुड़ गए।
ऐसा कभी क्रमिक रूप से नहीं होता कि तुम्हारी आँख का एक अंश भीतर की
और मुड़ जाता है। और उसका दूसरा अंश बाहर बादलों पर लगा रहता है। नहीं, यह अंशों में नहीं घटित होता कि तुम अब दस प्रतिशत भीतर हो और नब्बे प्रतिशत बाहर, कि बीस प्रतिशत भीतर हो और अस्सी प्रतिशत बाहर। नहीं, जब यह घटित होता है तो शत प्रतिशत होता है। क्योंकि तुम अपनी दृष्टि को खंड—खंड नहीं कर सकते हो। या तो तुम विषयों को देखते हो या अपने को, या संसार को या ब्रह्म को।
फिर तुम संसार में वापस आ सकते हो; तुम फिर अपनी दृष्टि बदल सकते हो।
अब तुम मालिक हो। सच तो यह है कि तुम तभी मालिक होते हो जब स्वेच्छा से अपनी दृष्टि बदल सकते हो।
मुझे एक तिब्बती संत मारपा का स्मरण आता है। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ—जब वह बुद्ध हुआ, जब वह अंतस की ओर मुड़ गया, जब उसने अंतराकाश का, अनंत का साक्षात्कार किया—तो किसी ने उससे पूछा. मारपा, अब कैसे हो? तो मारपा ने जो उत्तर दिया वह अपूर्व है, अप्रत्याशित है। अब तक किसी बुद्ध ने वैसा उत्तर नहीं दिया था। मारपा ने कहा. पहले जैसा ही दुखी।
वह आदमी तो भौचक्का रह गया; उसने पूछा: पहले जैसा ही दुखी? लेकिन मारपा हंसा; उसने कहा: ही, लेकिन एक फर्क के साथ। और फर्क यह है कि अब मेरा दुख स्वैच्छिक है। अब मैं कभी—कभी बस संसार का स्वाद लेने के लिए अपने से बाहर चला जाता हूं लेकिन मैं मालिक हूं। मैं किसी भी क्षण भीतर लौट सकता हूं। और दोनों ध्रुवों के बीच गति करना अच्छा है। तभी कोई जीवंत रहता है। मारपा ने कहा: मैं अब दोनों जगत में गति कर सकता हूं। कभी मैं दुखों में

92

लौट जाता हूं लेकिन अब दुख मुझे नहीं घटित होते हैं, मैं ही उन्हें घटित होता हूं। और मैं उनसे अछूता रहता हूं।
निश्चित ही, जब तुम स्वेच्छा से गति करते हो तो तुम अछूते रहते हो। एक बार तुमने जान लिया कि दृष्टि को अंतर्मुखी कैसे किया जाए, तुम संसार में वापस आ सकते हो। सभी बुद्धषुरुष संसार में वापस आए हैं। वे दृष्टि को फिर संसार पर ले जाते हैं। लेकिन अब आंतरिक मनुष्य की गुणवत्ता भिन्न है। वह जानता है कि यह उसकी स्वतंत्र दृष्टि है; वह बादलों को भी गति करने की इजाजत दे सकता है। अब बादल मालिक न रहे, वे तुम पर हावी नहीं हो सकते। वे अब तुम्हारी मर्जी से घूमते हैं।
और यह सुंदर है। कभी—कभी बादलों से भरा आकाश सुंदर होता है, बादलों
की हलचल सुंदर होती है। अगर आकाश आकाश बना रहे तो बादलों को तिरने दिया जा सकता है। समस्या तो तब खड़ी होती है जब आकाश अपने को भूल जाता है और वहां बादल ही बादल रह जाते हैं। तब सब कुछ कुरूप हो जाता है, क्योंकि स्वतंत्रता खो गई।
यह सूत्र सुंदर है. 'जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।’
झेन परंपरा में इस सूत्र का गहरा उपयोग हुआ है। झेन कहता है कि साधारण
मन ही बुद्ध—मन है। भोजन करते हुए तुम बुद्ध हो; सोते हुए तुम बुद्ध हो, कुएं से पानी ले जाते हुए तुम बुद्ध हो। तुम हो! कुएं से पानी ले जाते हुए भोजन करते हुए, बिस्तर पर लेटे हुए तुम बुद्ध हो! यह बात सोच में भी नहीं आती; यह पहेली जैसी लगती है। लेकिन यह सत्य है। अगर पानी ढोते हुए तुम सिर्फ पानी ढोते हो, तुम उसे समस्या नहीं बनाते और सिर्फ पानी ढोते हो, अगर तुम्हारा मन बादलों से मुक्त है और आकाश खाली है, अगर तुम केवल पानी ढोते हो, तो तुम बुद्ध हो। तब भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करते हो और कुछ नहीं करते।
लेकिन हम जब भोजन करते हैं तो उसके साथ हजारों चीजें करते रहते हैं।
हो सकता है कि तुम्हारा मन भोजन में बिलकुल न हो; तुम्हारा शरीर यंत्र की तरह भोजन कर रहा हो और तुम्हारा मन कहीं और हो।
किसी विश्वविद्यालय का एक छात्र यहां कुछ दिन पहले आया था। उसकी परीक्षा करीब थी, इसलिए वह कुछ पूछने आया था। उसने कहा: मैं बहुत उलझन में हूं। समस्या यह है कि मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं और परीक्षा निकट है। जब मैं लड़की के साथ होता हूं तो परीक्षा की सोचता रहता हूं और जब पढ़ता होता हूं तो लड़की की सोचता रहता हूं। मैं क्या करूं? पढ़ते समय मैं वहां नहीं होता, मैं कल्पना में अपनी प्रेमिका के साथ होता हूं। और प्रेमिका के साथ जब होता हूं तो कभी उसके साथ नहीं होता; मैं अपनी समस्याओं के बारे में, नजदीक आती परीक्षा के बारे में चिंता करता रहता हूं। नतीजा यह है कि सब कुछ गड्ड—मड्ड हो गया है।
यह लड़का ही नहीं ऐसे ही हर कोई गड्ड—मड्ड हो गया है। तुम जब दफ्तर में होते हो तो तुम्हारा मन घर में होता है; तुम जब घर में होते हो तो तुम्हारा मन दफ्तर में होता है। और तुम ऐसा जादुई करिश्मा कर नहीं सकते; घर में होकर तुम घर में ही हो सकते हो, दफ्तर में नहीं हो सकते; और अगर तुम दफ्तर में हो तो तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है, तुम पागल हो। तब हर चीज दूसरी चीज में उलझ जाती है, गुत्थमगुत्था हो जाती है। तब कुछ भी स्पष्ट नहीं रहता है। और यही मन समस्या है।
कुएं से पानी खींचते हुए, कुएं से पानी ढोते हुए तुम अगर मात्र यही काम कर रहे हो तो तुम बुद्ध हो। अगर तुम झेन सदगुरुओं के पास जाओ और उनसे पूछो कि आप क्या करते हैं? आपकी साधना क्या है? ध्यान क्या है? तो वे कहेंगे: जब नींद आती है तो हम सो जाते हैं; जब भूख लगती है तो हम भोजन कर लेते हैं। बस यही हमारी साधना है और कोई साधना नहीं है।
लेकिन यह बहुत कठिन है, हालांकि आसान मालूम पड़ता है। अगर भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करो, अगर बैठे हुए तुम सिर्फ बैठो और कुछ न करो, अगर तुम वर्तमान क्षण के साथ रह सको, उससे हटो नहीं, अगर तुम वर्तमान क्षण में डूब सको, न कोई अतीत हो, न कोई भविष्य हो, अगर. वर्तमान क्षण ही एकमात्र अस्तित्व हो, तो तुम बुद्ध हो। तब यही मन बुद्ध—मन बन जाता है।

93

तो जब तुम्हारा मन भटकता हो तो उसे रोकने की चेष्टा मत करो, बल्कि आकाश को स्मरण करो। जब मन भटके तो उसे रोको मत। उसे किसी बिंदु पर लाने की, एकाग्र करने की चेष्टा मत करो। नहीं, उसे भटकने दो, लेकिन भटकाव पर बहुत अवधान मत दो—न पक्ष में, न विपक्ष में। क्योंकि तुम चाहे उसके पक्ष में रहो या विपक्ष में, तुम उससे बंधे रहते हो। आकाश को स्मरण करो। भटकन को चलने दो और इतना ही कहो: ठीक है, यह चलती हुई राह है; अनेक लोग इधर—उधर चल रहे हैं। मन एक चलती राह है। मैं आकाश हूं बादल नहीं।
इसे स्मरण रखो, इस भाव में उतरो; इसमें ही स्थित रहो। देर—अबेर तुम देखोगे कि बादलों की गति मंद पड़ रही बादलों के बीच बड़े अंतराल आने लगे हैं। वे अब उतने काले नहीं हैं, उतने घने नहीं हैं। उनकी गति मंद हो गई है,. उनके बीच अंतराल देखे जा सकते हैं, उनके पीछे का आकाश दिखाई पड़ने लगा है। अपने को आकाश की भांति अनुभव करते रहो, बादलों की भांति नहीं। देर—अबेर किसी दिन, किसी सम्यक क्षण में, जब तुम्हारी दृष्टि सचमुच भीतर लौट गई है, बादल विलीन हो जाएंगे; और तब तुम शुद्ध आकाश हो, सदा से शुद्र, सदा से अस्पर्शित आकाश हो।
और एक बार तुमने इस कुंआरेपन को जान लिया तो फिर बादलों में, बादलों
के संसार में वापस आ सकते हो। तब संसार का अपना ही सौंदर्य है, तब तुम इसमें रह सकते हो, लेकिन अब तुम मालिक हो।
संसार बुरा नहीं है। मालिक की तरह संसार समस्या है; जब तुम ही मालिक
हो तो तुम उसमें रह सकते हो। तब संसार का अपना ही सौंदर्य है, वह सुंदर है, प्यारा है। लेकिन तुम उस सौंदर्य को, उस माधुर्य को अपने भीतर मालिक होकर ही जान सकते हो।

तीसरी विधि:
जब किसी इंद्रिय— विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो उसी बोध में स्थित होओ।

तुम अपनी आख के द्वारा देखते हो। ध्यान रहे, तुम अपनी आख के द्वारा देखते हो। आंखें नहीं देख सकतीं; उनके द्वारा तुम देखते हो। द्रष्टा पीछे छिपा है, भीतर छिपा है, आंखें बस द्वार हैं, झरोखे हैं। लेकिन हम सदा सोचते हैं कि हम आख से देखते हैं; हम सोचते हैं कि हम कान से सुनते हैं। कभी किसी ने कान से नहीं सुना है। तुम कान के द्वारा सुनते हो, कान से नहीं। सुनने वाला पीछे छिपा है। कान तो रिसीवर भर है।
मैं तुम्हें छूता हूं; मैं बहुत प्रेमपूर्वक तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं। यह हाथ नहीं है जो तुम्हें छूता है, यह मैं हूं जो हाथ के द्वारा तुम्हें छू रहा हूं। हाथ यंत्र भर है। और स्पर्श भी दो भांति का है। एक, जब मैं सच ही तुम्हें स्पर्श करता हूं। और दूसरा, जब मैं स्पर्श से बचना चाहता हूं। मैं तुम्हें छूकर भी स्पर्श से बच सकता हूं; मैं अपने हाथ में न रहूं; मैं हाथ से अपने को अलग कर लूं।
इसे प्रयोग करके देखो, तुम्हें एक भिन्न अनुभव होगा, एक दूरी का अनुभव होगा। किसी पर अपना हाथ रखो और अपने को अलग रखो; वहां सिर्फ मुर्दा हाथ होगा, तुम नहीं। और अगर दूसरा व्यक्ति संवेदनशील है तो उसे मुर्दा हाथ का एहसास होगा; वह अपमानित अनुभव करेगा। क्योंकि तुम उसे धोखा दे रहे हो; तुम छूने का दिखावा कर रहे हो, छू नहीं रहे हो।
स्त्रियां इस मामले में बहुत संवेदनशील हैं, तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। स्पर्श के प्रति, शारीरिक स्पर्श के प्रति वे ज्यादा सजग हैं; वे जान जाती हैं। हो सकता है पति मीठी—मीठी बातें कर रहा हो, वह फूल ले आया हो और कह रहा हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; लेकिन उसका स्पर्श कह देगा कि वह वहा नहीं है। और स्त्रियों को सहज—बोध हो जाता है कि कब तुम उनके साथ हो और कब नहीं। अगर तुम अपने मालिक नहीं हो तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। अगर तुम्हें अपने ऊपर मालकियत नहीं है तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। और जो अपना मालिक है वह पति होना नहीं चाहेगा, यह कठिनाई है। तुम जो भी कहोगे, तुम्हारा स्पर्श उसे झुठला देगा।

बच्चे बहुत संवेदनशील होते हैं, तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। तुम उनकी पीठ भला थपथपाते हो, लेकिन वे जान जाते है कि यह थपथपाना मुर्दा है। अगर तुम्हारे हाथ में प्रेम—ऊर्जा का प्रवाह नहीं है तो वे जान जाते हैं। एक मुर्दा हाथ उपयोग में लाया जा रहा है। और जब तुम समग्रता से अपने हाथ में मौजूद होते हो, जब तुम खुद हाथ के साथ आगे बढ़ते हो, जब तुम्हारे प्राण तुम्हारे हाथ में आ गए हैं, जब तुम्हारी आत्मा ही वहा मौजूद है, तब स्पर्श की गुणवत्ता ही भिन्न होती है।
यह सूत्र कहता है कि इंद्रियां द्वार भर हैं—एक माध्यम, एक यंत्र, एक रिसीविंग स्टेशन। और तुम उनके पीछे छिपे हो।
'जब किसी इंद्रिय—विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।’
संगीत सुनते हुए अपने को कान में मत खो दो, मत भुला दो; उस चैतन्य को स्मरण करो जो पीछे छिपा है। होश रखो। किसी को देखते हुए इस विधि का प्रयोग करो। तुम यह प्रयोग मुझे देखते हुए अभी और यहीं कर सकते हो। क्या हो रहा है?
तुम मुझे आख से देख सकते हो। और जब मैं कहता हूं आख से तो उसका मतलब है
कि तुम्हें इसका बोध नहीं है कि तुम आख के पीछे छिपे हो। तुम मुझे आख के द्वारा देख सकते हो। और जब मैं कहता हूं आख के द्वारा तो उसका मतलब है कि आख बस तुम्हारे और मेरे बीच में एक यंत्र भर है, तुम आख के पीछे खड़े हो, आख के द्वारा देख रहे हो, जैसे कोई खिड़की या ऐनक के द्वारा देखता है।
तुमने बैंक में किसी क्लर्क को अपनी ऐनक के ऊपर से देखते हुए देखा होगा। ऐनक उसकी नाक पर उतर आयी है और वह देख रहा है। उसी ढंग से मुझे देखो, मेरी तरफ देखो, ऐसे देखो जैसे आख के ऊपर से देखते हो, मानो तुम्हारी आंखें सरककर नीचे नाक पर आ गई हों और तुम उनके पीछे से मुझे देख रहे हो। अचानक तुम्हें गुणवत्ता में फर्क मालूम पड़ेगा। तुम्हारा परिप्रेक्ष्य बदलता है, आंखें महज द्वार बन जाती हैं। और यह ध्यान बन जाता है।
सुनते समय कानों के द्वारा मात्र सुनो और अपने आंतरिक केंद्र के प्रति जागे रहो। स्पर्श करते हुए हाथ के द्वारा मात्र छुओ और आंतरिक केंद्र को स्मरण रखो जो पीछे छिपा है। किसी भी इंद्रिय से तुम्हें आंतरिक केंद्र की अनुभूति हो सकती है। और प्रत्येक इंद्रिय आंतरिक केंद्र तक जाती है, उसे सूचना देती है।
यही कारण है कि जब तुम मुझे देख और सुन रहे हो—जब तुम आख के द्वारा देख रहे हो और कान के द्वारा सुन रहे हो—तो तुम जानते हो कि तुम उसी व्यक्ति को देख रहे हो जिसे सुन भी रहे हो। अगर मेरे शरीर में कोई गंध है तो तुम्हारी नाक उसे भी ग्रहण करेगी। उस हालत में तीन—तीन इंद्रियां एक ही केंद्र को सूचना दे रही हैं। इसी से तुम संयोजन कर पाते हो, अन्यथा संयोजन कठिन होता।
अगर तुम्हारी आंखें ही देखती हैं और कान ही सुनते हैं तो यह जानना कठिन होता कि तुम उसी व्यक्ति को सुन रहे हो जिसे देख भी रहे हो, या दो भिन्न व्यक्तियों को देख और सुन रहे हो; क्योंकि दोनों इंद्रियां भिन्न हैं और वे आपस में नहीं मिलती हैं। तुम्हारी आंखों को तुम्हारे कानों का पता नहीं है और तुम्हारे कानों को तुम्हारी आंखों का पता नहीं है। वे एक— दूसरे को नहीं जानते हैं; वे आपस में कभी मिले नहीं हैं। उनका एक—दूसरे से परिचय भी नहीं कराया गया है। तो फिर सारा. समन्वय, सारा संयोजन कैसे घटित होता है?
कान सुनते है, आंखें देखती है, हाथ छूते है, नाक सूंघती है; और अचानक तुम्हारे भीतर कहीं कोई जान जाता है कि यह वही आदमी है जिसे मैं सुन रहा हूं देख रहा हूं छू रहा हूं और सूंघ रहा हूं। यह ज्ञाता इंद्रियों से पृथक और भिन्न है। सभी इंद्रियां इस ज्ञाता को ही सूचना देती हैं। और इस ज्ञाता में, इस केंद्र में सब कुछ सम्मिलित होकर, संयोजित होकर एक हो जाता है। यह चमत्कार है।
मैं एक हूं; तुमसे बाहर मैं एक हूं। मेरा शरीर, मेरे शरीर की उपस्थिति, उसकी गंध, मेरा बोलना, सब एक हैं। लेकिन तुम्हारी इंद्रियां मुझे विभाजित कर देंगी। तुम्हारे कान मेरे बोलने की खबर देंगे, तुम्हारी नाक मेरी गंध

95

की खबर देगी और तुम्हारी आंखें मेरी उपस्थिति की खबर देंगी। वे इंद्रियां मुझे टुकड़ों में बांट देंगी। लेकिन फिर तुम्हारे भीतर कहीं पर मैं एक हो जाऊंगा। जहां तुम्हारे भीतर मैं एक होता हूं वह तुम्हारे होने का केंद्र है। वह तुम्हारा बोध है, चैतन्य है। तुम उसे बिलकुल भूल गए हो। यह विस्मरण ही अज्ञान है। और बोध या चैतन्य आत्म—ज्ञान का द्वार खोलता है। तुम और किसी उपाय से अपने को नहीं जान सकते हो।
'जब किसी इंद्रिय—विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।’
उसी बोध में रहो, उसी बोध में स्थिर रहो। होशपूर्ण होओ।
आरंभ में यह कठिन है। हम बार—बार सो जाते हैं, और आख के द्वारा देखना कठिन मालूम पड़ता है। आख से देखना आसान है। आरंभ में थोड़ा तनाव अनुभव होगा अगर तुम आख के द्वारा देखने की चेष्टा करोगे। और न केवल तुम तनाव अनुभव करोगे, वह व्यक्ति भी तनाव अनुभव करेगा जिसे तुम देखोगे।
अगर तुम किसी को आख के द्वारा देखोगे तो उसे लगेगा कि तुम अनुचित रूप
से दखल दे रहे हो, कि तुम उसके साथ अभद्र व्यवहार कर रहे हो। तुम अगर आख के द्वारा देखोगे तो दूसरे को अचानक अनुभव होगा कि तुम उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि बेधक बन जाएगी, तुम्हारी दृष्टि गहराई में उतर जाएगी। अगर यह दृष्टि तुम्हारी गहराई से आती है, वह उसकी गहराई में प्रवेश कर जाएगी।
यही कारण है कि समाज ने एक बिल्ट—इन सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। समाज कहता है कि जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो, उसे बहुत घूरकर मत देखो। अगर तुम प्रेम में हो तो देख सकते हो। तब तुम उसके अंतर्तम तक प्रवेश कर सकते हो, क्योंकि वह तुमसे भयभीत नहीं है। तब दूसरा तुम्हारे प्रति नग्न हो सकता है, समग्रत: नग्न हो सकता है; वह तुम्हारे प्रति खुला हो सकता है। लेकिन साधारणत:, अगर तुम प्रेम में नहीं हो, तो किसी को घूरने की, बेधक दृष्टि से देखने की मनाही है।
भारत में हम ऐसे आदमी को, जो दूसरे को घूरता है, लुच्चा कहते हैं। लुच्चा का अर्थ है, देखने वाला। लुच्चा शब्द लोचन से आता है। लुच्चा का अर्थ हुआ कि जो आख ही बन गया है। इसलिए इस विधि का प्रयोग किसी अपरिचित पर मत करो। वह तुम्हें लुच्चा समझेगा। पहले इस विधि का प्रयोग ऐसे विषयों के साथ करो जैसे फूल हैं, पेड़ हैं, रात के तारे है। वे इसे अनुचित दखल नहीं मानेंगे; वे एतराज नहीं उठाएंगे। बल्कि वे इसे पसंद करेंगे, उन्हें बहुत अच्छा लगेगा। वे इसका स्वागत करेंगे।
तो पहले उनके साथ प्रयोग करो और फिर अपनी पत्नी, अपने बच्चे, अपने प्रियजनों के साथ। कभी अपने बच्चे को गोद में उठा लो और उसको आँख के द्वारा देखो। बच्चा इसे समझेगा, सराहेगा। वह अन्य किसी से भी ज्यादा समझेगा, क्योंकि अभी समाज ने उसे पंगु नहीं बनाया है, विकृत नहीं किया है। वह अभी सहज है। तुम अगर उसे आख के द्वारा देखोगे तो उसे प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होगी, उसे तुम्हारी उपस्थिति का एहसास होगा।
अपने प्रेमी या प्रेमिका को ऐसे देखो। और फिर जैसे—जैसे तुम्हें इस बात की पकड़ आएगी, जैसे—जैसे तुम इसमें कुशल होगे, वैसे—वैसे तुम धीरे— धीरे दूसरों को भी देखने में समर्थ हो जाओगे। क्योंकि तब किसी को पता नहीं चलेगा कि तुमने इस गहराई से उसे देखा। और जब अपनी इंद्रियों के पीछे सतत सजग होकर खड़े होने की कला तुम्हारे हाथ आ जाएगी तो इंद्रियां तुम्हें धोखा न दे पाएंगी। अन्यथा इंद्रियां धोखा देती हैं। ऐसे संसार में, जो सिर्फ भासता है, इंद्रियों ने तुम्हें उसे सच मानने का धोखा दिया है।
अगर तुम इंद्रियों के द्वारा देख सके और सजग रह सके तो धीरे— धीरे संसार माया मालूम पड़ने लगेगा, स्वप्नवत मालूम पड़ने लगेगा। और तब तुम उसके तत्व में, उसके मूल तत्व में प्रवेश कर सकोगे। वह मूल तत्व ही ब्रह्म है।

आज इतना ही।

96

तंत्र-सूत्र, भाग 3
चालीसवां प्रवचन

ज्ञान क्रमिक नहीं, आकस्मिक घटता है

पहला प्रश्न:
आपने कहा कि की व्यक्ति या तो संसार को देखता है या ब्रह्म को और यह कि ब्रह्म का क्रमिक दर्शन संभव नहीं है। लेकिन अनुभव में यह आता है कि जैसे — जैसे हम मौन और शांत होते है हमें परमात्मा की उपस्थिति अधिक—अधिक स्पष्ट होती जाती है। अगर प्रामाणिक अनुभव कभी क्रमिक नहीं, सिर्फ आकस्मिक होता है, अचानक होता है, तो यह क्रमिक विकास और दृष्टि की सुस्पष्टता क्या है?

यह एक बहुत प्राचीन समस्या रही है: बुद्धत्व अचानक घटित होता है या क्रमिक? इस संबंध में बहुत सी बातें समझने जैसी हैं। एक परंपरा है जो कहती है कि बुद्धत्व क्रमिक उपलब्धि है और जैसे कि प्रत्येक चीज अंशों में बांटी जा सकती है, चरणों में बांटी जा सकती है, ज्ञान को भी अंशों में विभाजित किया जा सकता है; तुम अधिक—अधिक ज्ञान को, और—और बुद्धत्व को क्रमश: उपलब्ध हो सकते हो। और इस बात को व्यापक स्वीकृति मिली है; क्योंकि मनुष्य का मन नहीं सोच सकता कि कोई चीज तुरंत और अचानक हो सकती है।
मन विभाजन करना चाहता है, विश्लेषण करना चाहता है। मन बड़ा विश्लेष है। मन क्रमिक को समझ सकता है, लेकिन अकस्मात को, अचानक को नहीं। आकस्मिकता बुद्धि के पार की चीज है, मन के पार की बात है। अगर मैं तुमसे कहूं कि तुम अज्ञानी हो और तुम क्रमश: ज्ञानी बन सकते हो तो यह बात समझ में आती है। तुम इसे समझ सकते हो।
लेकिन अगर मैं कहूं कि नहीं, ज्ञान में क्रमिक विकास नहीं होता; या तो तुम अज्ञानी हो या ज्ञान में अचानक छलांग लग जाती है तो प्रश्न उठता है कि ज्ञानोपलब्ध कैसे हुआ जाए। अगर क्रम नहीं होगा तो विकास नहीं होगा। अगर विकास की सीढ़ियां न हों तो तुम प्रगति नहीं कर सकते, तुम आगे नहीं बढ़ सकते। कहां से आरंभ किया जाए? आकस्मिक विस्फोट में आरंभ और अंत एक ही होते हैं; आरंभ और अंत के बीच अंतराल नहीं होता। तब आरंभ कहां से हो? आरंभ ही अंत है। मन के लिए यह एक पहेली बन जाती है—एक कोआन। त्वरित ज्ञान असंभव मालूम पड़ता है। ऐसा नहीं है कि त्वरित ज्ञान असंभव है; लेकिन मन उसकी धारणा नहीं बना सकता। और स्मरण रहे, मन ज्ञान की धारणा कैसे बना सकता है! यह असंभव है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि आंतरिक विस्फोट भी क्रमिक विकास है। अनेक ज्ञानी पुरुषों ने भी तुम्हारी इस बात को हामी भर दी है और उन्होंने कहा है कि ही, क्रमिक विकास होता है।

ऐसा नहीं कि क्रमिक विकास होता है, लेकिन ज्ञानियों ने तुम्हारे रुझान को, तुम्हारे देखने के ढंग को हामी भरी है। ऐसा उन्होंने तुम्हारे प्रति प्रगाढ़ करूणा के कारण किया है। वे जानते हैं कि अगर तुम सोचते हो कि यह क्रमिक है तो आरंभ अच्छा हो सकता है। और क्रमिक विकास तो नहीं होगा, लेकिन अगर तुम आरंभ करते हो, तुम उसे खोजते ही चले जाते हो तो किसी दिन वह आकस्मिक घटना तुम्हें घट जाएगी। और अगर यह कहा जाए कि ज्ञान अचानक, अप्रत्याशित ही घटता है, उसका कोई क्रमिक विकास संभव नहीं है, तो तुम आरंभ ही नहीं करोगे और ज्ञान कभी घटित नहीं होगा। अनेक प्रज्ञा पुरुषों ने केवल तुम्हारे हित में, तुम्हें यात्रा पर निकलने को राजी करने के निमित्त कहा है कि शान क्रमिक प्रक्रिया है।
क्रमिक प्रक्रिया से ज्ञान की उपलब्धि संभव नहीं है, पर एक दूसरी चीज जरूर संभव है—बुद्धत्व नहीं, कोई अन्य चीज। लेकिन यह अन्य चीज सहयोगी हो जाती है। उदाहरण के लिए, अगर तुम भाप बनाने के लिए पानी को गरम करते हो तो भाप बनना क्रमश: नहीं, अचानक घटित होगा। एक विशेष तापमान पर, सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाएगा, अचानक भाप बन जाएगा। पानी और भाप के बीच क्रमिक विकास नहीं होगा। तुम नहीं कह सकते कि यह पानी थोड़ा भाप है और थोड़ा पानी है। या तो पानी है या भाप है। और पानी एकदम, अचानक भाप की अवस्था में छलांग लगा

97

ऐसा नहीं है कि अब तुम अपने पर नियंत्रण कर सकते हो, नियंत्रण की कोई जरूरत नहीं है। अब तुम नीचे गिर ही नहीं सकते, जैसे पहले ऊपर उठना असंभव था वैसे ही अब नीचे गिरना असंभव है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध अहिंसक होने की चेष्टा करते हैं; वे अन्यथा हो ही नहीं सकते। ऐसा नहीं है कि वे प्रेमपूर्ण होने की चेष्टा करते हैं, वे अन्यथा नहीं हो सकते। उन्हें प्रेमपूर्ण होना ही है। प्रेम उनका चुनाव नहीं है, प्रयत्न नहीं है, अभ्यासगत गुण नहीं है, अब तो प्रेम उनका नियम है; वे ऊपर ही उठते हैं। घृणा गुरुत्वाकर्षण के नियमाधीन है और प्रेम ऊर्ध्वाकर्षण के, प्रसाद के। लेकिन इस आकस्मिक रूपांतरण का यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें कुछ नहीं करना है, सिर्फ रूपांतरण का इंतजार करना है। तब वह कभी घटित नहीं होगा। यही पहेली है। जब मैं कहता हूं—या कोई दूसरा कहता है—कि ज्ञान अचानक ही घटता है तो हम सोचते हैं कि तब तो कुछ भी नहीं किया जा सकता, हमें सिर्फ प्रतीक्षा करनी है; जब आएगा तो आएगा। हम कर क्या सकते हैं? और अगर वह क्रमिक है तो कुछ किया जा सकता है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि ज्ञान क्रमिक नहीं है और फिर भी तुम कुछ
कर सकते हो। और तुम्हें कुछ अवश्य करना है, हालांकि उस करने से ज्ञान नहीं आएगा। लेकिन वह करना तुम्हें ज्ञान की घटना के निकट जरूर ला देगा। वह तुम्हें ज्ञान की घटना के प्रति अभिमुख कर, खोल देगा।
तो ज्ञान को तुम्हारे प्रयत्नों का विषय नहीं बनाया जा सकता; वह तुम्हारे प्रयत्नों का परिणाम नहीं है। तुम्हारे प्रयत्नों से तुम सिर्फ ऊर्ध्वाकर्षण के परम नियम के प्रति उपलब्ध हो

जाते हो। प्रयत्न के द्वारा तुम्हारा उपलब्ध होना सधता है, ज्ञान नहीं। तुम उपलब्ध रहोगे, तुम प्रतिरोध नहीं करोगे; तुम महानियम के काम में सहयोगी बन जाओगे। और जब तुम प्रतिरोध नहीं, सहयोग करते हो तो महानियम काम करने लगता है। तुम्हारे प्रयत्न तुम्हें समर्पित होने में सहयोगी होंगे, तुम्हें अधिक ग्रहणशील बनाएंगे।
यह ऐसा ही है जैसे कि तुम अपने कमरे में द्वार—दरवाजे बंद करके बैठे हो। घर के बाहर धूप है, लेकिन तुम अंधेरे में हो। तुम धूप को भीतर लाने के लिए कुछ नहीं कर सकते, लेकिन अगर तुम द्वार—दरवाजे खोल दो तो तुम्हारा कमरा धूप के लिए उपलब्ध हो जाएगा। तुम धूप को भीतर नहीं ला सकते, लेकिन तुम उसको रोक जरूर सकते हो। तुम अगर द्वार खोल दोगे तो धूप कैमरे में आ जाएगी, प्रकाश अंदर आ जाएगा। दरअसल तुम प्रकाश को अंदर नहीं ला रहे हो, तुम सिर्फ अवरोध हटा रहे हो। प्रकाश अपने आप ही आ जाता है।
इस बात को ठीक से समझ लो। तुम बुद्धत्व को पाने के लिए कुछ नहीं कर सकते, लेकिन तुम बहुत कुछ कर रहे हो जिससे उसका आना रुक सकता है। तुम अनेक अवरोध निर्मित कर रहे हो। इसलिए तुम बस परोक्ष रूप से कुछ कर सकते हो; तुम अवरोध को हटा सकते हो; द्वार को खोल सकते हो। और जैसे ही द्वार खुलेगा, सूर्य की किरणें भीतर आ जाएंगी, प्रकाश तुम्हें स्पर्श करेगा और रूपांतरित कर देगा। इस अर्थ में सभी प्रयत्न अवरोध हटाने का काम करते हैं; वे ज्ञान को उपलब्ध नहीं कराते। सब प्रयत्न परोक्ष हैं।
यह औषधि जैसा है। औषधि तुम्हें स्वास्थ्य नहीं दे सकती, केवल तुम्हारे रोगों को मिटा सकती है। और जब रोग नहीं रहे तो स्वास्थ्य घटित होता है, तुम स्वास्थ्य के लिए उपलब्ध हो जाते हो। लेकिन रोगों के रहते स्वास्थ्य नहीं हो सकता है। यही कारण है कि चिकित्सा विज्ञान, चाहे पूर्वी हो चाहे पश्चिमी, अब तक स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं कर सका है। वह एक—एक रोग की सही परिभाषा कर सकता है। उसने हजारों रोगों की खोज की है और उनकी परिभाषा की है; लेकिन वह यह नहीं बता सकता कि स्वास्थ्य क्या है। ज्यादा से ज्यादा चिकित्सा विज्ञान यही कह सकता है कि जब रोग नहीं होते हैं तब तुम स्वस्थ होते हो। लेकिन स्वास्थ्य क्या है?
स्वास्थ्य कुछ ऐसी बात है जो मन से परे है। यह कुछ ऐसा है जो होता तो है, उसे तुम अनुभव भी कर सकते हो; लेकिन तुम उसकी परिभाषा नहीं कर सकते। तुमने स्वास्थ्य जाना है, लेकिन क्या तुम परिभाषा कर सकते हो कि वह क्या है? जैसे ही तुम उसकी परिभाषा करने की चेष्टा करोगे, तुम्हें रोग को बीच

102

में लाना पड़ेगा, तुम्हें रोग के संबंध में कुछ बताना पड़ेगा, कि रोग की अनुपस्थिति स्वास्थ्य है।
लेकिन यह तो बडे मजे की बात है कि स्वास्थ्य की परिभाषा के लिए तुम्हें रोग को बीच में लाने की जरूरत पड़ती है। और रोग के निश्चित गुण हैं।
स्वास्थ्य के भी अपने गुण हैं, लेकिन वे उतने निश्चित नहीं हैं, क्योंकि वे असीम हैं। तुम उन्हें अनुभव कर सकते हो; जब तुम स्वस्थ होते हो तो जानते भी हो कि मैं स्वस्थ हूं। लेकिन स्वास्थ्य क्या है? रोगों का इलाज हो सकता है, उन्हें मिटाया जा सकता है। और जब अवरोध हट जाते हैं, स्वास्थ्य का प्रकाश भीतर आ जाता है।
ज्ञान—की घटना भी ऐसी ही है। ज्ञान आध्यात्मिक स्वास्थ्य है। मन आध्यात्मिक रोग है और ध्यान एक औषधि है।
बुद्ध ने कहा है: मैं वैद्य हूं, चिकित्सक हूं, मैं शिक्षक नहीं है, मैं तुम्हें कोई सिद्धांत सिखाने नहीं आया हूं। मैं कुछ औषधि जानता हूं जो तुम्हारे रोगों का इलाज कर सकती है। औषधि लो, रोगों को मिटाओ; और तुम्हें स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाएगा। स्वास्थ्य के संबंध में पूछो मत। बुद्ध कहते हैं. मैं दार्शनिक नहीं हूं; मैं सैद्धांतिक नहीं हूं। मेरी रुचि इसमें नहीं है कि ईश्वर क्या है; कैवल्य, मोक्ष और निर्वाण क्या है। मुझे जरा भी रुचि नहीं है। मैं तो सिर्फ इसमें उत्सुक हूं कि रोग क्या है और उसका उपचार क्या है। मैं वैद्य हूं।
बुद्ध की दृष्टि बिलकुल वैज्ञानिक है। उन्होंने मनुष्य की समस्या का, उसकी बीमारी का ठीक निदान किया। उनकी दृष्टि सर्वथा सम्यक है।
अवरोधों को मिटाओ। अवरोध क्या हैं? विचार बुनियादी अवरोध हैं। जब तुम विचार करते हो तो विचारों का एक अवरोध निर्मित हो जाता है। तब सत्य और तुम्हारे बीच विचारों की एक दीवार खड़ी हो जाती है। और विचारों की दीवार पत्थर की दीवार से भी ज्यादा ठोस और सख्त होती है। और फिर विचारों की अनेक पर्तें होती हैं और उनके भीतर प्रवेश करके सत्य को देखना मुश्किल है। तुम सोच—विचार करते रहते हो कि यथार्थ क्या है, तुम कल्पना करते रहते हो कि सत्य क्या है। और सत्य यहां और अभी मौजूद है और तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। अगर तुम उसके प्रति उन्यूख हो जाओ तो सत्य तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा। तुम सत्य के संबंध में विचार करते हो, लेकिन अगर तुम सत्य को जानते नहीं हो तो उसके संबंध में विचार कैसे कर सकते हो? तुम जिस चीज को नहीं जानते हो उस पर विचार नहीं कर सकते। तुम उस पर ही विचार कर सकते हो जिसे पहले से जानते हो। विचार पुनरुक्ति है। विचार जुगाली करना है। विचार किसी नयी और अज्ञात चीज को नहीं सोच सकता है। सोच—विचार के जरिए तुम अज्ञात को नहीं स्पर्श कर सकते, सिर्फ ज्ञात को ही सोचते रहते हो। और ज्ञात को सोचना व्यर्थ है, क्योंकि वह तो जाना ही हुआ है। तुम उसे बार—बार सोच सकते हो; तुम उसका मजा भी ले सकते हो, लेकिन उससे कुछ नए का आविर्भाव नहीं होता। सोच—विचार बंद करो। सोच—विचार को विसर्जित करो, और अवरोध टूट जाएगा। तब तुम्हारे द्वार खुले हैं और प्रकाश प्रवेश कर सकता है। और जब प्रकाश प्रवेश करता है तो पुराना विदा हो जाता है। और फिर तुम जो हो वह सर्वथा नया है। वह पहले कभी नहीं था; तुमने उसे पहले कभी नहीं जाना था। अथवा तुम यह भी कह सकते हो कि यह सनातन है; यह सदा था, लेकिन मैं नहीं जानता था।
तुम दोनों वक्तव्यों का उपयोग कर सकते हो। तुम उसे सनातन कह सकते हो, ब्रह्म कह सकते हो, जो सदा से है; और तुम कह सकते हो कि मैं उसे निरंतर चूक रहा था। और तुम यह भी कह सकते हो कि सत्य परम नूतन है, नया है, अभी ही घटित हुआ है, पहले कभी नहीं था। यह वक्तव्य भी सही है, क्योंकि तुम्हारे लिए यह नया ही है।
अगर तुम सत्य के संबंध में कुछ कहना चाहते हो तो उलटबांसी का, विरोधाभासी भाषा का उपयोग करना होगा। उपनिषद कहते हैं: यह नया है और पुराना है। यह सनातन और परम नवीन है। यह दूर है और निकट है। लेकिन तब भाषा विरोधाभासी हो जाती है।

103

और तुम मुझसे पूछते हो: 'अगर प्रामाणिक अनुभव कभी क्रमिक नहीं, सिर्फ आकास्मिक होता है, अचानक होता है, तो यह क्रमिक विकास ओर दृष्टि की सुस्पष्टता क्या है?
यह स्पष्टता मन की है। यह स्पष्टता रोग का क्षीण होना है। यह स्पष्टता अवरोधों का गिरना है। अगर एक अवरोध गिरता है तो तुम उतने ही कम बोझिल होते हो। अगर दूसरा अवरोध गिरता है तो तुम और भी हलके हो जाते हो, तुम्हारी आंखें और भी स्पष्ट देखने लगती हैं। लेकिन यह स्पष्टता ज्ञान की, बुद्धत्व की स्पष्टता नहीं है। यह स्पष्टता स्वास्थ्य की स्पष्टता नहीं है, सिर्फ रोगों के घटने का लक्षण है। जब सारे अवरोध विदा हो जाते हैं तो उनके साथ तुम्हारा मन भी विदा हो जाता है। तब तुम यह नहीं कह सकते कि अब मेरा मन स्वच्छ है, तब तुम सिर्फ यह कहते हो कि अब मन नहीं रहा।
और जब मन नहीं रहता है तब जो दृष्टि की स्पष्टता आती है वह ज्ञान की स्पष्टता है। वही स्पष्टता बुद्धत्व की स्पष्टता है। और वह बिलकुल ही भिन्न चीज है। तब दूसरा ही आयाम खुलता है। लेकिन उसके पहले तुम्हें मन की स्पष्टता से गुजरना होगा। यह सदा स्मरण रहे कि तुम्हारा मन चाहे जितना भी स्पष्ट हो जाए वह अवरोध ही बना रहता है। तुम्हारा मन चाहे जितना भी पारदर्शी हो जाए, चाहे वह पारदर्शी काच ही क्यों न हो जाए लेकिन वह अवरोध ही है। और तुम्हें उसे पूरी तरह मिटाना ही होगा।
कभी—कभी ऐसा होता है कि जब कोई ध्यान करता है तो वह ज्यादा स्पष्ट, ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा शांत हो जाता है। तब वह जोर से ध्यान को पकड़ लेता है और सोचता है कि सब कुछ उपलब्ध हो गया। इसीलिए महान सदगुरु सदा ही इस बात को जोर देकर कहते रहे हैं कि एक दिन आता है जब तुम्हें ध्यान को भी छोड़ देना होता है।
मैं तुम्हें एक कहानी कहता हूं —एक झेन कहानी। बोकोजू ध्यान में लगा था। वह प्राणपण से ध्यान करता था, ध्यान में गहरे उतर रहा था। उसका गुरु रोज—रोज आता था, हंस देता था और फिर लौट जाता था। बोकोजू को इससे बहुत परेशानी हुई कि गुरु कुछ भी नहीं बोलता है। वह बस आता था, उसे देखता था, हंस देता था और चला जाता था। और बोकोजू को ध्यान के अच्छे अनुभव हो रहे थे; उसका ध्यान गहरा रहा था। और वह चाहता था कि कोई उसकी प्रशंसा करे। उसे प्रतीक्षा थी कि गुरु उसकी पीठ थपथपाएगा और कहेगा: बहुत अच्छा बोकोजू तुम बहुत अच्छा कर रहे हो। लेकिन गुरु तो सिर्फ हंस देता था।
और उसकी यह हंसी बोकोजू के लिए अपमानजनक लगती थी; क्योंकि उसका मतलब
था कि बोकोजू के ध्यान में गति नहीं हो रही थी। और बोकोजू ध्यान में सच में गति कर रहा था। लेकिन जैसे—जैसे उसकी ध्यान में गति होती जाती थी, गुरु की हंसी भी बढ़ती जाती थी। और बोकोजू के लिए वह हंसी उतनी ही ज्यादा अपमानजनक होती जाती थी। अब तो बात बर्दाश्त के बाहर होने लगी।
एक दिन गुरु आया। और बोकोजू मन में पूर्णत: शांत अनुभव कर रहा था। मन में कोई शोरगुल नहीं था, कोई विचार नहीं था। मन पूरी तरह पारदर्शी था, कोई भी अवरोध नहीं मालूम पड़ता था। बोकोजू एक सूक्ष्म और गहरे सुख से भरा था; प्रसन्नता से लबालब था। म् वह परम सुख में था। और तब उसने सोचा कि मेरे गुरु अब नहीं हंसेंगे, अब वह क्षण आ गया है जब गुरु कहेंगे: बोकोजू अब तुम शान को उपलब्ध हो गए।
उस रोज गुरु अपने हाथ में एक ईंट लिए आया। वह बैठ गया और जिस चट्टान पर बैठकर बोकोजू ध्यान करता था उसी पर वह ईंट को लड़ने लगा। बोकोजू इतना यह शांत था, लेकिन ईंट के घिसे जाने से आवाज होने लगी और वह परेशान हो उठा। आखिर उससे न रहा गया, उसने आख खोली और गुरु से पूछा. आप यह क्या कर रहे हैं? गुरु ने कहा: मैं इस ईंट को दर्पण बनाने की चेष्टा कर रहा हूं और मुझे आशा है कि सतत लड़ते रहने से किसी न किसी दिन यह ईंट दर्पण बन जाएगी। बोकोजू ने कहा. आप मूढ़ता भरा काम कर रहे हैं। यह ईंट कभी दर्पण नहीं बन सकेगी। चाहे आप जितनी घिसाई करें, यह कभी दर्पण नहीं बनेगी। गुरु ने हंसकर कहा: और तुम क्या कर रहे हो? यह मन कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता, चाहे तुम उसे कितना ही घिसते रहो। तुम उसे घिस—घिसकर चिकना कर रहे हो और तुम्हें इतना अच्छा लग रहा है कि जब मैं हंसता हूं तो तुम्हें चिढ़ लगती है।

104

और अचानक, जैसे ही गुरु ने ईंट को दूर फेंका, बोकोजू बोध को उपलब्ध हो गया। जैसे ही गुरु ने ईंट फेंकी, अचानक बोकोजू को अनुभव हुआ कि गुरु सही हैं; और इस बोध के साथ ही उसका मन खो गया। फिर उस दिन के बाद से न मन रहा और न ध्यान। बोकोजू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
तब गुरु ने बोकोजू से कहा: अब तुम कहीं भी जा सकते हो। जाओ और दूसरों
को भी सिखाओ। पहले उन्हें ध्यान सिखाओ और फिर ध्यान को छोड़ना सिखाओ। पहले उन्हें सिखाओ कि कैसे मन को शुद्ध किया जाए; क्योंकि शुद्ध मन ही समझ सकता है कि शुद्ध मन भी बाधा है। केवल गहन ध्यान को उपलब्ध हुआ चित्त ही समझ सकता है कि अब ध्यान को भी छोड़ देना है।
तुम अभी ही यह नहीं समझ सकते हो। कृष्णमूर्ति निरंतर समझाए जाते हैं
कि किसी ध्यान की कोई जरूरत नहीं है; और वे सही हैं, लेकिन वे गलत लोगों से बात कर रहे हैं। वे सही हैं; ध्यान की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वे उन लोगों के लिए गलत हैं, जो उनको सुनते हैं। जो यह भी नहीं जानते कि ध्यान क्या है, वे यह कैसे समझ सकते हैं कि ध्यान की कोई जरूरत नहीं है! यह बात तो उनके लिए हानिकर सिद्ध होगी, क्योंकि वे इस बात को पकडकर बैठ जाएंगे। उन्हें लगेगा कि यह बात तो बहुत अच्छी है। ध्यान की क्या जरूरत है? हम तो पहले से ही ज्ञानी हैं।
कृष्णमूर्ति को सुनकर बहुतो को ऐसा लगता है कि ध्यान की कोई जरूरत नहीं है और जो लोग ध्यान करते हैं वे मूढ़ हैं। ऐसे लोग इस बात के कारण अपना पूरा जीवन गंवा दे सकते हैं। और यह बात सही है। एक जगह आती है जब ध्यान भी बाधा बन जाता है; एक क्षण आता है जब ध्यान को भी छोड़ देना पड़ता है। लेकिन उस जगह और उस क्षण के आने तक तो धीरज रखो। जो तुम्हारे पास नहीं है उसे तुम कैसे छोड़ सकते हो? कृष्णमूर्ति कहते हैं कि ध्यान जरूरी नहीं, कोई ध्यान मत करो। लेकिन तुमने तो कभी ध्यान नहीं किया, फिर तुम कैसे कह सकते हो कि ध्यान नहीं करना है?
धनी आदमी ही धन छोड़ सकता है, गरीब नहीं। छोड़ने के लिए पहले कुछ छोड़ने
को भी तो होना चाहिए। अगर तुम ध्यान करते हो तो ही किसी दिन तुम ध्यान छोड़ भी सकते हो।
और ध्यान का त्याग अंतिम और परम त्याग है। धन छोड़ा जा सकता है, यह आसान है। परिवार छोड़ा जा सकता है। वह कठिन नहीं है। सारा संसार छोड़ा जा सकता है। क्योंकि वह बाहर ही बाहर है। ध्यान अंतिम बात है—अंतरस्थ संपदा। जब तुम ध्यान का त्याग करते हो तो तुमने स्वयं को त्याग दिया। तब कोई स्व नहीं रह जाता, ध्यान करने वाला स्व भी नहीं। तब महाध्यानी भी नहीं रहता है; वह प्रतिमा भी खंडित हो गई। तुम शून्य में' गिर पडे। और इस शून्य में ही गैप है, अंतराल है। पुराना विदा हो गया और नए का आगमन हुआ है।
तुम ध्यान से ज्ञान के लिए तैयार होते हो। ध्यान में जो भी अनुभव हो, उसे ज्ञान मत समझो। ये तो रोगों के कम होने की, रोगों के बिखरने की खबरें हैं, झलकियां हैं। तुम्हें अच्छा लगता है। रोग घट रहे हैं, इसलिए तुम सापेक्षत: स्वस्थ अनुभव करते हो। सच्चा स्वास्थ्य अभी नहीं आया है, लेकिन तुम पहले से ज्यादा स्वस्थ हो, और पहले से ज्यादा स्वस्थ होना अच्छा है।

दूसरा प्रश्न:
आपने कहा है कि जीवन ध्रुवीय विपरीतताओं में घटित होता है; जैसे प्रेम और घृणा,
आकर्षण और विकर्षण पुण्य और पाय, इत्यादि। लेकिन इन ध्रुवीय विपरीतताओं का तब क्या होता है जब कोई व्यक्ति अपने साक्षी चैतन्य में हो जाता है?

यह पूछो मत। घटना की प्रतीक्षा करो, और फिर देखो कि क्या होता है। तुम पूछ सकते हो और कुछ उत्तर भी दिया जा सकता है, लेकिन वह उत्तर तुम्हारे लिए प्रामाणिक उत्तर नहीं बन सकता। और आगे—आगे मत कूदो। मत पूछो कि मरने पर क्या होता है। क्या होता है, इस बाबत जो भी कहा जाएगा वह व्यर्थ होगा, क्योंकि तुम अभी जिंदा हो। मरने पर क्या होता है, यह जानने के लिए तुम्हें मृत्यु से गुजरना होगा। जब तक तुम मरोगे नहीं, तुम नहीं जान सकते। जो भी

105

कहा जाएगा, उस पर तुम श्रद्धापूर्वक भरोसा कर लोगे; लेकिन वह व्यर्थ है। इसकी जगह यह पूछो कि कैसे मरा जाए, ताकि मैं जान सकूं कि मरने पर क्या होता है। कोई दूसरा तुम्हारे लिए नहीं मर सकता है। और किसी दूसरे का अनुभव भी तुम्हारा अनुभव नहीं बन सकता है। तुम्हें ही मरना होगा। किसी दूसरे का मरने का अनुभव तुम्हारा अनुभव नहीं बन सकता है, तुम्हारा अपना अनुभव ही जरूरी है।
वही बात यहां भी लागू होती है। जब ध्रुवीयता मिट जाती है तो क्या घटता है? एक ढंग से कहा जाए तो कुछ नहीं घटता है। घटना मात्र विलीन हो जाती है; क्योंकि सब घटना ध्रुवीय है। जब प्रेम और घृणा दोनों मिट जाते हैं—और वे मिटते हैं—तब क्या घटता है?
जब तुम प्रेम करते हो तो साथ ही घृणा भी करते हो, और तुम उसी व्यक्ति
को घृणा करते हो जिसे प्रेम करते हो। प्रेम ऊपर होता है और घृणा नीचे छिपी रहती है। और जब घृणा ऊपर आती है तो प्रेम नीचे छिपा रहता है। जीसस कहते हैं, अपने दुश्मन को प्रेम करो; और मैं कहता हूं कि तुम अन्यथा नहीं कर सकते। तुम अपने दुश्मन को प्रेम करते ही हो। तुम उससे इतनी घृणा करते हो कि वह घृणा प्रेम के बिना असंभव है। प्रेम सिक्के का दूसरा पहलू है। और वह सीमा रेखा कहां है जहां प्रेम समाप्त होता है और घृणा शुरू होती है? दोनों साथ—साथ हैं, मिले—जुले हैं। तुम कब किसी को प्रेम करते हो और कब घृणा करते हो? क्या तुम दोनों के बीच विभाजन—रेखा खींच सकते हो? तुम एक ही व्यक्ति को प्रेम और घृणा दोनों करते हो। किसी भी क्षण प्रेम घृणा बन सकता है। और घृणा प्रेम बन सकती है।
यह मन की ध्रुवीयता है, विपरीतता है; मन ऐसे ही काम करता है। इससे परेशान होने की जरूरत नहीं है। अगर तुम जानते हो तो तुम कभी परेशान न होगे। अगर तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम जानते हो कि वहीं घृणा भी होगी। अगर कोई तुम्हें प्रेम करता है तो तुम उससे प्रेम और घृणा दोनों पाने के लिए तैयार रहोगे। लेकिन बुद्ध जैसी चेतना को क्या घटता है जब प्रेम और घृणा दोनों विदा हो जाते हैं? क्या घटित होता है?
इस घटना को शब्द देना कठिन है; लेकिन बुद्ध के सान्निध्य में जो अनुभव होता है वह घृणा—रहित प्रेम का अनुभव है। यह बुद्ध का अनुभव नहीं है; बुद्ध के आस—पास औरों को ऐसा अनुभव होता है। स्वयं बुद्ध अब प्रेम नहीं अनुभव कर सकते; क्योंकि वे घृणा भी नहीं अनुभव करते हैं। वे खुद प्रेम नहीं अनुभव करते हैं, लेकिन उनके चारों ओर लोग प्रगाढ़ प्रेम बहता हुआ अनुभव करते हैं। हम इसे घृणा—रहित प्रेम कह सकते हैं, लेकिन तब उसकी पूरी गुणवत्ता भिन्न है।
हमारे प्रेम में घृणा अनिवार्यत: मौजूद रहती है। यह घृणा प्रेम को रंग देती है, उसकी गुणवत्ता बदल देती है। घृणा प्रेम को एक उत्तेजना देती है, ताप और त्वरा देती है, सघनता और एकाग्रता देती है। लेकिन बुद्ध का प्रेम एक शांत उपस्थिति है; उसमें ताप और त्वरा नहीं है। बुद्ध का प्रेम तुम्हें जला नहीं सकता है, वह तुम्हें सिर्फ थोड़ी ऊष्मा दे सकता है। वह आग नहीं है, वह आभा भर है। बुद्ध के प्रेम में लपट नहीं है; वह सुबह की आभा जैसा है, जब रात विदा हो चुकी है और सूर्य का उदय नहीं हुआ है। यह एक बीच का क्षण है, जिसमें अग्निरहित, ज्वालारहित प्रकाश होता है। उसे हमने प्रेम की भांति अनुभव किया है, शुद्धतम प्रेम की भांति, क्योंकि उसमें घृणा नहीं होती है।
इस भांति के प्रेम को महसूस करने के लिए भी तुम्हें गहन रूप से ध्यानपूर्ण चित्त की जरूरत है। तुम्हें ऐसे चित्त की जरूरत है जो ध्यान में उतर सके; अन्यथा ऐसी नाजुक और विरल घटना का अनुभव होना कठिन है। उसके लिए गहन संवेदनशीलता चाहिए। तुम केवल स्थूल प्रेम को अनुभव कर सकते हो, और वह स्थूलता घृणा से आती है। अगर कोई व्यक्ति तुम्हें घृणा—रहित प्रेम देता है तो उसके प्रेम को अनुभव करना तुम्हारे लिए कठिन होगा। उसके लिए तुम्हें विकास करने की जरूरत है, ताकि तुम ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा निर्मल, ज्यादा कोमल हो सको। तुम्हें एक बहुत ही संवेदनशील वाद्ययंत्र की भांति होना होगा; तो ही उस प्रेम की हवा कभी तुम्हारे पास पहुंच सकती है। और वह हवा अब इतनी अहिंसक है कि तुम पर आघात नहीं करेगी; वह केवल एक कोमल

106

स्पर्श की भांति होगी। अगर तुम बहुत—बहुत बोधपूर्ण हो तो ही उसे महसूस करोगे; अन्यथा चूक जाओगे।
लेकिन यह हमारा भाव है जो हमें बुद्ध के चारों ओर अनुभव में आता है।
यह बुद्ध का भाव नहीं है। बुद्ध को प्रेम या घृणा, कुछ भी नहीं होता है। सच तो यह है कि ध्रुवीय विरोध मिट जाते हैं और मात्र उपस्थिति रह जाती है। बुद्ध एक उपस्थिति हैं, भाव नहीं। तुम भाव हो, उपस्थिति नहीं। कभी तुम घृणा हो; यह एक भाव हुआ। और कभी तुम प्रेम हो; यह दूसरा
भाव हुआ। कभी तुम क्रोध हो; यह तीसरा भाव है। और कभी तुम लोभ हो, चौथा भाव। तुम भाव ही भाव हो। तुम कभी शुद्ध उपस्थिति नहीं हो। और तुम्हारी चेतना तुम्हारे भावों के अनुसार रंग लेती रहती है। प्रत्येक भाव मालिक बन जाता है। वह चेतना को प्रभावित करता है, उसे पंगु बनाता है, बदलता है, रंग देता है, विकृत करता है।
बुद्ध निर्भाव हैं। घृणा गई, प्रेम गया, क्रोध गया, लोभ गया; और उसके साथ ही साथ अलोभ भी गया, अक्रोध भी गया। सभी द्वंद्व समाप्त हो गए। बुद्ध एक उपस्थिति मात्र हैं। अगर तुम संवेदनशील हो तो तुम उनसे प्रेम और करुणा को प्रवाहित होता हुआ महसूस करोगे। और अगर तुम संवेदनशील नहीं हो, स्थूल हो, अगर तुम्हारा ध्यान गहरे नहीं गया है तो तुम्हें उनका जरा भी अनुभव नहीं होगा। बुद्ध तुम्हारे बीच से गुजरेंगे और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि कोई दुर्लभ घटना तुम्हारे पास से गुजर रही है जो सदियों—सदियों में कभी घटित होती है। तुम्हें इसका बोध भी नहीं होगा।
और अगर तुम बहुत ही स्थूल हो, ध्यान—विरोधी हो तो तुम बुद्ध की उपस्थिति से नाराज भी हो सकते हो। क्योंकि उनकी उपस्थिति बहुत सूक्ष्म है; तुम उससे हिंसक भी हो जा सकते हो। उनकी उपस्थिति तुम्हें अशांत कर सकती है, उद्विग्न कर सकती है। अगर तुम बहुत स्थूल हो, मंदबुद्धि हो, ध्यान — विरोधी हो तो तुम बुद्ध के दुश्मन भी बन जा सकते हो, हालांकि उन्होंने कुछ भी नहीं किया है। और अगर तुम खुले हो, संवेदनशील हो तो तुम उनके प्रेमी बन जाओगे, हालांकि उन्होंने कुछ भी नहीं किया है।
स्मरण रहे, जब तुम शत्रु बनते हो तो तुम ही हो जो शत्रु बनते हो और जब तुम मित्र बनते हो तो भी तुम ही हो जो मित्र बनते हो, बुद्ध तो महज एक उपस्थिति हैं, वे केवल उपलब्ध हैं। तुम अगर शत्रु बनते हो तो उनकी तरफ पीठ कर लेते हो। तब तुम कुछ ऐसी चीज चूक रहे हो जिसके लिए हो सकता है फिर जन्मों प्रतीक्षा करनी पड़े।
जिस दिन बुद्ध विदा हो रहे थे, आनंद रो रहा था। उस सुबह बुद्ध ने कहा:
यह मेरा अंतिम दिन है; अब यह देह समाप्त होने जा रही है। आनंद उनके निकट था; वह पहला व्यक्ति था जिससे बुद्ध ने कहा. यह मेरा अंतिम दिन है। जाओ और सबको खबर कर दो कि उन्हें कुछ पूछना हो तो आकर पूछ सकते हैं।
आनंद तो रोने लगा। बुद्ध ने कहा: क्यों रोते हो? इस शरीर के लिए? मैंने सदा यही सिखाया कि यह शरीर झूठ है; वह मरा हुआ ही है। या तुम मेरी मृत्यु के लिए रोते हो? रोओ मत; मैं तो चालीस साल पूर्व ही मर चुका; मैं तो उसी दिन मर गया था जिस दिन ज्ञान को उपलब्ध हुआ। तो अब केवल यह शरीर खो रहा है। मत रोओ।
आनंद ने एक बहुत सुंदर बात कही। उसने कहा मैं आपके शरीर या आपके लिए नहीं रो रहा हूं मैं तो अपने लिए रो रहा हूं। मैं अभी अज्ञानी ही हूं और न जाने कितने जन्म लेने होंगे जब फिर कोई बुद्ध उपलब्ध होंगे। और हो सकता है, मैं आपको पहचान न पाऊं।
जब तक तुम बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं होते, तुम्हारी मन की स्पष्टता किसी भी क्षण धूमिल हो जा सकती है। बुद्ध होने के पहले तुम बार—बार पिछड़ सकते हो। तब तक कुछ भी निश्चित नहीं है। इसलिए आनंद ने बुद्ध से कहा कि मैं अपने लिए रो रहा हूं; क्योंकि अभी तक मुझे मंजिल नहीं मिली और आप महानिर्वाण में प्रवेश कर रहे हैं।
अनेक लोगों ने, यहां तक कि बुद्ध के पिता ने भी नहीं पहचाना कि उनका बेटा अब उनका बेटा नहीं रहा, कि उस शरीर में कुछ घटित हुआ है जो बहुत दुर्लभ है; अंधेरा मिट गया गईं है और शाश्वत ज्योति जल रही है। लेकिन वे

107

गिरा दो! तब तो सम्राट और भी परेशान हो गया। अब उसके पास भेंट देने को और कुछ नहीं था। लेकिन जब बुद्ध ने कहा कि गिरा दो तो उसने फूल भी गिरा दिया। तभी सम्राट को अचानक अपने मैं का स्मरण आया। उसने सोचा कि वस्तुएं भेंट करने से क्या; मैं स्वयं को ही क्यों न भेंट कर दूं! इस बोध के साथ खाली हाथों वह बुद्ध के सम्मुख झुक गया। लेकिन बुद्ध ने फिर कहा गिरा दो! अब तो गिराने को भी कुछ न था; और बुद्ध ने कहा, गिरा दो! महाकाश्यप, सारिपुत्त, आनंद तथा अन्य शिष्य, जो वहां मौजूद थे, हंसने लगे। और सम्राट को बोध हुआ कि यह कहना भी कि मैं अपने को भेंट करता हूं अहंकारपूर्ण है। यह कहना भी कि मैं अब अपने को समर्पित करता हूं समर्पण नहीं है। तब वह स्वयं ही गिर पड़ा। बुद्ध हंसे और बोले तुम्हारी समझ अच्छी है।
जब तक तुम समर्पण के खयाल को भी नहीं गिरा देते, जब तक तुम खाली हाथों
के खयाल को भी नहीं विदा हो जाने देते, तब तक समर्पण नहीं घटित होता है। चीजों का छोड़ना तो आसानी से समझा जा सकता है; लेकिन खाली हाथों के लिए भी बुद्ध ने कहा कि इसे भी गिरा दो, इस खालीपन को भी मत पकड़ो।
जब तुम ध्यान करते हो तो तुम विचारों को छोड़ देते हो। जब विचार समाप्त
हो जाते हैं तो भी एक विचार बना रहता है और वह विचार है कि मैं अब निर्विचार हो गया। एक सूक्ष्म भाव, एक सूक्ष्म विचार बना रहता है कि अब मैंने पा लिया और अब विचार न रहे, मन खाली हो गया, अब मैं शून्य हो गया। लेकिन यह शून्य इस विचार से भरा है। और इससे फर्क नहीं पड़ता कि मन में अनेक विचार हैं या एक ही विचार है। उस विचार को भी गिरा दो।
और तुम बुद्ध—स्वभाव की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो?
तुम प्रतीक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तब नहीं रहोगे। बुद्धत्व से तुम्हारा मिलन कभी नहीं होगा। जब बुद्धत्व घटित होगा तो तुम नहीं होगे। इसलिए तुम्हारी आशाएं व्यर्थ हैं। तुम समय गंवा रहे हो; तब तुम नहीं रहोगे।
कबीर ने कहा है: जब मैं था तब हरि नहीं; अब हरि हैं मैं नाहिं। अब तुम
हो तो कबीर कहा है? जब मैं तुम्हारी कामना करता था, जब मैं तुम्हें खोजता था, तब मैं तो था, लेकिन तुम
नहीं थे। अब तुम तो हो, लेकिन बताओ कि कबीर कहां गया? वह साधक कहां है
जो तुम्हारे लिए भूख—प्यास से भरा था, जो तुम्हें खोजता था, जो तुम्हारे लिए रोता—धोता था? वह कबीर कहां गया?
जब बुद्धत्व घटित होगा तब तुम नहीं होगे। इसलिए प्रतीक्षा मत करो, चाह मत करो। क्योंकि यह चाह कि मैं कब बुद्धत्व को उपलब्ध होऊंगा, कब मुझे बुद्ध स्वभाव प्राप्त होगा, कब मैं ज्ञान को उपलब्ध होऊंगा, यह चाह ही बाधा बन जाएगी। यह अंतिम बाधा है। पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति में मुक्ति की कामना अंतिम बाधा है। ज्ञानोपलब्ध होने के लिए ज्ञानोपलब्धि की कामना को भी छोड़ना होगा, गिरा देना होगा।
एक बडा झेन सदगुरु लिंची कहा करता था: अगर तुम्हें कहीं बुद्ध मिल जाएं तो उन्हें तुरंत मार डालना। अगर तुम्हारे ध्यान में कहीं बुद्ध मिल जाएं तो उन्हें तुरंत खतम कर देना। और लिंची कोई मजाक नहीं कर रहा था; वह बड़े महत्व की बात कह रहा था। उसका मतलब था कि अगर कहीं तुम्हारे भीतर बुद्ध होने की, ज्ञानी होने की चाह दिखाई पड़ जाए तो उस चाह को भी मिटा डालो। तो ही बुद्धत्व घटित होता है। परिपूर्ण अचाह, परिपूर्ण निर्वासना जरूरी है। और जब मैं परिपूर्ण अचाह कहता हूं तो उसका मतलब है कि अचाह की चाह को भी छोड़ना होगा। जब तुम्हें कोई चाह न रही, जब कोई विचार नहीं हैं, जब तुम्हें यह बोध भी न रहा कि विचार नहीं है, चाह नहीं है, तब बुद्धत्व घटित होता है।

अंतिम प्रश्न:
तीव्र रेचन के न होने के संभव कारण क्या हैं? मुझे सदा, आज के शक्तिपात ध्यान में भी, बहुत मंद रेचन ही होता है। क्या इसका यही अर्थ है कि मैं खुला नहीं हूं, पर्याप्त खुला नहीं हूं? या इसके दूसरे कारण भी संभव हैं? इस बात के बाबत मेरी चिंता ध्यान के समय, और ध्यान के बाद भी, मेरे लिए बाधा बन जाती है।

109

तंत्र-सूत्र, भाग 3
इकतालीसवां प्रवचन

तंत्र: शुभाशुभ के पार, द्वैत के पार

सूत्र:
64—छींक के आरंभ में, भय में, चिंता में, खाई—खड्ढ
के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में,
भूख के आरंभ में और भूख के अंत में, सत्त बोध रखो।
65—अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे
लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या
अशुद्ध की तरह मत जानो।

जीवन एक विरोधाभास है। निकट आने के लिए तुम्हें दूर की यात्रा पर जाना पड़ता है, और जो पाया ही हुआ है उसे फिर पाना पड़ता है।
कुछ भी नष्ट नहीं होता है। मनुष्य सहज ही बना रहता है; मनुष्य शुद्ध
ही बना रहता है, मनुष्य निर्दोष ही बना रहता है। इतनी सी बात है कि वह भूल गया है। न शुद्धता नष्ट होती है, न निर्दोषता नष्ट होती है। बस, प्रगाढ़ विस्मरण हो गया है। जो पाना है वह तुम हो ही; असल में कुछ नया नहीं खोजना है, केवल उसे उघाड़ना है, आविष्कृत करना है, जो है ही।
इससे ही आध्यात्मिक साधना दोनों है, कठिन भी है और सरल भी है। मैं दोनों कहता हूं। अगर तुम समझ सको तो यह बहुत सरल है, आसान है। लेकिन यह बहुत कठिन भी है, क्योंकि तुम्हें उसे समझना है जिसे तुम बिलकुल भूल गए हो और जो इतना स्पष्ट है कि तुम कभी उसके प्रति होशपूर्ण नहीं होते। यह ठीक तुम्हारी श्वास की भांति है—जो निरंतर, अबाध चलती रहती है। लेकिन चूकि श्वास निरंतर और अबाध चलती रहती है, इसलिए तुम्हें उसे जानना जरूरी नहीं है, उसके लिए तुम्हारा बोध जरूरी नहीं है, बोध उसकी बुनियादी जरूरत नहीं है। तुम चाहो तो उसके प्रति बोधपूर्ण हो सकते हो; यह चुनाव की बात है। संसार और निर्वाण दो चीजें नहीं हैं; वे केवल दो दृष्टियां हैं, दो विकल्प हैं। तुम दोनों में से किसी को भी चुन सकते हो। एक दृष्टि के कारण तुम संसार में हो। और अगर दृष्टि बदल जाए तो वही संसार निर्वाण हो जाता है, वही संसार परमानंद बन जाता है। तुम वही रहते हो, संसार वही रहता है; सिर्फ दृष्टि और परिप्रेक्ष्य के बदलने की, चुनाव के बदलने की बात है। यह बिलकुल आसान है।
एक बार वह परम आनंद उपलब्ध हो जाए तो तुम हंसोगे। एक बार उसे जान लिया जाए तो तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैं इसे चूक कैसे रहा था! वह तो सदा से था, सिर्फ देखे जाने की प्रतीक्षा में था; वह तुम्हारा ही था। बुद्ध हंसते हैं। कोई भी, जिसे भी बुद्धत्व उपलब्ध होता है, हंसता है; क्योंकि पूरी बात हास्यास्पद लगती है। तुम उसे खोज रहे थे जो कभी खोया नहीं था। सारा प्रयत्न बेतुका मालूम पड़ता है। लेकिन यह अनुभव तभी होता है जब तुम पहुंच जाते हो। इसलिए जो ज्ञानोपलब्ध हो जाते है वे कहते है कि यह बहुत सरल है। लेकिन जिन्होंने अभी नहीं पाया है वे कहते हैं कि यह बात सबसे कठिन ही नहीं, असंभव है।
स्मरण रहे, जिन विधियों की हम यहां चर्चा करेंगे वे उनके द्वारा कही
गई हैं जिन्होंने पा लिया है। वे बहुत सरल मालूम पड़ेगी, और वे सरल ही हैं। लेकिन हमारे मन को इतनी सरल चीजें नहीं जंचती हैं। यदि विधियां इतनी सरल हैं और मंजिल इतनी निकट है कि तुम वहीं हो, यदि सच ही विधियां इतनी सरल हैं और घर पास ही है, तो तुम अपनी ही नजरों में हास्यास्पद मालूम पड़ोगे। तो प्रश्न उठेगा कि फिर तुम उसे चूक क्यों रहे हो? अपने अहंकार की मूढ़ता को समझने की बजाय तुम सोचोगे कि इतनी सरल विधियां किसी काम की नहीं हैं।
यही विडंबना है, धोखाधड़ी है। तुम्हारा मन कहेगा कि इतने सरल उपाय किसी काम के नहीं हो सकते; ये इतने सरल हैं कि इनसे कुछ नहीं हो सकता। परम सत्ता को और पूर्ण तत्व को प्राप्त करने के लिए इतने सरल उपाय कैसे किसी काम के हो सकते हैं? कैसे कारगर हो सकते हैं? तुम्हारा अहंकार कहेगा कि ये किसी काम के नहीं हैं।

112

संन्यास लिया है; और यह 'मैं' पुराना ही है। तुम सोच सकते हो कि मैंने वस्त्र बदल लिए हैं, मैंने नाम बदल लिया है; लेकिन पुराना 'मैं' जारी रहता है।
अब यह संन्यास भी पुराने में जुड़ गया। यह नया नहीं है; अभी भी यह अतीत
से जुड़ा है। और अगर यह जुड़ा है, अगर तुमने संन्यास पुराने 'मैं' से लिया है, अगर तुमने वस्त्र और नाम भर बदल लिए हैं, तो तुम चूक गए। तुम्हें मरना होगा; अब तुम पुराने ही नहीं बने रह सकते। तुम्हें समझना होगा कि पुराना मर गया और यह एक नया व्यक्ति है जिसे तुम कभी नहीं जानते थे, और संन्यास पुराने का विकास नहीं, उससे सर्वथा अलग बात है। तब उपाय कारगर हुआ, तब अलार्म घड़ी ने काम किया और विधि उपयोगी हुई। तब तुम समझे।
ये सारी विधियां ऐसी हैं कि तुम उन्हें उपयोगी बना सकते हो और तुम उन्हें चूक भी सकते हो। यह तुम पर निर्भर है। लेकिन यह बात ठीक से स्मरण रहे कि विधियां विधियां हैं। अगर तुम उनके सार को समझ लो तो तुम विधि के बिना भी सजग हो सकते हो। उदाहरण के लिए, यह भी संभव है कि अलार्म घड़ी की कोई जरूरत न पड़े।
इसमें जरा गहरे उतरी। तुम्हें अलार्म घड़ी की जरूरत क्यों पड़ती है? अगर तुम तीन बजे सुबह उठना चाहते हो तो तुम्हें अलार्म की क्यों जरूरत होती है?
क्योंकि गहरे में तुम जानते हो कि तुम अपने को धोखा दे सकते हो। गहरे में तुम जानते हो कि यदि तुम सचमुच तीन बजे उठना चाहते हो तो तीन बजे उठ जाओगे और तुम्हें अलार्म की जरूरत न पड़ेगी। लेकिन घड़ी से तुम्हारी जिम्मेवारी टल जाती है, अब तुम जिम्मेवार न रहे। अब यदि कुछ गड़बड़ होगी तो उसकी जिम्मेवारी घड़ी पर होगी। अब तुम आराम से सो सकते हो। अब घडी रखी है, तुम बिना किसी फिक्र के सो सकते हो।
लेकिन अगर तुम सचमुच तीन बजे सुबह जागना चाहते हो तो तुम उठ आओगे, किसी घड़ी की जरूरत नहीं है। जागने की त्वरा ही जागने की घटना बन जाएगी। तीन बजे उठ आने का यह संकल्प इतना तीव्र हो सकता है कि शायद तुम सो भी न पाओ। जागने की जरूरत न पड़े; तुम सारी रात जागते ही रहो। लेकिन ठीक से सोने के लिए घड़ी जरूरी है, तब तुम निश्चित सो सकते हो। लेकिन तुम अपने को धोखा भी दे सकते हो। जब अलार्म बजे तो तुम धोखा दे सकते हो, तुम उसको भी सपना बना ले सकते हो।
ये विधियां इसीलिए उपयोगी हैं क्योंकि तुम्हारी त्वरा कम है। अगर तुम त्वरा में हो, तो किसी विधि की जरूरत नहीं है। तब तुम स्वयं ही सजग हो सकते हो। लेकिन तुम्हारी त्वरा इतनी नहीं है। विधि के साथ भी तुम सपना देखने लग सकते हो। और इसकी अनेक संभावनाएं हैं। पहली संभावना तो यह है कि तुम विश्वास नहीं करोगे कि ऐसी विधियां सहयोगी हो सकती हैं। यह पहली बात है। और तब संपर्क ही नहीं होगा। दूसरी बात कि तुम सोच सकते हो कि बहुत लंबी प्रक्रिया की जरूरत है और यह सधते—सधते ही आएगी। लेकिन कुछ चीजें हैं जो अचानक ही घटित होती हैं; वे कभी क्रमिक ढंग से नहीं होतीं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को उसके एक पडोसी के बेटे के जन्म
— दिन पर आशीर्वाद देने के लिए कहा गया। उसने कहा: 'बेटे, मुझे आशा है कि तुम एक सौ बीस वर्ष और तीन महीने जीओगे।' सब लोग इस 'और तीन महीने' पर आश्चर्यचकित थे। बेटे ने पूछा: 'लेकिन क्यों? एक सौ बीस वर्ष तो ठीक है; यह और तीन महीने क्यों?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: 'मैं नहीं चाहूंगा कि तुम अचानक मर जाओ; बस एक सौ बीस वर्ष जीओ और मर जाओ। इतने अचानक मर जाओ, यह मैं नहीं चाहूंगा; इसलिए और तीन महीने हैं।’
लेकिन 'और तीन महीने' के बावजूद तुम अचानक ही मरोगे। तुम जब भी मरोगे, अचानक ही मरोगे। प्रत्येक मृत्यु आकस्मिक मृत्यु होती है; कोई मृत्यु क्रमिक नहीं होती। क्योंकि तुम या तो जीवित हो या मृत हो, कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है। इस क्षण तुम जीवित हो और अगले क्षण मृत हो सकते हो। इसमें समय का क्रम नहीं है, मृत्यु आकस्मिक है।
समाधि भी आकस्मिक है। आध्यात्मिक विस्फोट भी आकस्मिक है। यह मृत्यु जैसा ही है। यह जीवन से ज्यादा मृत्यु जैसा है, यह आकस्मिक है। यह किसी भी क्षण घटित हो सकता है। और यदि तुम तैयार हो तो ये विधियां सहयोगी हो सकती

115

हैं। वे बुद्धत्व को क्रमश: नहीं लाएंगी; लेकिन वे तुम्हें क्रमश: उस आकस्मिक घटना के लिए तैयार कर देंगी।
इस भेद को स्मरण रखो: वे तुम्हें तैयार कर रही हैं ताकि समाधि की वह आकस्मिक घटना घट सके। ये विधियां समाधि की विधियां नहीं हैं। ये तुम्हें तैयार करने की विधियां हैं, और तब समाधि घटती है।
तो यह तुम पर निर्भर है कि तुम कैसे इन विधियों का उपयोग करते हो। यह
मत सोचो कि एक लंबी प्रक्रिया जरूरी है। ऐसा सोचना भी मन की एक चालबाजी भर हो सकता है। मन कहता है कि एक लंबी प्रक्रिया की जरूरत है; इससे तुम्हें स्थगित करने का उपाय मिल जाता है। तुम कह सकते हो कि कल करूंगा या परसों करूंगा; और इस भांति तुम सदा के लिए स्थगित करते रह सकते हो। स्थगित करने वाला चित्त सतत स्थगित किए जाता है। प्रश्न यह नहीं है कि तुम इसे कल करने वाले हो या नहीं; प्रश्न यह है कि तुम आज नहीं करने वाले हो। बात इतनी—सी है। और कल फिर आज होकर आएगा, और तब यही मन फिर कहेगा: 'बहुत अच्छा, मैं इसे कल करूंगा।’
और स्मरण रहे, तुम कभी कोई काम वर्षों के लिए स्थगित नहीं करते, तुम बस
एक दिन के लिए ही स्थगित करते हो। क्योंकि अगर तुम वर्षों के लिए स्थगित करोगे तो अपने को धोखा नहीं दे पाओगे। तुम कहते हो कि एक दिन की ही बात है, आज नहीं कल कर लूंगा। और यह अंतराल इतना छोटा है कि तुम्हें कभी अहसास नहीं होता कि तुम सदा के लिए स्थगित कर रहे हो।
कल कभी नहीं आता है। जब आता है, सदा आज आता है। आज सदा है। और जो मन कल
की भाषा में सोचता है वह सदा ही कल की भाषा में सोचेगा। और कल कभी नहीं आता है, कभी नहीं आया है, कभी नहीं आएगा तुम्हारे हाथ में जो है वह बस वर्तमान क्षण है। इसलिए स्थगित मत करो।
अब हम विधियों में प्रवेश करेंगे।

पहली विधि:
छीकं के आरंभ में, भय में, चिंता में, खाई— खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में, सतत बोध रखो।

यह विधि देखने में बहुत सरल मालूम पड़ती है: छींक के आरंभ में, भय में, चिंता में, भूख के पहले या भूख के अंत में सतत बोध रखो।
बहुत सी बातें समझने जैसी हैं। छींकने जैसे बहुत सरल कृत्य भी उपाय
की तरह काम में लाए जा सकते हैं। क्योंकि वे कितने ही सरल दिखे, दरअसल वे बहुत जटिल हैं। और जो आंतरिक व्यवस्था है वह बहुत नाजुक चीज है।
जब भी तुम्हें लगे कि छींक आ रही है, सजग हो जाओ। संभव है कि सजग होने
पर छींक न आए, चली जाए। कारण यह है कि छींक गैर—स्वैच्छिक चीज है—अचेतन, गैर—स्वैच्छिक। तुम स्वेच्छा से, चाह कर नहीं छींक सकते हो, तुम जबरदस्ती नहीं छींक सकते हो। चाह कर कैसे छींक सकते हो?
मनुष्य कितना असहाय है! तुम चाह कर एक छींक भी नहीं ला सकते। तुम कितनी ही चेष्टा करो, तुम छींक नहीं ला सकते। एक मामूली सी छींक भी तुम चाह कर नहीं पैदा कर सकते हो। यह गैर—स्वैच्छिक है, स्वेच्छा की जरूरत नहीं है। यह तुम्हारे मन के कारण नहीं घटित होती है; यह तुम्हारे समग्र संस्थान से, समग्र शरीर से घटित होती है।
और दूसरी बात कि जब तुम छींक के आने के पूर्व सजग हो जाते हो—तुम उसे
ला नहीं सकते, लेकिन वह जब अपने आप ही आ रही हो और तुम सजग हो जाते हो—तो संभव है कि वह न आए। क्योंकि तुम उसकी प्रक्रिया में कुछ नयी चीज जोड रहे हो, सजगता जोड़ रहे हो। वह खो जा सकती है। लेकिन जब छींक खो जाती है और तुम सावचेत रहते हो, तो एक तीसरी बात घटित होती है।
पहली तो बात कि छींक गैर—स्वैच्छिक है। तुम उसमें एक नयी चीज जोड़ते हो, सजगता जोड़ते हो। और जब सजगता आती है तो संभव है कि छींक न आए। अगर तुम सचमुच सजग होगे, तो वह नहीं आएगी। शायद छींक एकदम खो जाए। तब तीसरी बात घटित होती है। जो ऊर्जा छींक की राह से निकलने वाली थी वह अब कहां जाएगी?

116

वह ऊर्जा तुम्हारी सजगता में जुड़ जाती है। अचानक बिजली सी कौंधती है,
और तुम ज्यादा सावचेत हो जाते हो। जो ऊर्जा छींक बनकर बाहर निकलने जा रही थी वही ऊर्जा तुम्हारी सजगता में जुड़ जाती है और तुम अचानक अधिक सावचेत हो जाते हो। बिजली की उस कौंध में बुद्धत्व भी संभव है।
यही कारण है कि मैं कहता हूं कि ये चीजें इतनी सरल हैं कि व्यर्थ मालूम पड़ती हैं, उनके द्वारा होने वाली उपलब्धियों की चर्चा असंभव सी लगती है। सिर्फ छींक के जरिए कोई बुद्ध कैसे हो सकता है? लेकिन छींक सिर्फ छींक ही नहीं है, तुम भी उसमें पूरी तरह सम्मिलित हो। तुम जो भी करते हो या तुम्हें जो भी होता है, उसमें तुम भी पूरी तरह मौजूद होते हो। इसे फिर से देखो, इसका निरीक्षण करो। जब भी छींक आती है तो उसमें तुम समग्रत: होते हो — पूरे शरीर से होते हो, पूरे मन से होते हो। छींक सिर्फ तुम्हारी नाक में ही घटित नहीं होती, तुम्हारे शरीर का रोआं—रोआं उसमें सम्मिलित रहता है। एक सूक्ष्म कंपन, एक सूक्ष्म सिहरन पूरे शरीर पर फैल जाती है, और उसके साथ पूरा शरीर एकाग्र हो जाता है। और जब छींक आ जाती है तो सारा शरीर राहत अनुभव करता है, विश्राम अनुभव करता है।
लेकिन छींक के साथ सजगता रखनी कठिन है। और यदि तुम उसमें सजगता जोड़ दोगे तो छींक नहीं आएगी। और यदि छींक आए तो जानना कि तुम सजग नहीं थे।
तो तुम्हें सजग रहना पड़ेगा।
छींक के आरंभ में...........।
क्योंकि छींक यदि आ ही गयी तो कुछ नहीं किया जा सकता है। तीर यदि चल चुका तो तुम अब उसे बदल नहीं सकते; यंत्र चालू हो गया। ऊर्जा अब बाहर जाने के रास्ते पर है; उसे अब रोका नहीं जा सकता। क्या तुम छींक को बीच में रोक सकते हो? तुम कैसे छींक को बीच में रोक सकते हो! जब तक तुम तैयार होगे, वह आ चुकी होगी। तुम उसे बीच में नहीं रोक सकते हो।
आरंभ में ही सजग हो जाओ। जिस क्षण तुम्हें उत्तेजना अनुभव हो, लगे कि छींक आने वाली है, तभी सावचेत हो जाओ। अपनी आंखें बंद कर लो और ध्यानस्थ हो जाओ। अपनी समग्र चेतना को उस बिंदु पर ले जाओ जहां छींक की उत्तेजना अनुभव होती हो। ठीक आरंभ में ही सजग हो जाओ। छींक गायब हो जाएगी, और उसकी ऊर्जा अधिक सजगता में रूपांतरित हो जाएगी। और चूकि छींक में तुम्हारा सारा शरीर सम्मिलित है, पूरा संयंत्र सम्मिलित है—और तुम उसी क्षण में सजग हो—वहा मन नहीं होगा, विचार नहीं होगा, ध्यान नहीं होगा। छींक में विचार ठहर जाते हैं।
यही कारण है कि अनेक लोग सुंघनी सूंघना पसंद करते हैं। यह उन्हें निर्भार कर देता है; उनका मन ज्यादा विश्रामपूर्ण हो जाता है। क्यों? क्योंकि क्षणभर के लिए विचार ठहर जाते हैं। सुंघनी उन्हें निर्विचार की एक झलक देती है। सुंघनी सूंघने से जो छींक आती है उसमें वे मन नहीं रह जाते, शरीर ही हो जाते हैं। एक क्षण के लिए सिर विदा हो जाता है; और उन्हें बहुत अच्छा लगता है।
अगर तुम सुंघनी के आदी हो जाओ तो उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। यह धूम्रपान से भी ज्यादा गहरा व्यसन है; धूम्रपान उसके सामने कुछ नहीं है। सुंघनी ज्यादा गहरे जाती है, क्योंकि धूम्रपान सचेतन है और छींक अचेतन है। इसलिए धूम्रपान छोड़ने से भी ज्यादा कठिन सुंघनी छोड़ना है। और धूम्रपान को बदलकर कोई दूसरा व्यसन ग्रहण किया जा सकता है, धूम्रपान के पर्याय हैं, लेकिन सुंघनी के पर्याय नहीं हैं। कारण यह है कि छींक सच में शरीर की एक अनूठी घटना है। इसके जैसी दूसरी चीज केवल काम—कृत्य है, संभोग है।
शरीर—शास्त्र की भाषा में जो लोग सोचते हैं वे कहते हैं कि संभोग कामेंद्रिय द्वारा छींकने जैसा है। और दोनों में समानता भी है; यद्यपि यह शत—प्रतिशत सही नहीं है। क्योंकि संभोग में और भी बहुत सी बातें सम्मिलित हैं। लेकिन आरंभ में, सिर्फ आरंभ में समानता भी है। तुम कुछ चीज नाक से बाहर निकालते हो और राहत अनुभव करते हो, वैसे ही कुछ चीज कामेंद्रिय से बाहर निकालते हो और राहत अनुभव करते हो। और दोनों ही कृत्य गैर—स्वैच्छिक हैं।

117

तुम संभोग में संकल्प के द्वारा नहीं उतर सकते; अगर कोशिश करोगे तो निष्फलता हाथ आएगी। विशेषकर पुरुष तो जरूर निष्फल होंगे, क्योंकि उनकी कमेंद्रिय को कुछ करना पड़ता है। पुरुष की कामेंद्रिय सक्रिय है; लेकिन तुम चाहकर उसे सक्रिय नहीं कर सकते। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही असंभव होता जाएगा। यह अपने आप होता है, इसे तुम सचेत होकर नहीं कर सकते। यही कारण है कि पश्चिम में संभोग एक समस्या बन गया है। पिछली आधी सदी
के दौरान पश्चिम में काम—संबंधी ज्ञान बहुत विकसित हुआ है और हर एक आदमी इसके संबंध में इतना सचेत है कि संभोग अधिकाधिक असंभव हो रहा है।
अगर तुम सचेत हो तो संभोग असंभव हो जाएगा। अगर कोई व्यक्ति संभोग के, समय सचेत रहे, तो वह जितना सचेत होगा उतना ही उसके लिए संभोग कठिन होगा। उसकी जननेंद्रिय में उत्तेजना ही नहीं होगी। उसे प्रयास से नहीं किया जा सकता, और तुम जितना अधिक प्रयास करोगे उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।
इस विधि का उपयोग काम—संभोग में भी किया जा सकता है। आरंभ में ही, जब तुम्हें उत्तेजना आती मालूम हो, लेकिन वह अभी आयी न हो, सिर्फ उसकी तरंगें मालूम पड़ती हों, तभी तुम सावचेत हो जाओ। तरंगें खो जाएंगी, और वही ऊर्जा सजगता में गति कर जाएगी। तंत्र ने इसका उपयोग किया है। तंत्र ने इसका कई ढंग से उपयोग किया है। एक सुंदर नग्न स्त्री ध्यान के विषय के रूप में बैठी होगी, और साधक उस नग्न स्त्री के सामने बैठकर उसके शरीर, उसके रूप और अंग—सौष्ठव पर ध्यान करेगा, और अपने काम—केंद्र पर उत्तेजना उठने की प्रतीक्षा करेगा। और ज्यों ही जरा सी उत्तेजना महसूस होगी, वह अपनी आंखें बंद कर लेगा और उस स्त्री को भूल जाएगा। वह साधक आंखें बंद कर लेगा और उत्तेजना के प्रति सजग हो जाएगा। तब काम—ऊर्जा सजगता में रूपांतरित हो जाती है। उसे नग्न स्त्री पर तभी तक ध्यान करना है जहां उत्तेजना महसूस होती है। उसके बाद उसे आंख बंद कर अपनी उत्तेजना पर आ जाना है और वहीं सजग रहना है—ठीक वैसे ही जैसे छींक में किया जाता है। और यह कौंध सी क्यों घटित होती है? कारण यह है कि मन वहां नहीं है। बुनियादी बात यह है कि अगर मन नहीं है और तुम सजग हो, तो सतोरी घटित होगी; तुम्हें समाधि की पहली झलक मिलेगी।
विचार ही बाधा है। किसी भी ढंग से यदि विचार विलीन हो जाए तो बात बन जाती है। लेकिन सजगता के लिए विचार का विदा होना जरूरी है। विचार नींद में भी विलीन हो जाता है। तुम्हारे मूर्च्छित होने पर भी विचार ठहर जाता है। और जब तुम कोई नशीले द्रव्य लेते हो तो भी विचार बंद हो जाता है। इन हालतों में भी विचार विदा हो जाता है, लेकिन तब विचार के पीछे जो तत्व छिपा है उसके प्रति सजगता नहीं रहती है।
इसलिए मैं ध्यान को निर्विचार चेतना कहता हूं। तुम निर्विचार और मूर्च्छित एक साथ हो सकते हो; लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है। और तुम विचार के साथ सचेतन भी रह सकते हो; वह तुम हो ही। इन दो चीजों को, चेतना और निर्विचार को इकट्ठा करो; जब वे मिलते हैं तो ध्यान घटित होता है, ध्यान का जन्म होता है।
और तुम इसका प्रयोग छोटी—छोटी चीजों के साथ भी कर सकते हो। सच तो यह
है कि कोई भी चीज छोटी नहीं है। एक छींक भी अस्तित्वगत घटना है। अस्तित्व में कुछ भी बड़ा नहीं है, कुछ भी छोटा नहीं है। एक नन्हा सा परमाणु भी पूरे जगत को मिटा सकता है। और वैसे ही एक छींक भी, जो कि अत्यंत छोटी चीज है, तुम्हें रूपांतरित कर सकती है।
तो चीजों को छोटी—बड़ी की तरह मत देखो। न कुछ बड़ा है और न कुछ छोटा। अगर तुम्हारे पास गहरे देखने की दृष्टि है तो बहुत छोटी चीजें भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। परमाणुओं के बीच में ब्रह्मांड छिपे हैं। और तुम नहीं कह सकते कि परमाणु और ब्रह्मांड में कौन बड़ा है और कौन छोटा। एक अकेला परमाणु अपने आप में ब्रह्मांड है, और बड़े से बड़ा ब्रह्मांड भी परमाणु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। तो बड़े और छोटे की भाषा में मत सोचो। प्रयोग करो। और यह मत कहो कि छींक से क्या होगा, मैं तो जीवनभर छींकता रहा हूं और कुछ नहीं हुआ! इस विधि का प्रयोग करो।
'छींक के आरंभ में, भय में.....।’

118

में या कभी—कभी रात में भी, वह जोरों से कहता था, 'बोकोजू।’ यह उसका अपना नाम था। और फिर वह खुद कहता, 'ही महोदय, मैं मौजूद हूं।’ और वहा कोई दूसरा नहीं होता था। उसके शिष्य उससे पूछते थे, 'क्यों आप अपना ही नाम पुकारते हैं, और फिर खुद कहते हैं, हां महोदय, मैं मौजूद हूं?'
बोकोजू ने कहा, 'जब भी मैं विचार में डूबने लगता हूं तो मुझे सजग होना पड़ता है, और इसीलिए मैं अपना नाम पुकारता हूं बोकोजू! जिस क्षण मैं बोकोजू कहता हूं और कहता हूं कि ही महाशय, मैं मौजूद हूं उसी क्षण विचारणा, चिंता विलीन हो जाती है।’
फिर अपने अंतिम दिनों में, आखिरी दो—तीन वर्षों में उसने कभी अपना नाम नहीं पुकारा, और न ही यह कहा कि हां, मैं मौजूद हूं। तो शिष्यों ने पूछा, 'गुरुदेव, अब आप ऐसा क्यों नहीं करते?' बोकोजू ने कहा, 'अब बोकोजू सदा मौजूद रहता है। वह सदा ही मौजूद है, इसलिए पुकारने की जरूरत न रही। पहले मैं खो जाया करता था, और चिंता मुझे दबा लेती थी, आच्छादित कर लेती थी, बोकोजू वहां नहीं होता था, तो मुझे उसे स्मरण करना पड़ता था। और स्मरण करते ही चिंता विदा हो जाती थी।’
इसे प्रयोग करो। बहुत सुंदर विधि है यह। अपने नाम का ही प्रयोग करो।
जब भी तुम्हें गहन चिंता पकड़े तो अपना ही नाम पुकारो—बोकोजू या और कुछ, लेकिन अपना ही नाम हो—और फिर खुद ही कहो कि ही महोदय, मैं मौजूद हूं। और तब देखो कि क्या फर्क पड़ता है। चिंता नहीं रहेगी; कम से कम एक क्षण के लिए तुम्हें बादलों के पार की एक झलक मिलेगी। और फिर वह झलक गहराई जा सकती है। तुम एक बार जान गए कि सजग होने पर चिंता नहीं रहती, विलीन हो जाती है, तो तुम स्वयं के संबंध में, अपनी आंतरिक व्यवस्था के संबंध में गहन बोध को उपलब्ध हो गए।
'खाई—खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में, सतत बोध रखो।'
किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। भूख लगी है, सजग हो जाओ। जब तुम्हें भूख महसूस होती है तो तुम क्या करते हो? तुम्हें क्या होता है? जब तुम्हें भूख लगती है तो तुम उसे कभी ऐसे नहीं देखते कि तुम्हें कुछ हो रहा है; तुम भूख ही हो जाते हो। तब तुम समझते हो कि मैं भूखा हूं। ऐसा ही लगता है कि मैं भूख हूं। लेकिन तुम भूख नहीं हो, तुम्हें सिर्फ भूख का बोध होता है। भूख कहीं परिधि पर घटित हो रही है, और तुम तो केंद्र हो, तुम्हें भूख का बोध हो रहा है। भूख विषय है; तुम जानने वाले हो, तुम साक्षी हो। तुम भूख नहीं हो; भूख तुम्हें घटित हो रही है। तुम तब भी थे जब भूख नहीं थी, और तुम तब भी रहोगे जब भूख नहीं रहेगी। भूख एक घटना है; वह तुम्हें घटित होती है।
उसके प्रति सजग होओ। तब तुम भूख से तादात्म्य नहीं करोगे। अगर तुम्हें भूख लगे तो उसके प्रति सजग होओ कि भूख है। उसे देखो, उसका साक्षात्कार करो, उसे जानो। क्या होगा? तुम जितने ही सजग होंगे, भूख उतनी ही तुमसे दूर मालूम पड़ेगी। और जितनी सजगता कम होगी, भूख उतनी ही निकट मालूम पड़ेगी। और अगर तुम बिलकुल सजग नहीं हो, तो तुम ठीक केंद्र पर अनुभव करोगे कि मैं भूख ही हूं। सजग होते ही भूख तुम से दूर हट जाती है, भूख वहा है और तुम यहां हो। भूख विषय है, तुम साक्षी हो।
इसी विधि के लिए उपवास का उपयोग किया जाता रहा है। वैसे अपने आप में उपवास किसी काम का नहीं है। अगर तुम भूख के साथ इस विधि का प्रयोग नहीं कर रहे हो तो उपवास निपट मूढ़ता है, व्यर्थ है।
महावीर ने इसी विधि के लिए उपवास का प्रयोग किया था, और अब जैन सिर्फ उपवास कर रहे हैं, इस विधि के बिना ही उपवास कर रहे हैं। तब यह मूढ़ता है; तब तुम सिर्फ भूखे मर रहे हो और इससे कोई लाभ नहीं मिल सकता है। तुम महीनों भूखे रह सकते हो, और भूख से जुड़े रह सकते हो कि मैं भूख हूं। तब वह व्यर्थ है, हानिकर है।
उपवास करने की कोई जरूरत नहीं है; तुम रोज ही भूख को अनुभव कर सकते हो। लेकिन कठिनाइयां हैं। और इसीलिए उपवास उपयोगी हो सकता है। सामान्यत: हम भूख लगने के पहले ही अपने को भोजन से भर लेते हैं। आधुनिक संसार में भूख लगने की जरूरत ही नहीं पड़ती; तुम्हारे भोजन के समय निश्चित हैं, और तुम भोजन कर लेते हो। तुम कभी नहीं पूछते कि शरीर को भूख लगी है या नहीं;

120

निश्चित समय पर तुम भोजन कर लेते हो। भूख तुम्हें नहीं लगती है। तुम कहोगे कि नहीं, जब एक बजता है तो मुझे भूख लगती है। वह झूठी भूख हो सकती है; वह इसलिए लगती है क्योंकि यह तुम्हारे खाने का समय है, एक बजा है।
किसी दिन एक खेल करो; अपनी पत्नी या अपने पति को कहो कि घड़ी का समय बदल दे, अभी बारह बजा है और घड़ी एक का समय बता दे। तुम्हें तुरंत भूख मालूम होगी। या घड़ी एक घंटा पीछे कर दी जाए; दो बजा है और घड़ी एक का समय बताए। तब तुम्हें उसी समय भूख लगेगी। तुम्हें घड़ी देखकर भूख लगती है। यह कृत्रिम भूख है, झूठी भूख है; यह भूख सच्ची नहीं है।
इसीलिए उपवास सहयोगी हो सकता है। अगर तुम उपवास करोगे तो दो—तीन दिन
तक झूठी भूख मालूम होगी। तीसरे या चौथे दिन के बाद ही सच्ची भूख का पता चलेगा। तब वह मांग तुम्हारे शरीर की होगी, मन की नहीं। जब मन मांग करता है तो वह झूठी मांग है, शरीर की मांग ही सच्ची होती है। और जब तुम सच्ची भूख के प्रति सजग होते हो तो अपने शरीर से सर्वथा भिन्न हो जाते हो। भूख एक शारीरिक घटना है। और जब एक बार तुम जान लेते हो कि भूख मुझसे भिन्न है, मैं उसका साक्षी हूं तो तुम शरीर के पार चले गए।
लेकिन तुम किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। ये तो उदाहरण मात्र हैं।
यह विधि अनेक ढंगों से प्रयोग में लाई जा सकती है। तुम अपना अलग ढंग भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन किसी एक ही चीज पर सतत प्रयोग करते रहो। अगर तुम भूख के साथ प्रयोग कर रहे हो तो कम से कम तीन महीनों तक भूख के साथ प्रयोग करो। तो ही तुम किसी दिन शरीर से तादात्म्य तोड़ सकोगे। रोज—रोज विधि मत बदलों, क्योंकि विधि का गहरे जाना जरूरी है। तीन महीने के लिए किसी. विधि को चुन लो और उसमें लगन से लगे रहो; विधि का प्रयोग करो, और प्रयोग जारी रखो।
और सदा स्मरण रखो कि आरंभ में बोधपूर्ण होना है। बीच में बौधपूर्ण होना बहुत कठिन होगा, क्योंकि इस तादात्म्य के स्थापित होते ही कि मैं भूख हूं तुम उसे फिर बदल नहीं सकोगे। मन के तल पर तुम बदलाहट कर सकते हो, तुम कह सकते हो कि नहीं, मैं भूख नहीं हूं साक्षी हूं; लेकिन वह झूठ होगा। यह मन ही बोल रहा है; यह तुम्हारे प्राणों का अनुभव नहीं है। तो आरंभ में ही बोधपूर्ण होने की कोशिश करो। और यह भी स्मरण रहे कि तुम्हें यह कहना नहीं है कि मैं भूख नहीं हूं। यह भी मन का धोखा देने का एक ढंग है। तुम कह सकते हो ' भूख है, लेकिन मैं भूख नहीं हूं। मैं शरीर नहीं हूं; मैं ब्रह्म हूं।’ तुम्हें कुछ भी कहना नहीं है। तुम जो भी कहोगे गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो। यह दोहराना कि मैं शरीर नहीं हूं किसी काम का नहीं होगा। तुम कहते रहते हो कि मैं शरीर नहीं हूं क्योंकि तुम जानते हो कि मैं शरीर हूं। अगर तुम सच ही जानते हो कि मैं शरीर नहीं हूं तो यह कहने की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं है; यह मूढ़ता मालूम होगी।
बोधपूर्ण होओ, और तब उस बोध में यह भाव प्रगाढ़ होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। यह विचार नहीं होगा, भाव होगा। यह तुम्हारे सिर की नहीं, तुम्हारे पूरे प्राणों की अनुभूति होगी। तुम दूरी महसूस करोगे कि शरीर बहुत दूर है और मैं उससे बिलकुल भिन्न हूं और दोनों के मिश्रण की संभावना भी नहीं है। तुम दोनों को मिला नहीं सकते हो। शरीर शरीर है, पदार्थ है, और तुम चैतन्य हो। वे दोनों साथ रह सकते हैं, लेकिन एक—दूसरे में घुलमिल नहीं सकते।
उनका मिश्रण नहीं हो सकता है।

दूसरी विधि:
अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।

यह तंत्र का एक बुनियादी संदेश है। तुम्हारे लिए यह बड़ी कठिन धारणा होगी, क्योंकि यह बिलकुल ही गैर—नैतिक धारणा है। मैं इसे अनैतिक नहीं कहूंगा, क्योंकि तंत्र को नीति—अनीति से कुछ लेना—देना नहीं है। तंत्र कहता है कि शुद्धि—अशुद्धि से कोई मतलब नहीं है। इसकी देशना तुम्हें शुद्धि—अशुद्धि के ऊपर उठने में, दरअसल विभाजन के, द्वंद्व और द्वैत के पार जाने में सहयोग देने के लिए है।

121

तंत्र कहता है कि अस्तित्व अखंड है, अस्तित्व एक है। और जो द्वंद्व हैं वे सब—स्मरण रहे, सब के सब—मनुष्य के बनाए हुए हैं। द्वंद्व मात्र मनुष्य—निर्मित हैं; शुभ—अशुभ, शुद्ध—अशुद्ध, नैतिक—अनैतिक, पुण्य— पाप, ये सारी धारणाएं मनुष्य ने निर्मित की हैं। ये मनुष्य की मान्यताएं हैं, ये यथार्थ नहीं हैं। क्या अशुद्ध है और क्या शुद्ध, यह तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर है। वैसे ही क्या अनैतिक है और क्या नैतिक, यह भी तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर है।
नीत्से ने कहीं कहा है कि सब नैतिकता व्याख्या है।
तो कोई चीज इस देश में नैतिक हो सकती है और वही चीज पड़ोसी देश में अनैतिक हो सकती है। एक ही चीज मुसलमान के लिए नैतिक हो सकती है और हिंदू के लिए अनैतिक हो सकती है। एक ही चीज ईसाई के लिए नैतिक और जैन के लिए अनैतिक हो सकती है। या जो चीज पुरानी पीढ़ी के लिए नैतिक थी, नयी पीढ़ी के लिए अनैतिक हो सकती है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर करता है; यह रुझान की बात है। बुनियादी रूप से यह एक मान्यता है, झूठ है। तथ्य बस तथ्य होता है। नग्न तथ्य बस तथ्य होता है; वह न नैतिक होता है न अनैतिक, न शुद्ध न अशुद्ध। सोचो, पृथ्वी पर यदि मनुष्य न हो तो क्या शुद्ध है और क्या अशुद्ध? तब चीजें होंगी, सिर्फ होंगी। न कुछ शुद्ध होगा और न कुछ अशुद्ध होगा; न कुछ शुभ होगा और न कुछ अशुभ होगा। मनुष्य के साथ मन आता है। और मन विभाजन करता है; मन कहता है कि यह भला है और वह बुरा है।
और यह विभाजन संसार को ही नहीं बांटता है, विभाजन करने वाले को भी बांट देता है। अगर तुम बांटते हो तो उसमें तुम खुद भी बंट जाते हो। और जब तक तुम बाह्य विभाजनों को नहीं भूलते, तब तक तुम अपने आंतरिक विभाजनों का अतिक्रमण नहीं कर सकते हो। जो कुछ तुम संसार के साथ करते हो, तुम उसे अपने साथ पहले ही कर लेते हो।
सिद्ध योग के महान सदगुरु नरोपा ने कहा है: 'इंच भर का विभाजन, और स्वर्ग और नरक अलग—अलग हो जाते हैं।’ इंच भर का विभाजन! लेकिन हम बांटते हैं, नाम देते हैं, निंदा करते हैं, औचित्य सिद्ध करते हैं। अस्तित्व के शुद्ध तथ्य को देखो, और कोई नाम मत दो, कोई लेबल मत लगाओ। केवल तभी तंत्र की देशना को समझा जा सकता है। तथ्य को भला या बुरा मत कहो; तथ्य पर अपने चित्त को मत उतारो। ज्यों ही तुम तथ्य पर अपनी धारणा आरोपित करते हो, तुम झूठ का निर्माण कर लेते हो। अब यह तथ्य न रहा, सत्य न रहा; यह तुम्हारा प्रक्षेपण हो गया।
यह सूत्र कहता है: 'अन्य देशनाओ के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।’ 'अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।’
तंत्र कहता है कि जो चीज अन्य देशनाओ के लिए बहुत शुद्ध मानी जाती है, पुण्य मानी जाती है, वह हमारे लिए पाप है। क्योंकि उनकी शुद्धता की धारणा बाटती है; उनके लिए कुछ अशुद्ध है।
अगर तुम किसी को संत कहते हो तो तुमने किसी को पापी बना दिया। अब तुम्हें कहीं न कहीं किसी न किसी को निंदित करना होगा, क्योंकि संत पापी के बिना नहीं हो सकता। अब हमारे प्रयत्नों की व्यर्थता देखो। हम पापियों को मिटाने में लगे हैं, और हम एक ऐसी दुनिया की आशा करते हैं जहां पापी नहीं होंगे, सिर्फ संत होंगे। यह अर्थहीन है, क्योंकि संत पापी के बिना नहीं हो सकते, वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम सिक्के के एक पहलू को नहीं मिटा परि सकते; दोनों साथ ही रहेंगे। पापी और पुण्यात्मा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर तुम पापियों को मिटा दोगे तो पुण्यात्मा भी संसार से विदा हो जाएंगे। लेकिन घबराओ मत, उन्हें विदा होने दो। वे किसी मूल्य के नहीं सिद्ध हुए हैं।
पापी और संत एक ही व्याख्या के, जगत के प्रति एक ही दृष्टिकोण के अंग हैं। यह दृष्टिकोण कहता है कि यह शुभ है और वह अशुभ है। और तुम यह नहीं कह सकते कि यह अच्छा है अगर तुम यह न कहो कि वह बुरा है। शुभ की परिभाषा के लिए अशुभ जरूरी है। शुभ अशुभ पर निर्भर है; पुण्य पाप पर निर्भर है। तुम्हारे महात्मा असंभव हैं, वे पापियों के बिना नहीं हो सकते। उन्हें तो पापियों का अहसान मानना चाहिए; वे उनके बिना जी नहीं सकते। वे चाहे पापियों की

122

जितनी भी निंदा करें, वे और पापी एक ही घटना के अंग हैं। पापी संसार से तभी विदा होंगे जब महात्मा विदा होंगे, उसके पहले नहीं। और पुण्य की धारणा के बिना पाप नहीं टिक सकता है।
तंत्र कहता है कि तथ्य असली बात है, और व्याख्या झूठ है। व्याख्या मत करो!
'वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।’
क्यों? क्योंकि शुद्धि और अशुद्धि सत्य पर थोपी गई हमारी व्याख्याएं हैं, हमारे दृष्टिकोण हैं। इसे प्रयोग करो। यह विधि कठिन है, सरल नहीं है। कारण यह है कि हम द्वैतमूलक विचारणा से इतने ग्रस्त हैं, उसमें इतने डूबे हैं कि हमें इसका भी पता नहीं रहता कि हम किसकी निंदा कर रहे हैं और किसको उचित कह रहे हैं। अगर कोई व्यक्ति यहां धूम्रपान करने लगे तो तुम सचेतन रूप से कुछ जाने बिना ही उसे निंदित कर दोगे; तुम अपने अंतस में उसकी निंदा कर डालोगे। तुम्हारी दृष्टि में निंदा हो चाहे न हो, तुमने उस व्यक्ति पर नजर भी नहीं डाली हो, लेकिन तुमने निंदा कर दी।
यह विधि कठिन होगी, क्योंकि हमारी आदत इतनी गहन है, प्रगाढ़ है। तुम महज अपनी भाव— भंगिमा से, अपने बैठने—उठने से किसी को निंदित कर देते हो, किसी को सही बताते हो, और तुम्हें इसका होश भी नहीं रहता कि तुम क्या कर रहे हो। तुम जब किसी आदमी को देखकर मुस्कुराते हो या नहीं मुस्कुराते हो, जब तुम किसी को देखते हो या नहीं देखते हो, तुम उसकी उपेक्षा करते हो, तो तुम क्या कर रहे हो? तुम अपनी पसंद—नापसंद आरोपित कर रहे हो। जब तुम कहते हो कि कोई चीज सुंदर है तो तुम्हें किसी चीज को कुरूप कहना ही होगा। और यह बांटने वाली दृष्टि साथ ही साथ तुम्हें भी बांट रही है। तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हो जाएंगे।
अगर तुम कहते हो कि कोई व्यक्ति क्रोध में है और क्रोध बुरा है तो तुम
तब क्या करोगे जब तुम्हें क्रोध होगा? तुम कहोगे कि क्रोध बुरा है। तब समस्याएं खड़ी होंगी, क्योंकि तुम कहते हो कि यह बुरा है, मुझमें जो क्रोध है वह बुरा है। तब तुम अपने को दो व्यक्तियों में बांटने लगे, एक बुरा व्यक्ति होगा, पापी होगा, और दूसरा भला व्यक्ति होगा, महात्मा होगा। निश्चित ही, तुम अपने को भीतर का महात्मा मानोगे और भीतर के पापी की निंदा करोगे। तुम दो में विभाजित हो गए। अब निरंतर लड़ाई चलेगी, संघर्ष होगा। अब तुम व्यक्ति न रहे, अब
तुम भीड़ हो, तुम्हारे भीतर गृह—युद्ध चलेगा। अब मौन गया, शाति गई; तुम तनाव और संताप से भर जाओगे। यही तुम्हारी हालत है, लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि ऐसा क्यों है।
विभाजित व्यक्ति शात नहीं हो सकता; कैसे हो सकता है? तुम अपने शैतान
को कहां रखोगे? तुम्हें उसे मिटाना होगा। लेकिन वह तुम ही हो; तुम उसे नहीं मिटा सकते। तुम दो नहीं हो, सच्चाई एक है, यथार्थ एक है। लेकिन अपनी बांटने वाली दृष्टि के कारण तुमने बाह्य यथार्थ को बांट दिया, और उसके अनुसार भीतरी यथार्थ भी बंट गया। इसलिए हर एक आदमी स्वयं से ही लड़ रहा है। यह ऐसा ही है जैसे कि हम अपने ही दोनों हाथों को लड़ाए, बायां हाथ दाएं हाथ से लड़े, दायां हाथ बाएं हाथ से लड़े। और ऊर्जा एक ही है, मेरे दाएं और बाएं हाथों में एक ही ऊर्जा बह रही है, मैं ही दोनों हाथों में बह रहा हूं। लेकिन मैं दोनों को लड़ा सकता हूं अपने एक हाथ को दूसरे हाथ से लड़ा सकता हूं। और मैं एक संघर्ष, एक झूठा संघर्ष खड़ा कर सकता हूं। कभी—कभी मैं अपने को यह धोखा भी दे सकता हूं कि मेरा दाहिना हाथ जीत रहा है और बायां हाथ हार रहा है। लेकिन यह धोखा है, क्योंकि मैं जानता हूं कि दोनों में मैं ही हूं और किसी भी क्षण मैं अपने बाएं हाथ को ऊपर कर सकता हूं और दाएं को नीचे कर सकता हूं। मैं ही दोनों में हूं दोनों हाथ मेरे हैं।
तो तुम कितना ही सोचो कि मेरे भीतर का संत जीत गया और शैतान हार गया, स्मरण रहे कि तुम किसी भी क्षण जगहें बदल सकते हो, और तब संत नीचे होगा और शैतान ऊपर होगा। इससे ही भय पैदा होता है, असुरक्षा का भाव पैदा होता है, क्योंकि तुम जानते हो कि कुछ भी निश्चित नहीं है। तुम जानते हो कि इस समय मैं प्रेमपूर्ण हूं और अपनी घृणा को दबा दिया है; लेकिन तुम भयभीत भी हो,

123

क्योंकि किसी भी क्षण घृणा ऊपर आ सकती है और प्रेम नीचे दब सकता है। और यह किसी भी क्षण हो सकता है, क्योंकि भीतर तुम दोनों हो।
तंत्र कहता है कि खंड मत करो, अखंड रहो, और केवल तभी तुम जीत सकते हो।
अखंड कैसे हुआ जाए? निंदा मत करो; मत कहो कि यह अच्छा है और वह बुरा है। शुद्धता और अशुद्धता की सभी धारणाओं को विदा कर दो। संसार को देखो, लेकिन मत कहो कि यह क्या है। अज्ञानी रहो; बहुत बुद्धिमानी मत दिखलाओ। कुछ धारणा मत बनाओ, चुप रहो; न निंदा करो और न प्रशंसा। अगर तुम संसार के संबंध में मौन रह सके तो धीरे— धीरे यह मौन तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर जाएगा। और अगर बाहर का विभाजन समाप्त हो जाए तो भीतर का विभाजन भी समाप्त हो जाएगा, क्योंकि दोनों साथ ही हो सकते हैं।
लेकिन यह बात समाज के लिए खतरनाक है। यही कारण है कि तंत्र का दमन हुआ, उसे दबाया गया। समाज के लिए यह दृष्टि खतरनाक है कि कुछ भी अनैतिक नहीं है, कुछ भी नैतिक नहीं है; कुछ भी शुद्ध नहीं है, कुछ भी अशुद्ध नहीं है; चीजें जैसी हैं वैसी हैं।
एक सच्चा तांत्रिक यह नहीं कहेगा कि चोर बुरा है, वह इतना ही कहेगा कि
वह चोर है; बस। और उसे चोर कहने में उसके मन में कोई निंदा नहीं है। अगर कोई कहता है कि यह आदमी महान संत है तो तांत्रिक कहेगा. हा, वह संत है। लेकिन उसे संत कहने में कोई मूल्यांकन नहीं है; वह यह नहीं कहेगा कि वह अच्छा है। वह कहेगा: ठीक है, यह संत है और वह चोर है। यह कहना ऐसा ही है जैसे यह कहना कि यह गुलाब है और वह गुलाब नहीं है, यह वृक्ष बड़ा है और वह वृक्ष छोटा है, कि रात काली है और दिन उजला है। इसमें कोई तुलना नहीं है।
लेकिन यह खतरनाक है। समाज एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। समाज नहीं रह सकता, क्योंकि समाज द्वैत पर खड़ा है। इसीलिए तंत्र का दमन किया गया, उसे समाज—विरोधी समझा गया। तंत्र समाज— विरोधी नहीं है, बिलकुल नहीं है। लेकिन अद्वैत कि दृष्टि सामाजिक धारणाओं का अतिक्रमण कर जाती है। वह समाज—विरोधी नहीं है; वह समाज का अतिक्रमण है, समाज के पार उठ जाना है।
इसे प्रयोग करो। किसी मूल्यांकन के बिना, केवल स्वाभाविक तथ्यों के साथ, कि अमुक यह है और अमुक वह है, संसार में चलो। और धीरे— धीरे तुम्हें अपने भीतर एक अखंडता अनुभव होगी। तुम्हारे विपरीत स्वर, तुम्हारे विरोध, तुम्हारे अच्छे—बुरे सब इकट्ठे हो जाएंगे, वे एक में मिल जाएंगे। और तुम एक इकाई बन जाओगे। तब न कुछ शुद्ध होगा और न कुछ अशुद्ध। तुम यथार्थ को सीधे जानते हो।
'अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।’
तंत्र कहता है कि जो दूसरों के लिए बुनियादी बात है वह हमारे लिए जहर है। उदाहरण के लिए, अहिंसा पर आधारित देशनाएं हैं, जो कहती हैं कि हिंसा अशुभ है और अहिंसा शुभ है। तंत्र कहता है कि हिंसा हिंसा है और अहिंसा अहिंसा, न कुछ बुरा है, न कुछ भला। कुछ देशनाएं ब्रह्मचर्य पर आधारित हैं; वे कहती हैं कि ब्रह्मचर्य शुभ है और कामवासना पाप है। तंत्र कहता है, कामवासना कामवासना है, ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य है। एक ब्रह्मचारी है और दूसरा नहीं है। लेकिन ये तथ्य मात्र हैं, इनका मूल्यों से कुछ लेना—देना नहीं है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा कि ब्रह्मचारी अच्छा है और जो कामवासना में डूबा है वह बुरा है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा। चीजें जैसी हैं तंत्र उन्हें वैसे ही स्वीकार करता है। और क्यों? सिर्फ तुम्हारे भीतर अखंडता निर्मित करने के लिए।
यह विधि तुम्हारे भीतर एक अखंडता निर्मित करने के लिए, तुम्हारे भीतर
एक समग्र, अखंड, द्वंद्वरहित और विरोधरहित सत्ता पैदा करने के लिए है। केवल तब ही मौन संभव है। जो व्यक्ति किसी वृत्ति से भागता है वह कभी शात नहीं हो सकता है। कैसे हो सकता है? और जो अपने भीतर खंडित है, स्वयं से ही लड़ रहा है, वह जीत कैसे सकता है? यह असंभव है। तुम ही दोनों हो, फिर जीत किसकी होगी? किसी की भी जीत नहीं होगी; तुम्हारी ही हार होगी, क्योंकि लड़ने में तुम्हारी ऊर्जा नाहक नष्ट होगी।
यह विधि तुम में एक अखंडता निर्मित करेगी। मूल्यों को जाने दो; निर्णय मत लो।

जीसस ने कहीं कहा है. 'दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में भी निर्णय न लिया जाए।’ लेकिन यहूदियों के लिए इसे समझना असंभव हो गया, क्योंकि यहूदियों का सारा चिंतन नैतिकता पर निर्भर है. यह शुभ है और वह अशुभ है। जीसस इस उपदेश में—कोई निर्णय मत लो—तंत्र की भाषा बोल रहे हैं। यदि उनकी हत्या कर दी गई, उन्हें सूली पर लटकाया गया, तो उसका कारण यह उपदेश था। उनकी दृष्टि तंत्र की दृष्टि थी: 'कोई निर्णय मत लो।'
तो मत कहो कि वेश्या बुरी है। कौन जानता है? और मत कहो कि महात्मा अच्छा है। कौन जानता है? और अंततः तो दोनों एक ही खेल के अंग हैं। वे एक— दूसरे पर निर्भर हैं, परस्पर जुड़े हैं। इसलिए जीसस कहते हैं. 'कोई निर्णय मत लो।’ और यही शिक्षा इस सूत्र में है: 'दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में भी निर्णय न लिया जाए।’
अगर तुम कोई निर्णय नहीं लेते हो, कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते हो, तथ्यों को वैसे ही देखते हो जैसे वे हैं, अपने हिसाब से उनकी व्याख्या नहीं करते हो, तो तुम्हारे संबंध में भी निर्णय नहीं लिया जाएगा।
तुम पूरी तरह रूपांतरित हो गए हो। अब कोई दिव्य सत्ता तुम्हारे संबंध में निर्णय नहीं लेगी; उसकी जरूरत न रही। तुम स्वयं दिव्य हो गए; तुम स्वयं परमात्मा हो गए।
तो साक्षी बनो, न्यायाधीश नहीं।
आज इतना ही।

125

तंत्र-सूत्र, भाग 3
ब्यालीसवां प्रवचन

आचरण नहीं, बोध मुक्तिदायी है

पहला प्रश्न:
क्या यह सच नहीं है कि अनैतिक जीवन ध्यान में बाधा पहुंचाता है?

ध्यान क्या है? ध्यान तुम्हारा चरित्र नहीं है; वह तुम्हारा आचरण नहीं है। तुम जो करते हो वह ध्यान नहीं है। ध्यान तो वह है जो तुम हो। ध्यान आचरण नहीं है; ध्यान वह चेतना है जिससे तुम अपने आचरण को देखते हो, अपने कृत्य के साक्षी होते हो। कृत्य गौण है। महत्वपूर्ण यह है कि तुम उसे होशपूर्वक कर रहे हो या बेहोशी में। कृत्य चाहे नैतिक हो या अनैतिक, तुम अगर उसके प्रति सजग हो, होशपूर्ण हो, तो तुम ध्यान में हो। और अगर तुम उसके प्रति सजग नहीं हो तो तुम सोए हो, गैर— ध्यान में हो।
तुम खूब सोए—सोए भी नैतिक हो सकते हो, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। गहरी नींद में होने के लिए नैतिक होना बेहतर है, क्योंकि तब समाज तुम्हें कोई बाधा नहीं देगा; तब कोई भी तुम्हारे विरोध में नहीं होगा। तुम आराम से सो सकते हो; समाज उसमें तुम्हें सहयोग भी देगा।
तुम ध्यानी हुए बिना भी नैतिक हो सकते हो; लेकिन उस नैतिकता के ठीक पीछे अनैतिकता खड़ी रहेगी। अनैतिकता तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारे पीछे — पीछे चलेगी। और तुम्हारी यह नैतिकता सतही होगी, क्योंकि यह नैतिकता तुम पर नींद में ही बाहर से लादी जा सकती है। वह नैतिकता नकली होगी, झूठी होगी, पाखंड होगी। वह तुम्हारा कभी प्राण नहीं बनेगी। बाहर—बाहर तुम नैतिक रहोगे, लेकिन भीतर— भीतर तुम अनैतिक बने रहोगे। और तुम बाहर—बाहर जितने नैतिक होगे, भीतर— भीतर उतने ही अनैतिक होगे। अनुपात सदा समान होगा। कारण यह है कि तुम्हारी नैतिकता एक गहन दमन के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती है। नींद में तुम और कुछ नहीं कर सकते, सिर्फ दमन कर सकते हो।
और इस नैतिकता के चलते तुम झूठे हो जाओगे, पाखंडी हो जाओगे। तुम एक व्यक्ति नहीं रहोगे, बस एक मुखौटा, एक ढोंग बन जाओगे। और उसका परिणाम दुख होगा, संताप होगा। और तुम सदा एक ज्वालामुखी पर बैठे होगे, जो किसी भी समय फूट सकता है। जो कुछ भी तुमने अपने भीतर दबा रखा है, उसका विस्फोट अनिवार्य है; वह सदा फूटने को
तत्पर ही है। और यदि तुम सोए—सोए ईमानदारी से नैतिक होने की चेष्टा करोगे तो तुम सकता। पाखंड
का वही मतलब है। पाखंडी सिर्फ नैतिक होने का दिखावा करता है, नैतिक होता नहीं। और वह अनैतिक होने के परोक्ष उपाय खोज लेता है, ऊपर—ऊपर वह सदा नैतिक बना रहता है या नैतिक होने का ढोंग करता है। केवल तभी तुम पागल होने से बच सकते हो, अन्यथा पागलपन तुम्हारी नियति है।
यह जो तथाकथित नैतिकता है इसमें दो ही विकल्प होते हैं विक्षिप्तता
या पाखंड। अगर तुम ईमानदार हो तो पागल हो जाओगे। और अगर तुम बेईमान हो तो तुम पाखंडी हो जाओगे। जो लोग चतुर—चालाक हैं, वे पाखंडी हो जाते हैं। और जो सरल और निष्ठावान हैं, जो ऐसी शिक्षाओं के शिकार हो जाते हैं, वे पागल हो जाते हैं।
नींद में, मूर्च्छा में, सच्ची नैतिकता संभव नहीं है। सच्ची नैतिकता
का क्या अर्थ है? सच्ची नैतिकता ऊपर से लादी या ओढी नहीं जाती है, वह तुम्हारे प्राणों की सहज और स्वाभाविक खिलावट होती है। और सच्ची नैतिकता अनैतिकता के विरोध में नहीं होती; सच्ची नैतिकता अनैतिकता की अनुपस्थिति भर होती है। वह विरोध में नहीं होती है।
उदाहरण के लिए, तुम्हें सिखाया जा सकता है कि अपने पड़ोसी को प्रेम करो, कि सबको प्रेम करो, कि प्रेमपूर्ण बनो। यह शिक्षा तुम्हें एक तरह की नैतिकता दे सकती है, लेकिन भीतर घृणा कायम रहेगी। तुम अपने को जबरदस्ती प्रेमपूर्ण बनाने की कोशिश कर सकते हो, लेकिन जबरदस्ती लाया हुआ प्रेम सच्चा नहीं हो सकता, प्रामाणिक नहीं हो सकता। इस प्रेम से न तुम परितृप्त

126

होंगे और न वह परितृप्त होगा जिसे तुम प्रेम देते हो। झूठे प्रेम से कोई भी परितृप्त नहीं होने वाला है।
यह प्रेम झूठे पानी जैसा है; झूठे पानी से किसी की प्यास शात नहीं हो सकती। घृणा मौजूद है, और घृणा सतत प्रकट होने को आतुर है। और झूठा प्रेम इस घृणा को रोकने में असमर्थ है। बल्कि घृणा तुम्हारे झूठे प्रेम में प्रविष्ट होकर उसे भी विषाक्त कर देगी; तुम्हारा प्रेम एक तरह की घृणा बनकर रह जाएगा। यह पूरा मामला चालबाजी से भरा है।
सच्ची नैतिकता तो उसी आदमी को घटित होती है जो अपने भीतर की गहराई में उतरता है। और तुम जितने गहरे उतरते हो उतने ही प्रेमपूर्ण होते जाते हो। यह प्रेम घृणा के विपरीत आरोपण नहीं है; यह प्रेम घृणा के विरोध में नहीं है। इसका घृणा से कुछ लेना—देना नहीं है, घृणा से इस प्रेम का कोई संबंध ही नहीं है। तुम अपने में जितने गहरे जाते हो, उतना ही ज्यादा प्रेम तुमसे प्रवाहित होता है। और जिस क्षण तुम अपने केंद्र पर पहुंच जाते हो, तुम किसी नैतिक धारणा के बिना ही प्रेमपूर्ण हो जाते हो। तब तुम्हें इसकी खबर भी न होगी कि मैं प्रेमपूर्ण हूं। तुम्हें इसकी खबर कैसे होगी? यह प्रेम इतना सहज और स्वाभाविक होगा; यह प्रेम बस श्वास लेने जैसा होगा; यह प्रेम तुम्हारे पीछे चलने वाली छाया की भांति होगा।
तंत्र अंतर्यात्रा सिखाता है। नैतिकता घटित होगी; लेकिन वह प्रयास नहीं, परिणाम होगी। इस भेद को ठीक से समझ लो। तंत्र कहता है कि नैतिक और अनैतिक धारणाओं के चक्कर में मत पड़ो; वे बाहरी बातें हैं। अंतर्यात्रा करो। और ये अंतर्यात्रा की विधियां हैं। नैतिक—अनैतिक, शुद्ध—अशुद्ध की फिक्र मत करो, भेद मत खड़े करो। भीतर की यात्रा करो; बाहर की दुनिया को, समाज को, समाज की सारी शिक्षाओं को भूल जाओ। समाज जो भी सिखाता है वह द्वैत मूलक होगा ही। इसलिए उससे द्वंद्व और दमन का पैदा होना अनिवार्य है। और यदि द्वंद्व है तो तुम अंतर्यात्रा नहीं कर सकते।
द्वंद्व को भूल जाओ, और उस सबको भी भूल जाओ जो द्वंद्व पैदा करता है। सिर्फ भीतर चलो। तुम जितने ज्यादा भीतर जाओगे उतने ही ज्यादा नैतिक होंगे। लेकिन यह नैतिकता समाज की नैतिकता नहीं होगी। तुम नैतिक हुए बिना नैतिक होंगे; तुम्हें अपने नैतिक होने का बोध भी नहीं होगा। क्योंकि तुम्हारे भीतर इस नैतिकता के विपरीत कुछ नहीं होगा। तुम बस प्रेमपूर्ण होगे, क्योंकि जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम आनंद में होते हो। यह प्रेम स्वयं अपने आप में आनंद है। इसका कोई लक्ष्य भी नहीं है। यह प्रेम किसी फल की आकांक्षा नहीं करता है। ऐसा नहीं है कि यदि प्रेम करोगे तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। यह सौदा नहीं है।
जो नैतिकता समाज सिखाता है, जो नैतिकता तथाकथित धर्म सिखाते हैं, वह सौदेबाजी ही है। वे कहते हैं कि यह करोगे तो वह मिलेगा और यह नहीं करोगे तो वह नहीं मिलेगा। वे सजा की धमकी भी देते हैं। यह सौदेबाजी है।
तंत्र की नैतिकता सौदेबाजी नहीं है, वह एक घटना है। तुम जैसे—जैसे भीतर उतरते हो, वैसे—वैसे तुम क्षण में, वर्तमान में जीने लगते हो। तब तुम समझते हो कि प्रेम करना आनंद है। प्रेम किसी का साधन नहीं है, वह अपने आप में साध्य है। प्रेम पर्याप्त है। तुम प्रेम करते हो, क्योंकि प्रेम तुम्हें आनंद से भर देता है। तुम किसी पर उपकार नहीं कर रहे हो, तुम किसी पड़ोसी के लिए यह नहीं कर रहे हो, प्रेम करने में तुम्हें स्वयं ही सुख होता है। प्रेम तुम्हें अभी और यहीं शुभ से भर देता है। भविष्य में कोई स्वर्ग या नर्क नहीं मिलनेवाला है; अभी ही यह प्रेम स्वर्ग निर्मित कर देता है, और परमात्मा का राज्य तुममें प्रवेश कर जाता है। और यही बात सभी शुभ गुणों के लिए सही है; वे सहज ही तुममें खिलते हैं।
अब हम इस प्रश्न को देखें. 'क्या यह सच नहीं है कि अनैतिक जीवन ध्यान में बाधा पहुंचाता है?'
असल में सचाई ठीक इसके विपरीत है, ध्यानपूर्ण जीवन अनैतिक जीवन में बाधा पहुंचाता है। अनैतिक जीवन क्या बाधा पहुंचा सकता है? अनैतिक जीवन का अर्थ है कि तुम ध्यानपूर्ण नहीं हो; उसका कोई और अर्थ नहीं है। तुम गहरी नींद में हो। और यही कारण है कि तुम अपने को नुकसान पहुंचा रहे हो।

127

तंत्र के लिए बुनियादी बात ध्यान है, सजगता है, बोध है। इससे ज्यादा
और कोई चीज बुनियादी नहीं है। अगर कोई व्यक्ति अनैतिक है तो इससे इतना ही प्रकट होता है कि वह सजग नहीं है, सावचेत नहीं है। यह एक लक्षण मात्र है; अनैतिक होना इस बात का लक्षण है कि व्यक्ति सचेत नहीं है। ऐसी स्थिति में साधारणत: तुम्हें क्या शिक्षा दी जाती है?
साधारण शिक्षक इस सोए व्यक्ति को, जो कि अनैतिक है, कहेंगे कि तुम नैतिक बनो। और वह अनैतिक से नैतिक बन भी जा सकता है; लेकिन उसकी नींद जारी रहेगी। और इस तरह सारा श्रम व्यर्थ चला जाता है, क्योंकि असली बीमारी अनैतिकता नहीं थी, अनैतिकता तो लक्षण मात्र थी। असली बीमारी थी नींद, मूर्च्छा। मूर्च्छित होने के कारण वह अनैतिक था। तुम उसे नैतिक नहीं बना सकते हो। तुम उसे भयभीत कर सकते हो; लेकिन तुम मूर्च्छित आदमी को ही भयभीत कर सकते हो। सजग व्यक्ति को तुम भयभीत नहीं कर सकते। तुम नर्क का भय पैदा कर सकते हो तो स्वर्ग का लोभ पैदा कर सकते हो। लेकिन भय और लोभ नींद में ही काम करते हैं, जाग्रत व्यक्ति को न भयभीत किया जा सकता है और न प्रलोभित ही किया जा सकता है। ये दोनों चीजें मूर्च्छित चित्त के लिए ही अर्थ रखती हैं।
दंड का भय दो, और अनैतिक आदमी नैतिक होने लगेगा। लेकिन वह भय के कारण नैतिक होगा। वैसे ही उसे कोई लोभ दो, और वह नैतिक होने लगेगा। लेकिन यह बदलाहट लोभ के लिए, लाभ के लिए की जाएगी। लोभ और भय नींद के ही हिस्से हैं; आदमी की नींद जारी रहती है। उनसे कभी कोई बुनियादी बदलाहट नहीं होती है। यह सही है कि ऐसा आदमी समाज के लिए उपयोगी हो जाता है। समाज के लिए अनैतिक आदमी समस्या है, नैतिक आदमी नहीं। भय या लोभ से पैदा हुई नैतिकता से समाज की समस्या तो हल हो जाती है, लेकिन व्यक्ति की समस्या जहां की तहां रहती है; वह सोया ही रहता है। वह अब समाज के लिए सुविधाजनक हो जाता है, पहले वह समाज के लिए उपद्रव खड़ा करता था।
इस तथ्य पर गौर करो। एक अनैतिक आदमी समाज के लिए उपद्रव है, लेकिन वह स्वयं के लिए सुविधाजनक है। और एक नैतिक आदमी समाज के लिए तो सुविधाजनक हो जाता है, लेकिन वह स्वयं के लिए उपद्रव हो जाता है। इससे इतना ही होता है कि सिक्के को उलटा कर लिया गया।
यही कारण है कि अनैतिक आदमी प्रसन्न और प्रफुल्लित दिखता है, और नैतिक आदमी गंभीर, उदास और बोझिल नजर आता है। अनैतिक आदमी समाज से लड़ रहा है, और नैतिक आदमी स्वयं से लड़ रहा है। अनैतिक आदमी भी थोड़ा चिंतित है, क्योंकि उसे पकड़े जाने का डर है। उसे डर तो है, लेकिन वह सुख भी भोग रहा है।
अगर वह पकड़ा न जाए, अगर उसे पकड़े जाने का डर न हो, तो वह मजे में है। लेकिन नैतिक आदमी स्वयं के साथ संघर्ष कर रहा है; उसका अपना कुछ भी ठीक नहीं है। ही, समाज के साथ उसका सब ठीक—ठाक चलता है।
नैतिकता समाज के लिए तेल का काम करती है; समाज की गाड़ी चलती रहती है।
इससे दूसरों के साथ तुम्हारा जीवन आराम से चलता है। लेकिन तब तुम्हें स्वयं के साथ बेचैनी अनुभव होने लगती है। बेचैनी बनी ही रहती है—चाहे यह बेचैनी समाज के साथ हो या स्वयं के साथ। बेचैनी तो तभी जा सकती है जब तुम जाग जाते हो, प्रबुद्ध हो जाते हो।
तंत्र बुनियादी बीमारी की फिक्र करता है, लक्षणों की नहीं। नैतिकता लक्षणों को हटाने में लगती है। तंत्र कहता है. 'नैतिक या अनैतिक धारणाओं की चिंता मत लो।’ इसका यह अर्थ नहीं है कि तंत्र तुम्हें अनैतिक होने को कहता है। तंत्र तुम्हें अनैतिक होने को कैसे कह सकता है जब कि वह तुम्हें नैतिक होने को भी नहीं कहता है!
तंत्र यह कहता है कि नैतिक—अनैतिक की पूरी बहस बेकार है; उसे छोड़ो और समस्या की जड़ को पकड़ो। नैतिक—अनैतिक होना मात्र लक्षण है, उसे छोड़ो और जड़ को देखो। और जड़ यह है कि तुम नींद में हो, गहरी नींद में हो।
इस नींद के ढांचे को कैसे तोड़ा जाए? कैसे सावचेत हुआ जाए? और कैसे फिर
— फिर
नींद में गिरने से बचा जाए? तंत्र इसकी चिंता लेता है; तुम्हारी नींद
को तोड़ने और तुम्हारे बोध को जगाने की चिंता लेता है। और जैसे ही तुम बोधपूर्ण होगे, तुम्हारा चरित्र रूपांतरित हो जाएगा। लेकिन वह परिणाम

128

महात्मा भी बीमार है, क्योंकि दोनों नींद में हैं, दोनों मूर्च्छित हैं। और नींद बीमारी है, चरित्र नहीं; चरित्र तो एक उप—उत्पत्ति मात्र है। और नींद में पड़े—पड़े तुम जो भी करोगे उससे कोई बुनियादी बदलाहट नहीं होगी। एक ही चीज तुम्हें बदल सकती है, एक ही चीज तुममें रूपांतरण ला सकती है; और वह है जागरण, वह है बोध। एक ही प्रश्न है कि कैसे अधिक से अधिक सजग हुआ जाए, सावचेत हुआ जाए।
तो तुम जो कुछ भी करो, उसे अपनी सजगता का, होश का विषय बना लो। अगर तुम कोई अनैतिक काम करते हो तो उसे भी ध्यानपूर्वक करो। ज्यादा देर नहीं लगेगी जब कृत्य अपने आप ही विलीन हो जाएगा, विदा हो जाएगा। तुम उसे न कर सकोगे। और इसलिए नहीं कि तुमने जबरदस्ती अपने को रोका हुआ है, बल्कि इसलिए कि अब तुम ज्यादा होशपूर्ण हो। और तुम होश में वह काम कैसे कर सकते हो जिसे करने के लिए नींद अनिवार्य है? तुम वह काम नहीं कर सकते हो।
तंत्र और अन्य साधनाओं के इस बुनियादी भेद को भलीभांति समझ लो। तंत्र ज्यादा वैज्ञानिक है; वह समस्या के जड़—मूल में जाता है। तंत्र तुम्हारे चरित्र के बाहरी खोल में, तुम्हारी नैतिकता और अनैतिकता में, तुम्हारे कृत्यों में बदलाहट लाने की चेष्टा नहीं करता; वह तुम्हें जड़—मूल से रूपांतरित करता है। तुम जो करते हो वह परिधि पर है; लेकिन तुम जो हो वह कभी परिधि पर नहीं है। तंत्र के लिए कृत्य नहीं, कृत्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है।
उदाहरण के लिए मैं एक कहानी कहता हूं। एक कसाई नान—इन के पास पहुंचा।
वह कसाई था, और नान—इन अहिंसा में विश्वास करने वाला बौद्ध भिक्षु था। और कसाई का पूरा धंधा हत्या करना था; सारा दिन वह जानवरों को काटता रहता था। तो जब वह नान—इन के पास आया तो उसने पूछा: 'मैं क्या करूं? मेरा धंधा ही हिंसा का है। तो क्या मुझे पहले अपना धंधा छोड़ना होगा? क्या यह धंधा छोड़कर ही मैं नया मनुष्य हो सकता हूं? या मेरे लिए कोई दूसरा उपाय भी है?' नान—इन ने कहा. 'तुम क्या करते हो इससे हमें कुछ लेना—देना नहीं है। हमें तो सिर्फ इससे मतलब है कि तुम क्या हो। इसलिए तुम जो कुछ करते हो वह किए जाओ, लेकिन ज्यादा सजग रहो। जानवरों को मारते समय सजग रहो, ध्यानपूर्ण रहो, और अपना धंधा जारी रखो। हमें तुम्हारे धंधे से कुछ लेना—देना नही है।'
नान—इन के शिष्य तो इस बात से बहुत चिंतित हो उठे कि एक बुद्ध का अनुयायी, अहिंसा को मानने वाला, एक कसाई को अपना धंधा जारी रखने की छूट दे रहा है! एक शिष्य ने कहा: 'यह उचित नहीं है। और हमें कभी यह अपेक्षा नहीं थी कि आप जैसा व्यक्ति एक कसाई को कसाई बने रहने की इजाजत देगा। और जब वह खुद ही पूछ रहा था तो आपको यह धंधा छोड़ने के लिए कह देना चाहिए था। वह खुद ही धंधा छोड़ने की पूछ रहा था।’
नान—इन ने कहा: 'तुम कसाई के धंधे को आसानी से बदलवा सकते हो; वह खुद इसके लिए राजी था। लेकिन इससे तुम उसकी चेतना की गुणवत्ता 'को नहीं बदल सकते हो; वह कसाई का कसाई रहेगा। वह संत भी बन जा सकता है, लेकिन उसके चित्त का गुण वही रहेगा जो कसाई के चित्त का गुण है। वह संतत्व दूसरों के लिए, और उसके लिए भी, एक धोखा भर होगा।’
जाओ और अपने तथाकथित साधु—महात्माओं को देखो। उनमें से अनेक कसाई ही
रह जाते हैं। उनके रंग—ढंग में, उनके व्यवहार में, तुम्हारी ओर वे जिस नजर से देखते हैं उसमें, सब में निंदा भरी होती है, हिंसा भरी होती है। उनकी आंख तुम्हें कहती है कि तुम पापी हो और मैं पुण्यात्मा हूं। उनके देखने के ढंग में ही तुम्हारे लिए निंदा भरी रहती है, उनकी नजर तुम्हें सीधे नरक में डाल देती है।
नान—इन ने कहा. 'उसके बाहरी जीवन को बदलने से कोई लाभ नहीं है। उसके चित्त की गुणवत्ता बदलनी जरूरी है। और अच्छा है कि उसे कसाई ही रहने दिया जाए, क्योंकि वह अपने कसाईपन और हिंसा से बेचैन हो रहा है। अगर वह संत बन जाएगा तो वह रहेगा कसाई ही, लेकिन तब वह बेचैन नहीं होगा। उसका अहंकार और भी मजबूत हो जाएगा। तो अच्छा है कि वह कसाई ही रहे। वह अपनी हिंसा से बेचैन तो है, और उसे कम से कम यह बोध तो हो रहा है कि यह अच्छा नहीं है। वह बदलने

130

के लिए तैयार है। लेकिन बदलने की तैयारी से ही काम नहीं चलेगा। चित्त की एक नई गुणवत्ता विकसित करनी होगी। उसे ध्यान करने दो।’
एक वर्ष बीतने पर वह आदमी फिर नान—इन के पास आया, वह अब बिलकुल दूसरा
ही आदमी था। वह अभी भी कसाई था, लेकिन कृत्य वही रहने पर भी आदमी बदल गया था। नान—इन के पास आकर उसने कहा. 'अब मैं दूसरा ही आदमी हूं। मैंने ध्यान किया, ध्यान किया, ध्यान किया, और मेरा पूरा जीवन ही ध्यान बन गया है। आपने कहा था कि तुम जो कुछ करो, उसे ही ध्यान से करो। मैं जानवरों को काटता हूं लेकिन पूरे दिन ध्यान में डूबा रहता हूं। अब आप मुझे क्या करने को कहते हैं?'
नान—इन ने कहा. 'अब मेरे पास मत आओ; अपने बोध से ही चलो। तुम्हें अब मेरे पास आने की जरूरत नहीं है।’
तो उस कसाई ने कहा: 'अब अगर आप कहेंगे कि इस धंधे को जारी रखो तो मैं उसे जारी रखने का अभिनय करूंगा; लेकिन —जहां तक मेरा संबंध है मैं अब उसमें नहीं हूं। तो अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं वापस जाने वाला नहीं हूं। लेकिन यदि आप जाने को कहेंगे तो वह भी ठीक है। तो मैं अभिनय जारी रखूंगा।’ इस तरह जब तुम्हारी गुणवत्ता बदलती है, जब तुम्हारी चेतना में रूपांतरण होता है, तो तुम सर्वथा दूसरे ही व्यक्ति हो जाते हो। और तंत्र को तुमसे मतलब है, तुम्हारे कृत्यों से नहीं।

दूसरा प्रश्न:
यदि कोई आदमी जीवन के कुछ नियमों का पालन करे और उसे नैतिक नाम दे तो क्या तंत्र को इस पर कोई आपत्ति है?

तंत्र को कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन यह आपत्ति का न होना समस्या नहीं है। तंत्र को किसी तरह की कोई आपत्ति नहीं है। तंत्र में कुछ निंदित नहीं है, वह तुम्हें कभी नहीं कहता है कि यह करो और वह न करो। अगर तुम्हें किन्हीं नियमों का पालन करना अच्छा लगता है तो मजे से करो। लेकिन ध्यान रहे, नियमों का पालन करने से तुम्हें सुख नहीं मिलने वाला है, क्योंकि सिद्धांतों से और उनके पालन से तुम कभी रूपांतरित नहीं हो सकते; तुम वही के वही रहते हो।
सिद्धांत सदा उधार होते हैं; आदर्श सदा उधार होते हैं। वे सदा तुम्हें दूसरों से मिलते हैं। वे तुम्हारे नहीं हैं, वे तुम्हारे अपने अनुभव से नहीं आए हैं। ऐसे सिद्धांतों और आदर्शों की अपनी जड़ें नहीं होती हैं। वे तुम्हें तुम्हारे समाज ने दिए हैं, उन धर्मों ने दिए हैं जिनमें तुम पैदा हुए हो, उन शिक्षकों ने दिए हैं जिनके तुम निकट रहे हो। तुम उनका अनुगमन कर सकते हो, तुम उन्हें अपने ऊपर लाद सकते हो; लेकिन तब तुम जीवंत नहीं होगे, तुम मुर्दा हो जाओगे। तुम अपने चारों तरफ एक तरह की शांति भी निर्मित कर ले सकते हो, लेकिन वह शांति मरघट की शाति होगी, मुर्दा शाति होगी। सिद्धांतों के कारण तुम्हें जीवन के उपद्रव कम प्रभावित करेंगे; लेकिन तब तुम कम संवेदनशील होगे, कम जीवित होंगे।
तो तथाकथित सिद्धांतवादी लोग सदा मुर्दा होते हैं। उन्हें देखो! वे शांत, मौन, स्थिर मालूम पड़ते हैं; लेकिन उनके चारों ओर सदा एक मुर्दनी छाई रहती है। मृत्यु की काली छाया उन्हें सदा घेरे रहती है। उनके आस—पास तुम्हें जीवन का उत्सव नहीं मिल सकता है, जीवन का नृत्य नहीं मिल सकता है। तुम्हें उनके आस—पास जीवन की उत्फुल्लता नहीं मिल सकती है। उन्होंने अपने चारों ओर एक कवच निर्मित कर लिया है, एक सुरक्षा—कवच खड़ा कर लिया है। कुछ भी उनके भीतर नहीं प्रवेश कर सकता है, उनके चरित्र की दीवार, उनके सिद्धांतों की दीवार सबको बाहर ही रोक देती है।
लेकिन वे एक तरह के कारागृह में हैं, कैदी हैं। और वे अपने ही हाथों कैदी बने हुए हैं। अगर तुम अपने लिए ऐसा जीवन चुनते हो तो तंत्र को इसमें कोई आपत्ति नहीं है। तुम ऐसा जीवन चुनने को स्वतंत्र हो जो कि जीवन ही नहीं है।
एक बार मुल्ला नसरुद्दीन कब्रिस्तान देखने गया। वहां उसने देखा कि एक संगमरमर का बना अत्यंत सुंदर मकबरा है, और उसके ऊपर रथचाइल्ड का नाम खुदा

131

है। उसे देखते ही मुल्ला बोल उठा: 'अहा, इसे मैं जीवन कहता हूं! इसे ही मैं जीवन कहता हूं। सुंदर संगमरमर का मकबरा।’
लेकिन कितना ही सुंदर हो, यह जीवन नहीं है। संगमरमर है, सुंदर और कीमती है; पर जीवन नहीं है। सिद्धांतों के द्वारा, आदर्शों के द्वारा, आरोपणों के द्वारा तुम अपने जीवन को मकबरा बना सकते हो, लेकिन तब तुम मरे — मरे हो जाओगे। ही, तब तुम ज्यादा सुरक्षित होगे, क्योंकि मृत्यु खुलापन नहीं है। मृत्यु सुरक्षा है; जीवन सदा असुरक्षित है। जीवित व्यक्ति को कुछ भी हो सकता है, लेकिन मृत व्यक्ति को कुछ भी नहीं हो सकता। मुर्दा सुरक्षित है। उसके लिए भविष्य ही न रहा; किसी परिवर्तन की संभावना न रही। उसे वह चीज घटित हो गई जो अंतिम है, मृत्यु घटित हो गई, अब और कुछ घटित होने को नहीं है।
सिद्धांतों में दबा व्यक्तित्व मरा हुआ व्यक्तित्व है। तंत्र को उसमें कोई उत्सुकता नहीं है। लेकिन तंत्र को एतराज भी नहीं है। अगर तुम्हें मुर्दा होना अच्छा लगता है तो यह तुम्हारा चुनाव है। तुम आत्मघात कर सकते हो। यह आत्मघात ही है। लेकिन तंत्र उनके लिए है जो ज्यादा जीवित हैं। और सत्य या परम तत्व मृत्यु नहीं है। वह जीवन है। स्मरण रहे, परम तत्व मृत्यु नहीं है; वह जीवन है, अतिरेक में जीवन है।
जीसस ने कहा है. 'अतिशय जीवन, अनंत जीवन।’
मुर्दा होकर तुम सत्य को, परम को नहीं उपलब्ध हो सकते हो। वह तो जीवन है, अनंत जीवन है, मुर्दा होकर तुम कभी उससे संपर्क नहीं कर सकते हो। ज्यादा जीवंत, ज्यादा खुले, ज्यादा संवेदनशील, कम सिद्धांतग्रस्त और ज्यादा बोधपूर्ण होकर ही तुम अनंत जीवन को उपलब्ध हो सकते हो।
और तुम सिद्धांतों की खोज क्यों करते हो? तुमने गौर से नहीं देखा होगा
कि तुम क्यों सिद्धांतों को पकड़ते हो। कारण यह है कि सिद्धांतों को पकड़ने से तुम्हें सजग रहने की जरूरत नहीं रह जाती, सिद्धांतों से जीने पर तुम्हें सावचेत रहने की जरूरत नहीं होती।
समझो कि मैं अहिंसा को अपना सिद्धांत बना लेता हूं और उसका पालन करता हूं या सत्य बोलने को अपना सिद्धांत बना लेता हूं और उसका पालन करता हूं। तब यह मेरी आदत बन जाती है, मैं सत्य बोलने को, सदा सत्य बोलने को अपनी आदत बना लेता हूं। यह मेरे लिए एक यांत्रिक आदत बन जाती है; अब मुझे सजग रहने की जरूरत न रही। मैं अब झूठ नहीं बोल सकता, क्योंकि एक सिद्धांत, एक आदत सदा बाधा देगी, रोकेगी।
समाज सिद्धांतों पर निर्भर है। इसलिए समाज बच्चों को सिद्धांतों की शिक्षा देता है, बच्चों में सिद्धांतों के संस्कार डालता है। और तब बच्चे सच ही उन सिद्धांतों के विरोध में जाने में असमर्थ हो जाते हैं।
लेकिन जब कोई व्यक्ति असमर्थ हो जाता है तो मुर्दा हो जाता है। तुम्हारा सत्य तभी जीवंत है जब वह सजगता से आता है, सिद्धांत से नहीं। सच होने के लिए तुम्हें क्षण— क्षण सावचेत रहना होगा। सत्य कोई सिद्धांत नहीं है, सत्य तुम्हारे बोध से जन्मता है। अहिंसा कोई सिद्धांत नहीं है; अगर तुम सजग हो तो तुम हिंसा नहीं कर सकते।
लेकिन सजग होना कठिन है, दुष्कर है; उसके लिए तुम्हें अपने को समग्रत: रूपांतरित करना होगा। सिद्धांतों और नियम—निषेधों के अनुसार जीना बहुत आसान है। तब तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं रहती है। तब तुम्हें सजग और सावचेत रहने की फिक्र नहीं करनी पड़ती है। तब सिद्धांतों से काम चल जाता है। तब तुम्हारा जीवन पटरियों पर चलने वाली रेलगाड़ी की भांति हो जाता है; तुम्हारे सिद्धांत पटरियों का काम दे देते है। और तब तुम्हें मार्ग से भटकने का भय भी नहीं रहता है। सच तो यह है कि तुम्हारा कोई मार्ग ही नहीं है; बस यांत्रिक पटरियां हैं जिन पर तुम्हारी गाड़ी चलती रहती है। और तुम अपनी मंजिल पर पहुंच ही जाओगे; तुम्हें डरने की जरूरत न रही। तुम सोए रहोगे तो भी गाड़ी पहुंच जाएगी। वह मुर्दा रास्तों पर चल रही है; वे रास्ते जीवंत नहीं हैं।
लेकिन तंत्र का कहना है कि जिंदगी रेल की भांति नहीं, नदी की भांति है। जिंदगी लोहे की बनी पटरियों पर नहीं चलती है, वह नदी की भांति है, जिसका कोई बना बनाया मार्ग नहीं है। जैसे—जैसे नदी बहती है, उसका मार्ग

132

बनता जाता है। जैसे—जैसे नदी बहती है, अपना मार्ग स्वयं बनाती चलती है। और नदी सागर तक पहुंच जाती है।
जीवन भी ऐसा ही होना चाहिए—अगर तुम तंत्र को समझते हो। जीवन नदी की भांति है। उसके बने बनाए मार्ग नहीं हैं, उसके कोई नक्शे नहीं हैं जिनका अनुगमन करना है। बस बोधपूर्ण और सजग रहो। और फिर जीवन तुम्हें जहां भी ले जाए, श्रद्धा से उसके साथ जाओ। तंत्र श्रद्धा है—जीवन—ऊर्जा में श्रद्धा। तुम उसके हाथों में अपने को सौंप दो। उसके साथ जबरदस्ती मत करो, अपने को उसके हाथों में छोड़ दो, समर्पित हो जाओ, और उसे तुम्हें सागर की ओर ले चलने दो। तुम बस सावचेत रहो, इतना पर्याप्त है। जब जीवन तुम्हें सागर की ओर ले चले तो तुम सावचेत रहो, ताकि कुछ भी चूके नहीं।
यह स्मरण रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि तंत्र न केवल साध्य की चिंता लेता है, वह साधन की भी उतनी ही चिंता लेता है। वह मंजिल की ही नहीं, मार्ग की भी उतनी ही फिक्र करता है। अगर तुम सावचेत हो तो यह जीवन भी आनंदपूर्ण हो जाएगा। नदी की यात्रा ही अपने आप में आनंद है। उसका घाटियों और चट्टानों से होकर गुजरना, पहाड़ियों से छलांगें लेना, अज्ञात की ओर बहना, सब अपने आप में आनंद है। तो यात्रा में भी सजग रहो, क्योंकि सागर या परम सिर्फ अंत में घटित होने वाली घटना नहीं हो सकती, असंभव है। यह एक विकास है, नदी सागर होने की दिशा में बढ़ रही है। नदी सागर से मिलने ही नहीं जा रही है, वह स्वयं सागर होने की दिशा में बढ़ रही है। और यह केवल अनुभवों से, सजग अनुभवों से, गति से और श्रद्धा से ही संभव है।
खोज के प्रति, मनुष्य की खोज के प्रति तंत्र की यही दृष्टि है। निश्चित ही यह खतरनाक है। यदि नदियों के लिए पूर्व—निर्धारित मार्ग होते तो खतरा कम होता, भूलें भी कम होतीं; लेकिन तब जीवंत होने का सारा सौंदर्य नष्ट हो जाता। तो सिद्धांतों की लकीर के फकीर मत बनो, ज्यादा से ज्यादा जागरूकता को बढ़ाओ। और तब वे सिद्धांत भी तुम्हें स्वत: आविर्भूत होंगे, लेकिन तब तुम उनके कैदी न होगे।

तीसरा प्रश्न:
कल का दूसरा सूत्र कहता है: 'अन्य देशनाओं की शुद्धता हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत मानों। अगर कुछ भी अशुद्ध नहीं है। तो दूसरों की देशनाएं अशुद्ध कैसे हो सकती है? वस्तुत: कुछ भी अशुद्ध नहीं है, लेकिन जो देशना कहती है कि कुछ शुद्ध
है और कुछ अशुद्ध, उसे छोड़ना जरूरी है। उसी अर्थ में सूत्र कहता है 'अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।'
कुछ भी शुद्ध—अशुद्ध नहीं है; लेकिन अगर कोई सिखाता है कि कुछ शुद्ध
है और कुछ अशुद्ध है तो तंत्र कहता है कि इस शिक्षा को छोड़ना होगा। उसी अर्थ में सूत्र कहता है कि 'अन्य देशनाओं की शुद्धता हमारे लिए अशुद्धता ही है।’ यह बस भेदभाव से बचने की बात है। इसका एक ही मतलब है कि कोई भेद मत करो, निर्दोष रहो।
लेकिन जीवन की जटिलता को तो देखो! यदि मैं कहूं कि निर्दोष रहो और तुम निर्दोष रहने की चेष्टा करो हो तो वह निर्दोषिता नहीं होगी। कैसे हो सकती है? यदि तुम चेष्टा करते हो तो वह निर्दोषिता नहीं, हिसाब—किताब है। निर्दोषिता प्रयास से नहीं आ सकती। तो फिर किया क्या जाए? सिर्फ उन चीजों को छोड़ना है जो चालाकी पैदा करती हैं। निर्दोषिता पैदा करने की चेष्टा मत करो, वह तुम नहीं कर सकते। तुम्हें सिर्फ उन चीजों से बचना है जो तुम्हारे चित्त में चालबाजी पैदा करती हैं। यह परोक्ष है; जब तुम चालाकी के, धूर्तता के मूल कारणों को छोड़ दोगे, तो निर्दोषिता अपने आप आ जाएगी।
कुछ भी न शुद्ध है न अशुद्ध। लेकिन तब करना क्या है? तुम्हारे मन में
तो भेदभाव भरा है: यह शुद्ध है और वह अशुद्ध है। तंत्र कहता है: यही हमारे लिए एकमात्र अशुद्धि है, शुद्धि और अशुद्धि की धारणाओं से भरा चित्त ही एकमात्र अशुद्धि है। और तुम अगर यह भेदभाव छोड़ सको तो तुम शुद्ध हो।
यह सूत्र एक दूसरे अर्थ में भी अर्थपूर्ण है। ऐसे शास्त्र हैं जो बहुत जड़ नियमों से भरे हैं। उदाहरण के लिए, कैथोलिक ईसाई और जैन शास्त्र कामवासना के विरोध में हैं। वे कहते हैं कि काम अशुद्ध है, कुरूप है, पाप

133

है। और तंत्र कहता है कि कुछ अशुद्ध नहीं है, कुछ कुरूप नहीं है, कुछ पाप नहीं है। काम भी मार्ग बन सकता है—काम भी मोक्ष का मार्ग बन सकता है। यह तुम पर निर्भर है। कामवासना निर्दोष है, तुम उसे गुणवत्ता प्रदान करते हो। प्रार्थना भी पाप बन सकती है, और कामवासना भी पुण्य बन सकती है। यह तुम पर निर्भर है। मूल्य विषय में नहीं है; मूल्य उसे तुम देते हो।
इस बात को, इस घटना को एक दूसरे ढंग से देखो। तंत्र कहता है कि काम भी मोक्ष बन सकता है। लेकिन तब तुम काम के पास शुद्ध—अशुद्ध, शुभ—अशुभ, नीति — अनीति की किसी धारणा के बिना आओ; इसे सिर्फ ऊर्जा, शुद्ध ऊर्जा समझकर इसके पास आओ। इस ऊर्जा में ऐसे प्रवेश करो जैसे तुम अज्ञात में प्रवेश कर रहे हो। और सो मत जाओ, सजग रहो। जब कामवासना तुम्हें तुम्हारे अस्तित्व के केंद्र तक ले जाए तो सावचेत रहो, मार्ग में सो मत जाओ। सावचेत रहो और सब कुछ अनुभव करो। मार्ग में जो भी घटित हो—विश्राम आए, तनाव आए, शिखर आए, घाटी आए—सबको भोगो।
क्षण भर के लिए तुम्हारा अहंकार विलीन हो जाता है; तुम अपनी प्रेमिका
या प्रेमी के साथ एक हो जाते हो। क्षण भर के लिए वहां दो नहीं रहते; शरीर ही दो रहते हैं, लेकिन गहरे में एक गहन मिलन घटित होता है। वे एक हो जाते हैं। होशपूर्ण बने रहो, इस क्षण को नींद में मत गंवा दो। सजग रहो और देखते रहो जो भी घटित होता है।
यह मिलन, यह एकता काम के भीतर छिपी थी, काम तो बाहरी खोल भर था। उसका केंद्रीय बिंदु, उसका सारसूत्र यही था। और यही एकता थी उसकी तुम्हें चाह थी, जिसकी तुम्हें खोज थी। सारी खोज इसकी ही थी, इसी एकता की, अहंकार— विसर्जन की, एकात्मता के अनुभव की, तनावरहितता की, विश्राम की, इसी समाधि की खोज थी। इसी अर्थ को, इसी मंजिल को तुम इस—उस स्त्री के माध्यम से, इस— उस पुरुष के माध्यम से खोज रहे थे। यही तुम खोज रहे थे, निरंतर खोज रहे थे, लेकिन कोई स्त्री यह समाधि नहीं दे सकती है, कोई पुरुष नहीं दे सकता है। सिर्फ गहन तांत्रिक बोध के द्वारा ही काम—कृत्य खो जाता है और एक गहरी समाधि प्रकट होती है।
तो तंत्र तुम्हारे कृत्यों में नहीं, तुममें उत्सुक है। और अगर तुम अपने प्रेम को ध्यानपूर्ण बना सको, अपने काम को ध्यानपूर्ण बना सको, तो काम रूपांतरित हो जाता है। यही कारण है कि तंत्र किसी को शुद्ध या अशुद्ध नहीं कहता है। और अगर तुम शुद्धता—अशुद्धता की पुरानी शब्दावली का उपयोग करना चाहते हो तो मैं कहूंगा कि तंत्र के लिए नींद अशुद्धता है और जागरण शुद्धता है, बाकी सब चीजें व्यर्थ हैं, बेकार हैं।

चौथा प्रश्न:
यदि कोई इच्छा या भावना हमारे लिए आनंदपूर्ण है और अगर हम उसका बाह्म अभिव्यक्ति न दें तो क्या वह ऊर्जा अनिवार्य रूप से अपने स्त्रोत को लौट जाती है और हमें ताजा और ऊर्जावान कर जाती है?

अनिवार्य रूप से नहीं। लेकिन अगर तुम होशपूर्ण हो तो ऐसा होता है, अनिवार्य रूप से होता है। ऊर्जा को, किसी भी ऊर्जा को गति करने के लिए मार्ग चाहिए। और कोई ऊर्जा नष्ट नहीं की जा सकती, ऊर्जा अविनाशी है। ऊर्जा रूप बदल सकती है, भिन्न—भिन्न रूप ले सकती है, लेकिन वह कभी विनष्ट नहीं हो सकती, समाप्त नहीं हो सकती। तुम जब किसी ऊर्जा का दमन करना चाहते हो तो तुम अपने साथ महान मूढ़ता कर रहे हो। ऊर्जा का कभी दमन नहीं हो सकता, उसका सिर्फ रूपांतरण हो सकता है। दमित ऊर्जा तो कैंसर बन जाती है, घातक घाव बन जाती है।
जब तुम्हें क्रोध आता है तो उस क्रोध के लिए सामान्यत: दो मार्ग उपलब्ध हैं। तुम उसे प्रकट कर देते हो या दबा देते हो। अगर तुम उसे प्रकट करते हो तो उससे एक श्रृंखला निर्मित होती है। क्योंकि तब तुम दूसरे व्यक्ति में क्रोध पैदा करते हो; अब वह भी क्रोध करेगा। और इस श्रृंखला का कहीं कोई अंत नहीं है। तब तुम फिर क्रोध करोगे, और यह सिलसिला वर्षों चल सकता है। यह चलता रहता है। इसी भांति प्रत्येक व्यक्ति जी रहा है; यह सिलसिला जारी रहता है।

134

और तुम जन्मों—जन्मों से इस यंत्र का उपयोग बैलगाड़ी की तरह कर रहे थे
जो कि उड़ सकता था। और इस तरह नाहक समस्याएं पैदा कर रहे थे, क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं था कि तुम्हारी संभावना क्या है।

पांचवां प्रश्न:
आपने कहा की व्यक्ति को क्रोध का न भोग करना चाहिए न दमन, उसे कुछ न करते हुए सजग और ध्यानपूर्ण रहना चाहिए। स्वभावत: दमन या भोग से बचने के लिए एक प्रकार के आंतरिक प्रयास की जरूरत होगी; लेकिन तब क्या वह भी एक प्रकार का दमन नहीं होगा?

नहीं, यह प्रयास तो है, लेकिन दमन नहीं है। प्रत्येक प्रयास दमन नहीं है। प्रयास तीन तरह के हैं। एक प्रयास वह है जिससे अभिव्यक्ति होती है; जब तुम अपने क्रोध को प्रकट करते हो तो वह एक प्रयास है। दूसरी तरह का प्रयास वह है जिससे तुम दमन करते हो।
जब तुम क्रोध प्रकट करते हो तो तुम क्या करते हो? तुम अपनी ऊर्जा को बाहर फेंक रहे हो, किसी व्यक्ति पर, किसी विषय पर उसे फेंक रहे हो। तुम अपनी ऊर्जा बाहर फेंक रहे हो, जिसका लक्ष्य दूसरा है। ऊर्जा दूसरे की ओर गति करती है; यह प्रयास है। और जब तुम दमन करते हो तो तुम ऊर्जा को उसके मूल स्रोत की ओर वापस लौटाते हो, अपने हृदय की और वापस लाते हो। तब तुम ऊर्जा को पीछे ढकेलते हो। यह भी प्रयास है। लेकिन इसकी दिशा भिन्न है। अभिव्यक्ति में ऊर्जा तुम से दूर गति करती है; दमन में वह तुम्हारे पास गति करती है।
तीसरी चीज है सजगता, निष्क्रिय सजगता। वह भी प्रयास है। लेकिन इसका आयाम भिन्न है; इसमें ऊर्जा ऊर्ध्वगमन करती है। आरंभ में यह भी प्रयास है। जब मैं तुम्हें कहता हूं कि निष्किय रूप से सजग रहो, तो आरंभ में यह निष्किय सजगता भी तुम्हारे लिए प्रयास ही होगी। धीरे— धीरे जैसे—जैसे तुम इससे परिचित होते जाते हो, यह प्रयास नहीं रहती है। और जब यह प्रयास नहीं रहती है तब सजगता और भी निष्क्रिय हो जाती है। और यह जितनी निष्क्रिय होती है उतनी ही चुंबकीय हो जाती है; ऊर्जा को ऊपर की ओर खींचने लगती है। लेकिन आरंभ में सब कुछ प्रयास होगा। शब्दों के चक्कर में मत पड़ो; उससे समस्याएं खड़ी होती हैं। संतों ने सदा ही अप्रयास की बात की है; वे कहते हैं कि कोई प्रयास मत करो। लेकिन आरंभ में यह भी एक प्रयास ही होगा। जब हम प्रयासरहित होने को कहते हैं तो उसका इतना ही मतलब है कि जबरदस्ती मत करो, बोध के द्वारा घटित होने दो। अगर तुम जबरदस्ती करोगे तो तनावग्रस्त हो जाओगे। और तुम्हारे तनावग्रस्त होने पर क्रोध ऊपर की ओर गति नहीं कर सकता; तनाव की गति क्षैतिज है। सिर्फ तनावमुक्त चित्त ही ऊपर उठ सकता है, बादलों की तरह आकाश में तिर सकता है।
आकाश में अनायास तिरते बादलों को देखो। अपने साक्षी— भाव को भी तिरते बादलों की भांति भीतर आने दो। आरंभ में यह भी प्रयास ही होगा; लेकिन इतना स्मरण रहे कि इसे प्रयासशून्य होना है। तो तुम प्रयास भी करोगे और साथ ही साथ उसे ज्यादा से ज्यादा स्वत: भी घटित होने दोगे।
यह कठिन है, क्योंकि कठिनाई भाषा के कारण पैदा होती है। अगर मैं तुम्हें शिथिल होने को, विश्राम में होने को कहता हूं तो तुम क्या करते हो? तुम एक तरह का प्रयास ही करते हो। लेकिन फिर मैं कहता हूं कि प्रयास मत करो, क्योंकि प्रयास से तनाव पैदा होता है और तुम विश्राम में नहीं हो सकते। तो मैं तुम्हें कहता हूं कि बस विश्राम करो। इससे तुम हैरान होते हो और अनिवार्यत: पूछते हो: 'क्या मतलब है आप का? अगर मुझे कोई प्रयास नहीं करना है तो मैं क्या करूं?'
तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, लेकिन आरंभ में वह नहीं करना करने जैसा मालूम पड़ेगा। तो मैं कहूंगा कि ठीक है, थोड़ा—सा प्रयास करो, लेकिन स्मरण रहे कि उस प्रयास को पीछे छोड़ देना है। आरंभ करने के लिए थोड़ा सा प्रयास करो। तुम न करने की भाषा नहीं समझ सकते हो, तुम सिर्फ करने की भाषा ही समझ सकते हो, इसलिए करने की भाषा का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन केवल आरंभ करने

137

के लिए प्रयास का उपयोग करो, और याद रखो कि तुम जितनी जल्दी प्रयास को छोड़ दोगे उतना अच्छा होगा।
मैंने सुना है कि जब मुल्ला नसरुद्दीन बहुत का हो गया तो उसे अनिद्रा
का रोग पकड़ गया। उसे नींद ही नहीं आती थी। सब तरह का उपचार किया गया, गर्म स्नान, गोलियां, ट्रैंक्येलाइजर्स, अर्क—आसव सब दिए गए, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। कोई चीज कारगर नहीं सिद्ध हुई। और सब बच्चे परेशान हो गए, क्योंकि मुल्ला न खुद सोता था और न औरों को ही सोने देता था। पूरे परिवार के लिए रात काटना मुश्किल हो गया था। परिवार के लोग बुरी तरह किसी दवा, किसी उपाय की खोज में थे, जिससे मुल्ला को नींद आ सके, क्योंकि पूरा परिवार पागल हो रहा था।
अंत में एक सम्मोहनविद को बुलाया गया। बच्चे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने जाकर बूढ़े मुल्ला को कहा: 'पापा, अब आपको चिंता करने की जरूरत नहीं है। यह आदमी तो अदभुत है; क्षणों में नींद ला देता है। उसे नींद का जादू पता है; आप फिक्र न करें। अब कोई डर नहीं है, आप सो सकेंगे।’ सम्मोहनविद ने मुल्ला को जंजीर से लटकी एक घड़ी दिखाई और कहा: ' थोड़ी
सी श्रद्धा से चमत्कार हो जाता है। आप मुझमें थोड़ा भरोसा करें, थोड़ी श्रद्धा करें, और आप छोटे बच्चे की भांति नींद में चले जाएंगे। आप इस घड़ी की ओर देखें।’ यह कहकर सम्मोहनविद घड़ी को बाएं—दाएं घुमाने लगा। नसरुद्दीन घड़ी को देखने लगा और उस सम्मोहनविद ने कहा: 'बाएं—दाएं, बाएं— दाएं! आपकी आंखें थक रही हैं, थक रही हैं; आप नींद में उतर रहे हैं नींद में उतर रहे हैं, नींद में उतर रहे हैं, नींद में उतर रहे हैं।’
सब लोग खुश थे। मुल्ला की आंखें बंद हो गईं। उसका माथा नीचे झुक गया,
और वह छोटे बच्चे की तरह गहरी नींद में उतरता मालूम पड़ा। उसकी श्वास लयबद्ध होकर चलने लगी। सम्मोहनविद ने अपनी फीस ली, होंठों पर अंगुली रखकर बच्चों को इशारे से कहा कि अब कोई उसकी नींद में बाधा न दे। और वह चुपचाप चला गया।
ज्यों ही सम्मोहनविद बाहर गया कि मुल्ला ने एक आंख खोली और कहा. 'पागल! क्या वह चला गया?'
मुल्ला शिथिल होने का प्रयास कर रहा था! वह बच्चे की तरह शिथिल हो गया। उसने आंखें बंद कर लीं और लयबद्ध ढंग से श्वास लेने लगा। लेकिन यह सब प्रयास था। वह सम्मोहनविद को सहयोग दे रहा था, वह समझा कि मैं सहयोग दे रहा हूं; लेकिन उसके लिए यह सब चेष्टित था, इसलिए कुछ न हुआ। कुछ हो भी नहीं सकता था। वह जागा ही रहा। अगर मुल्ला सिर्फ निष्क्रिय रहा होता, अगर उसने वह सुना होता जो उससे कहा जा रहा था, वह देखा होता जो दिखाया जा रहा था, तो नींद जरूर आ गई होती। उसे कोई प्रयास करने की जरूरत न थी; एक निष्क्रिय स्वीकृति काफी थी।
तुम्हें भी अपने मन को निष्क्रिय स्वीकृति के लिए राजी करने के लिए शुरू में प्रयास की जरूरत होगी। तो प्रयास से मत डरो; प्रयास से शुरू करो। लेकिन स्मरण रहे कि प्रयास को भी पीछे छोड़ देना है, प्रयास के भी पार जाना है। और जब तुम पार चले जाओगे तो ही तुम निष्क्रिय हो सकोगे। और यह निष्क्रिय बोध ही चमत्कार लाता है। निष्क्रिय बोध में मन नहीं रहता है, और पहली बार तुम्हारे अस्तित्व का आंतरिक केंद्र प्रकट होता है। और इसका कारण है।
संसार में कुछ भी करने के लिए प्रयास जरूरी है। अगर तुम संसार में कुछ करना चाहते हो, कुछ भी करना चाहते हो, तो प्रयास जरूरी है। लेकिन अगर तुम अपने अंतरस्थ में कुछ करना चाहते हो तो प्रयास जरूरी नहीं है। वहां केवल विश्राम जरूरी है। वहां अकर्म ही कला है—ठीक वैसे ही जैसे, बाहरी संसार में कर्म कला है।
यह निष्कि्रय जागरूकता कुंजी है।
लेकिन भाषा के कारण परेशान होने कीं जरूरत नहीं है, प्रयास से शुरू करो। सिर्फ इतना ध्यान रखना है कि प्रयास को छोड़ना है, छोड़ते जाना है। यह छोड़ना भी पहले प्रयास ही होगा। लेकिन एक क्षण आता जब सब कुछ चला जाता। तब तुम, मात्र हो; कुछ करते नहीं हो, बस होते हो।

138

और यह होना ही समाधि है। और जो भी जानने योग्य है, जो भी होने योग्य है,
जो भी पाने योग्य है, इस अवस्था में तुम्हें उपलब्ध हो जाता है।

आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
तिरतालीसवां प्रवचन

परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो

सार सूत्र:
66—मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में,
असमता के बीच समभाव रखो।
67—यह जगत परिवर्तन का है, परिवर्तन ही परिवर्तन
का है। परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।

नारथ्रोप ने कहीं कहा है कि पश्चिमी चित्त अस्तित्व के सैद्धांतिक पक्ष की खोज में लगा रहा है; वह कार्य—कारण की कड़ी ढूंढता रहा है। वह खोजता रहा है कि कैसे चीजें घटित होती हैं, उसका कारण क्या है, कारण को नियंत्रित कैसे किया जाए और कैसे मनुष्य प्रकृति को अपने मनोनुकूल व्यवस्थित कर अपने काम में लाए। और नारथोप ने कहा है कि पूर्वीय चित्त एक दूसरे ही अभियान में संलग्न रहा है, वह सत्य के सौंदर्य पक्ष की खोज करता रहा है; सैद्धांतिक नहीं, सौंदर्य पक्ष की खोज में लगा रहा है।
पूर्वीय चित्त ने इस बात की ज्यादा फिक्र नहीं की है कि कैसे वह प्रकृति को अपने अनुकूल चला सके, उसका शोषण कर सके। लेकिन वह इस बात में जरूर उत्सुक रहा है कि कैसे प्रकृति के साथ एक हुआ जाए। वह उसे जीतने में उत्सुक नहीं रहा है, उससे गहन मैत्री बनाने में, उसका घनिष्ठ भागीदार बनने में उत्सुक रहा है। पश्चिमी चित्त प्रकृति के साथ द्वंद्व में, संघर्ष में उलझा रहा है; पूर्वीय चित्त उसकी रहस्यमयता में उतरने और उसके साथ प्रेम—संबंध में डूबने में संलग्न रहा है।
मैं नहीं जानता कि नारथ्रोप मेरे साथ सहमत होगा या नहीं; लेकिन मेरा खयाल है कि विज्ञान प्रकृति के साथ एक घृणा का संबंध बनाए है, इसलिए वह संघर्ष, युद्ध और विजय की भाषा में बात करता है। धर्म तो प्रकृति के साथ प्रेम—संबंध है; उसमें द्वंद्व कहां? संघर्ष कहा?
दूसरे ढंग से देखा जाए तो विज्ञान पुरुष की दृष्टि है और धर्म स्त्री
की दृष्टि है। विज्ञान आक्रामक है, धर्म अनाक्रामक है। पूर्वीय चित्त धार्मिक है। या अगर तुम मुझे इजाजत दो तो मैं कहूंगा कि जहां भी धार्मिक चित्त है, वह पूर्वीय है; वैज्ञानिक चित्त पश्चिमी है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई आदमी पूरब में पैदा हुआ है या पश्चिम में।
मैं पूरब और पश्चिम का उपयोग दो दृष्टियों की भांति, दो रुझानों की भांति करता हूं; वे मेरे लिए कोई भौगोलिक स्थान नहीं हैं। पश्चिम में पैदा होकर भी तुम पश्चिम के न होकर पूरे के पूरे पूर्वीय हो सकते हो। और पूरब में जन्म लेकर भी तुम्हारा रुझान वैज्ञानिक हो सकता है, तुम चीजों को गणित और बुद्धि की दृष्टि से देख सकते हो।
तंत्र बिलकुल पूर्वाय है। तंत्र सत्य में भागीदार होने का एक ढंग है। तंत्र सत्य के साथ एक होने की, सीमाएं गिरा देने की, अभेद के जगत में गति करने की कीमिया है। मन भेद करता है, सीमाएं बनाता है; मन परिभाषा करता है, क्योंकि मन परिभाषा के बिना, सीमा के बिना नहीं रह सकता। सीमाएं जितनी सुस्पष्ट होंगी, मन के लिए काम करना उतना ही आसान होगा। मन सब कुछ को तोड़ता है, बांटता है, टुकड़े—टुकड़े करता है।
धर्म सीमाओं को विलीन करता है, ताकि उस अभेद में प्रवेश हो सके जहां कोई परिभाषा नहीं है, जहां किसी चीज की कोई सीमा नहीं है, जहां हर एक चीज दूसरी चीज में प्रवेश कर जाती है, जहां हर एक चीज साथ—साथ दूसरी चीज भी है। तुम काट नहीं सकते, अस्तित्व की काट—पीट नहीं हो सकती।
यह अनिवार्य है कि विज्ञान और धर्म के देखने के जो अलग—अलग ढंग हैं, उनके परिणाम भी अलग हों। वैज्ञानिक ढंग से, काट—पीट के रास्ते से तुम मृत अणु—परमाणुओं पर पहुंच जाओगे, क्योंकि जीवन कुछ ऐसा है कि उसे खंडों में नहीं तोड़ा जा सकता। और जैसे ही तुम तोड़ते हो, जीवन विदा हो जाता है। यह ऐसा ही है जैसे कोई संगीत को समझने के लिए एक—एक स्वर को अलग—अलग समझने की चेष्टा करे। अकेला स्वर भी संगीत का अंग है, लेकिन वह संगीत नहीं है। अनेक

यह सेतु बनाना है। तब पूरी बात बिलकुल भिन्न हो जाती है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम इसे किस दृष्टि से देखते हो। विधियों में प्रवेश के पूर्व यह स्मरण रखना बहुत जरूरी है। स्मरण रहे, तंत्र अस्तित्व के प्रति एक प्रेमपूर्ण प्रयास है। यही वजह है कि तंत्र में काम—शक्ति का इतना अधिक उपयोग किया गया है। तंत्र एक प्रेम—विधि है। और यह स्त्री—पुरुष का ही प्रेम नहीं है, यह तुम्हारे और अस्तित्व के बीच प्रेम है। पहली दफा अस्तित्व एक नारी के माध्यम से तुम्हारे लिए अर्थपूर्ण हो जाता है। अगर तुम स्त्री हो तो पहली दफा अस्तित्व तुम्हारे लिए एक पुरुष के माध्यम से अर्थपूर्ण हो जाता है। इसीलिए तंत्र में काम की इतनी चर्चा की गई है, उसका इतना उपयोग किया गया है।
कल्पना करो कि तुम सर्वथा काम—रहित हो; कल्पना करो कि जन्म के दिन ही तुमसे तुम्हारी सब कामवासना हटा ली गई। जरा सोचो कि जिस दिन तुम पैदा हुए, तुमसे तुम्हारी सब कामवासना छीन ली गई।
तुम प्रेम करने में असमर्थ हो जाओगे; तुम किसी के प्रति कोई लगाव, कोई घनिष्ठता, कोई आकर्षण नहीं अनुभव करोगे। तुम्हारे लिए अपने से बाहर निकलना ही मुश्किल होगा। तुम अपने भीतर ही बंद रहोगे। तुम किसी के पास भी नहीं जाओगे, किसी से मिलोगे भी नहीं। अस्तित्व में तुम सब तरफ से बंद बस एक मुर्दा बने रहोगे।
काम—ऊर्जा के जरिए तुम दूसरे से जुड़ते हो। तुम अपने से बाहर जाते हो; कोई दूसरा तुम्हारा केंद्र बनता है। तुम अपने अहंकार को पीछे छोड़ देते हो; तुम किसी से मिलने के लिए अपने अहंकार से अलग होते हो। अगर तुम सच ही किसी से मिलना चाहते हो तो तुम्हें समर्पण करना होगा, वैसे ही अगर दूसरा भी तुमसे मिलना चाहता है तो उसे भी अपने से बाहर आना होगा। प्रेम का चमत्कार तो देखो! देखो कि प्रेम में क्या अदभुत घटता है। वह तुम तक आता है और तुम उस तक जाते हो। तुम उसमें उतर जाते हो और वह तुम में समा जाता है। तुमने अपनी — अपनी जगह बदल ली; अब वह तुम्हारी आत्मा बन जाता है और तुम उसकी आत्मा बन जाते हो। यही साहचर्य है, यही मिलन है। अब तुम दोनों एक वर्तुल बन गए।
यह पहला मिलन है जहां तुम अपने अहंकार में बंद नहीं हो। और यह मिलन ब्रह्मांड के साथ, अस्तित्व के साथ, सत्य के साथ वृहत मिलन का द्वार बन सकता है।
तंत्र बुद्धि पर नहीं, हृदय पर आधारित है। यह कोई बौद्धिक प्रयत्न नहीं है, यह भावुक प्रयत्न है। इसे स्मरण रखो, क्योंकि इससे विधियों को समझने में मदद मिलेगी। अब हम विधियों में प्रवेश करेंगे।

पहली विधि:
मित्र और अजनबी के प्रति मान और अपमान में असमता के बीच समभाव रखो।’

असमता के बीच समभाव रखो', यह आधार है। तुम्हारे भीतर क्या घटित हो रहा है? दो चीजें घटित हो रही हैं। तुम्हारे भीतर कोई चीज निरंतर वैसी ही रहती है; वह कभी नहीं बदलती। शायद तुमने इसका निरीक्षण न किया हो; शायद तुमने अभी इसका साक्षात्कार न किया हो। लेकिन अगर निरीक्षण करोगे तो जानोगे कि तुम्हारे भीतर कुछ है जो निरंतर वही का वही रहता है। उसी के कारण तुम्हारा एक व्यक्तित्व होता है। उसी के कारण तुम अपने को केंद्रित अनुभव करते हो; अन्यथा तुम एक अराजकता हो जाओगे।
तुम कहते हो: 'मेरा बचपन।’ अब इस बचपन का क्या बच रहा है? यह कौन है जो कहता है. 'मेरा बचपन'। यह 'मेरा', 'मुझे', 'मैं' कौन है! तुम्हारे बचपन का तो कुछ भी शेष नहीं बचा है। यदि तुम्हारे बचपन के चित्र तुम्हें पहली दफा दिखाए जाएं तो तुम उन्हें पहचान भी नहीं सकोगे। सब कुछ इतना बदल गया है। तुम्हारा शरीर अब वही नहीं है; उसकी एक कोशिका भी वही नहीं है। शरीर—शास्त्री कहते हैं कि शरीर एक प्रवाह है—सरित—प्रवाह। प्रत्येक क्षण अनेक पुरानी कोशिकाएं मर रही हैं और अनेक नई कोशिकाएं बन रही हैं। सात वर्षों के भीतर तुम्हारा शरीर बिलकुल बदल जाता है। अगर तुम सत्तर साल जीने वाले हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदल जाएगा, पूरा का

142

पूरा बदल जाएगा। प्रत्येक क्षण तुम्हारा शरीर बदल रहा है। और तुम्हारा मन भी बदल रहा है। जैसे तुम अपने बचपन के शरीर का चित्र नहीं
पहचान सकते हो वैसे ही यदि तुम्हारे बचपन के मन का चित्र बनाना संभव
हो तो तुम उसे भी नहीं पहचान पाओगे। तुम्हारा मन तो तुम्हारे शरीर से भी ज्यादा प्रवाहमान है। हर एक क्षण हर एक चीज बदल जाती है। एक क्षण के लिए भी कुछ स्थाई नहीं है, ठहरा हुआ नहीं है। मन के तल पर सुबह तुम कुछ थे; शाम तुम बिलकुल ही भिन्न व्यक्ति हो जाते हो।
जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध से मिलने आता था तो उसके विदा होते समय बुद्ध उससे कहते थे 'स्मरण रहे, जो आदमी मुझसे मिलने आया था वही आदमी वापस नहीं जा रहा है। तुम अब बिलकुल भिन्न आदमी हो। तुम्हारा मन बदल गया है।’
बुद्ध जैसे व्यक्ति से मिलकर तुम्हारा मन वही नहीं रह सकता, उसकी बदलाहट अनिवार्य है—वह बदलाहट चाहे भले के लिए हो या बुरे के लिए। तुम एक मन लेकर वहा गए थे; तुम भिन्न ही मन लेकर वहां से वापस आओगे। कुछ बदल गया है। कुछ नया उसमें जुड़ गया है, कुछ पुराना उससे अलग हो गया है।
और अगर तुम किसी से नहीं भी मिलते हो, बस अपने साथ अकेले रहते हो, तो भी तुम वही नहीं रह सकते। पल—पल नदी बह रही है। हेराक्लाइटस ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं प्रवेश कर सकते हो। यही बात मनुष्य के संबंध में कही जा सकती है. तुम एक ही मनुष्य से दो बार नहीं मिल सकते। असंभव है यह। और इसी तथ्य के कारण—और इसके प्रति हमारे अज्ञान के कारण—हमारा जीवन संताप बन जाता है। क्योंकि तुम्हारी अपेक्षा रहती है कि दूसरा सदा वही रहेगा। तुम किसी लड़की से विवाह करते हो और अपेक्षा करते हो कि वह सदा वही रहेगी। वह वही नहीं रह सकती; अविवाहित थी तो एक बात थी; विवाहित होने पर बात बिलकुल दूसरी हो गई। प्रेमी और चीज है; पति उससे बिलकुल भिन्न चीज है। तुम पति में प्रेमी को नहीं पा सकते; यह असंभव है। प्रेमी प्रेमी है, पति पति है। प्रेमी जिस क्षण पति बनता है, सब कुछ बदल जाता है। लेकिन तुम अपेक्षा किए जाते हो। उससे ही दुख पैदा होता है, अनावश्यक दुख पैदा होता है।
अगर हम इस तथ्य को स्वीकार कर लें कि मन सतत गतिमान है और बदलता रहता
है तो हम अनायास बहुत से दुखों में पड़ने से बच जाएंगे। तुम्हें बस इस बोध की जरूरत है कि मन परिवर्तनशील है। अगर आज कोई तुम्हें प्रेम देता है तो तुम्हें अपेक्षा रहती है कि वह सदा तुम्हें प्रेम करेगा। लेकिन अगले क्षण वह तुम्हें घृणा करता है, और तुम बेचैन हो जाते हो। यह बेचैनी घृणा के कारण नहीं पैदा हुई है, यह पैदा हुई है तुम्हारी प्रेम की अपेक्षा के कारण। वह आदमी बदल गया। और अगर वह जीवित है तो बदलाहट अनिवार्य है।
लेकिन अगर तुम यथार्थ को वैसा ही देखो जैसा वह है तो बेचैनी का कोई कारण नहीं है। जो व्यक्ति एक क्षण पहले प्रेम करता था वह अगले क्षण घृणा भी कर सकता है। लेकिन जरा रुको; अगले क्षण वह फिर प्रेम कर सकता है। जल्दबाजी मत करो, धैर्य रखो। और अगर दूसरा व्यक्ति भी इस परिवर्तन की प्रक्रिया को देख सके तो वह भी बदलाहट से लड़ना छोड़ देगा। बदलाहट होती है, यह स्वाभाविक है।
तुम अपने शरीर को देखो, वह बदल रहा है। तुम अपने मन को समझो, वह भी बदल रहा है। कुछ भी वही का वही नहीं रहता है। यहां तक कि लगातार दो क्षणों के लिए भी कुछ एक सा नहीं रहता है। तुम्हारा व्यक्तित्व धारा की भांति गतिमान है। अगर यही सब कुछ है, और कुछ भी ठहरा हुआ, नित्य और शाश्वत नहीं है, तो कौन स्मरण रखेगा कि यह मेरा बचपन था? बचपन गया, शरीर बदल गया, मन भी बदल गया। तब किसे स्मरण रहता है? कौन है जो बचपन, जवानी और बुढ़ापे को याद रखता है? यह कौन है जो जानता है?
इस जानने वाले को सदा वही रहना चाहिए; इस साक्षी को सदा वही रहना चाहिए। केवल तभी साक्षी को एक परिप्रेक्ष्य हो सकता है; तो ही साक्षी कह सकता है कि यह मेरा बचपन था, यह जवानी थी, यह बुढ़ापा था। तो ही वह कह सकता है कि इस घड़ी में मैं प्रेमपूर्ण था और अगले क्षण मेरा प्रेम घृणा में बदल गया। यह साक्षी चैतन्य, यह जानने वाला सदा वही रहता है।
तो तुममें दो तत्व या दो आयाम साथ—साथ हैं। तुम दोनों हों— परिवर्तनशील भी जो सदा बदलता रहता है, और अपरिवर्तनशील भी जो कभी नहीं

143

बदलता है। और अगर तुम इन दोनों आयामों के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो यह विधि उपयोगी हो जाएगी।
'असमता के बीच समभाव रखो।’
इसे स्मरण रखो, बदलाहट के बीच कुछ वही का वही रहता है तुम परिधि पर वही नहीं रह सकते, लेकिन केंद्र पर वही रहते हो। तो उसे स्मरण रखो जो कभी नहीं बदलता है। स्मरण रखना ही पर्याप्त है, तुम्हें और कुछ करने की जरूरत नहीं है। वह सनातन है, शाश्वत है। तुम उसे बदल नहीं सकते, लेकिन उसे भूल सकते हो। तुम अपने चारों ओर के जगत में इतने तल्लीन हो सकते हो, शरीर और मन में इतने ग्रस्त हो सकते हो, कि केंद्र को बिलकुल भूल ही जाओ। यह केंद्र बदलाहट के बादलों से इस तरह आच्छादित है—और निश्चित ही उसे याद रखना कठिन है जो सदा वही रहता है, क्योंकि उससे तो कोई समस्या होती नहीं; समस्याएं तो बदलाहट से ही पैदा होती हैं।
उदाहरण के लिए, अगर तुम्हारे आस—पास सतत कोई आवाज होती रहे तो तुम उसके प्रति सजग नहीं रहोगे। दीवार घड़ी दिन भर टिक—टिक करती रहती है, और तुम्हें कभी उसका बोध नहीं होता। लेकिन अगर वह अचानक बंद हो जाए तो तुरंत तुम्हारा ध्यान उधर जाता है। जब कोई चीज सदा एक जैसी ही रहती है तो उसकी खबर लेने की जरूरत नहीं रहती, बदलाहट की हालत में मन खबर लेता है। बदलाहट से अंतराल पैदा होता है; सातत्य टूटता है। तुम उसे सदा से सुन रहे थे, इसलिए अलग से सुनने की जरूरत नहीं थी; वह आवाज परिवेश का हिस्सा बन गई थी। लेकिन अब अगर वह घड़ी बंद हो जाए तो तुम्हें उसका बोध होगा; अचानक चेतना अंतराल पर जाएगी।
यह ऐसा ही है जैसे जब तुम्हारा कोई दात टूट जाता है तो जीभ निरंतर उसी टूटे दात के रिक्त स्थान पर जाती है। जब तक दात था, जीभ ने कभी उसकी खबर नहीं ली। अब दात नहीं है; उसकी खाली जगह भर है। और अब सारा दिन तुम्हारे रोकने के बावजूद जीभ उसी खाली जगह पर जाती है। क्यों? क्योंकि कोई चीज अब नहीं है जो वहा थी; कुछ बदल गया, कुछ नया प्रवेश कर गया।
जब भी कुछ नया प्रवेश करता है, तुम सजग हो जाते हो। उसके कई कारण हैं।
यह एक सुरक्षा—व्यवस्था है, यह तुम्हारे जीवन के लिए, जीवित रहने के लिए जरूरी है। जब कोई चीज बदलती है तो तुम्हें उसके प्रति सजग हो जाना पड़ता है। क्योंकि बदलाहट खतरनाक हो सकती है; तुम्हें उसकी फिक्र करनी होगी। और तुम्हें नई स्थिति के साथ फिर समायोजन करना पड़ेगा।
लेकिन अगर कोई चीज वैसी ही रहे जैसी थी तो उसके प्रति सजग होने की जरूरत नहीं पडती। और यह नित्य तत्व, जिसे हिंदू आत्मा कहते हैं, आरंभ से ही — अगर कोई आरंभ है—तुम्हारे साथ है। और यह आत्मा अंत तक साथ रहने वाली है — अगर कोई अंत कभी होगा। वह सदा से, सनातन से अपरिवर्तित है; इसलिए तुम उसके प्रति सजग कैसे हो सकते हो? चूंकि यह नित्य है, शाश्वत है, सदा सर्वदा वही है, इसीलिए तुम उसे चूक रहे हो।
तुम शरीर की खबर लेते हो, तुम मन की खबर लेते हो, क्योंकि वे बदलते रहते हैं। और क्योंकि तुम उन पर ध्यान देते हो, इसलिए तुम सोचने लगते हो कि मैं शरीर हूं कि मैं मन हूं। तुम उन्हें ही जानते हो, इसलिए उनके साथ तादात्म्य कर लेते हो।
समस्त आध्यात्मिक साधना अनित्य के बीच नित्य की खोज है, परिवर्तन के बीच शाश्वत की खोज है, उसकी खोज है जो सदा—सर्वदा वही रहता है। वही तुम्हारा केंद्र है। और अगर तुम उस केंद्र को स्मरण रख सको तो यह विधि बहुत आसान है। या अगर तुम इस विधि को साध सको तो उसका स्मरण आसान हो जाएगा। दोनों छोरों से यात्रा हो सकती है।
इस विधि का प्रयोग करो। यह विधि कहती है: 'मित्र और अजनबी के प्रति, असमता के बीच समभाव रखो।’
मित्र और शत्रु या अजनबी के प्रति असमानता में भी समभाव रखो। क्या अर्थ है इसका? यह विरोधाभासी मालूम पड़ता है। एक तरह से तो तुम्हें बदलना होगा, क्योंकि अगर तुम्हारा मित्र मिलने आता है तो उससे भिन्न ढंग से मिलना होगा, और अगर शत्रु मिलने आता है तो भिन्न ढंग से मिलना होगा। किसी अजनबी से तुम इस तरह कैसे मिल सकते हो जैसे कि तुम उसे जानते हो! ऐसा तुम

144

'मान और अपमान में......।’
कौन सम्मानित होता है और कौन अपमानित होता है? तुम? कभी नहीं। जो सतत बदल रहा है और जो तुम नहीं हो, सिर्फ वही मान—अपमान अनुभव करता है। कोई तुम्हारा सम्मान करता है। और अगर तुमने समझा कि यह व्यक्ति मेरा सम्मान कर रहा है, तो तुम कठिनाई में पड़ोगे। वह तुम्हें नहीं, तुम्हारी किसी खास अभिव्यक्ति को, किसी रूप विशेष को सम्मानित कर रहा है। वह तुम्हें कैसे जान सकता है? तुम स्वयं अपने को नहीं जानते हो। वह तुम्हारे सतत बदलते व्यक्तित्व के किसी रूप विशेष का सम्मान कर रहा है; वह तुम्हारी किसी अभिव्यक्ति का सम्मान कर रहा है। तुम दयावान हो, प्रेमपूर्ण हो; वह उसका सम्मान कर रहा है। लेकिन यह दया, यह प्रेम परिधि पर है; अगले क्षण तुम प्रेमपूर्ण नहीं रहोगे, अगले क्षण तुम घृणा से भर सकते हो। हो सकता है फूल न रहें; काटे ही कांटे हों। तुम इतने प्रसन्न न रहो, उदास और दुखी होओ। तुम कठोर हो सकते हो, क्रोध में हो सकते हो। तब वह तुम्हारा अपमान करेगा। और हो सकता है कि फिर तुम्हारा प्रेमपूर्ण रूप प्रकट हो जाए। दूसरे लोग तुम्हारे संपर्क में नहीं, तुम्हारे विभिन्न रूपों के संपर्क में आते हैं।
स्मरण रहे, लोग तुमको मान और अपमान नहीं देते हैं। वे यह कैसे कर सकते हैं जब कि वे तुम्हें जानते ही नहीं हैं? जब तुम खुद भी अपने को नहीं जानते हो तो वे कैसे जानेंगे? उनके अपने नियम हैं, उनके अपने सिद्धांत हैं, उनके अपने मापदंड और मानक हैं। उनकी अपनी कसौटियां हैं। वे कहते हैं कि अगर कोई आदमी ऐसा होगा तो हम उसे सम्मान देंगे और अगर वैसा होगा तो अपमान देंगे। वे अपनी कसौटियों के मुताबिक चलते हैं। और तुम उनकी कसौटियों में कभी नहीं जांचे जा सकते, केवल तुम्हारी अभिव्यक्तियां जांची जा सकती हैं। तो वे एक दिन तुम्हें पापी कह सकते हैं और दूसरे दिन साधु कह सकते हैं। आज वे तुम्हें महात्मा कह सकते हैं, और कल वे तुम्हारे खिलाफ हो सकते हैं, तुम्हें पत्थर मार सकते हैं। यह क्या है? वे तुम्हारी परिधि से परिचित होते हैं, वे कभी तुमसे परिचित नहीं होते। यह स्मरण रहे कि वे जो कुछ भी कह रहे हैं, वह तुम्हारे संबंध में नहीं है। तुम बाहर छूट जाते हो; तुम परे रह जाते हो। उनकी निंदा, उनकी प्रशंसा, वे जो भी करते हैं, उसका तुम्हारे साथ कोई भी संबंध नहीं है।
मैं तुम्हें एक झेन कथा कहता हूं। एक युवा भिक्षु क्योटो नगर के पास रहता था। वह सुंदर था, युवा था, और सारा नगर उससे प्रसन्न था। सब लोग उसका सम्मान करते थे। वे उसे महान संत मानते थे। लेकिन एक दिन सब उलट—पलट हो गया।
गांव में एक लड़की गर्भवती हो गई। उसने अपने मां—बाप से कहा कि उसके गर्भ के लिए यह साधु ही जिम्मेवार है। और सारा गाव उसके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। लोग आए और उन्होंने उसके झोपड़े में आग लगा दी। सुबह का समय था, और बड़ी सर्द सुबह थी—जाडे की सुबह। उन्होंने नवजात शिशु को उस भिक्षु के ऊपर फेंक दिया। और लड़की के पिता ने भिक्षु से कहा: 'यह तुम्हारा बच्चा है, इसे सम्हालो।’ भिक्षु ने इतना ही कहा: 'ऐसा है क्या?' और तभी बच्चा रोने लगा। तो भिक्षु भीड़ को भूलकर बच्चे को सम्हालने में लग गया।
भिक्षु के पास दूध खरीदने के लिए पैसे नहीं थे। तो वह नगर में बच्चे
के लिए भीख मांगने गया। लेकिन अब उसे कौन भीख देता? कुछ क्षण पहले जो व्यक्ति महात्मा था, वही अब महापापी हो गया था। उसे भीख कौन देता? वह जहां भी गया, लोगों ने अपने घरों के दरवाजे बंद कर लिए। सब जगह उसे निंदा और गालियां ही मिलीं।
आखिर में भिक्षु उसी घर के सामने पहुंचा जो उस बच्चे की मा का घर था।
वह लड़की बहुत संताप में थी, तभी उसने बच्चे के रोने की आवाज सुनी। द्वार पर खड़ा भिक्षु कह रहा था: 'मुझे कुछ मत दो, मैं पापी हूं। लेकिन यह बच्चा तो पापी नहीं है, इसके लिए थोड़ा दूध दे दो।’ तब उस लड़की से नहीं रहा गया, उसने कबूल किया कि बच्चे के असली पिता को छिपाने के लिए उसने इस भिक्षु का नाम ले दिया था। वह बिलकुल बेकसूर है।
अब पूरा नगर फिर साधु के पास जमा हो गया। लोग उसके पैरों पर गिरकर क्षमा मांगने लगे। और लड़की के पिता ने आकर भिक्षु से बच्चे को वापस ले

147

लिया और आंसुओ से भरी आंखों से कहा: 'आपने पहले ही क्यों नहीं कहा? आपने सुबह ही इनकार क्यों नहीं किया? यह बच्चा आपका नहीं है।’ भिक्षु ने फिर इतना ही कहा. 'ऐसा है क्या?'
सुबह भी भिक्षु ने यही कहा था: 'ऐसा है क्या? यह बच्चा मेरा है?' और दोपहर भी उसने यही कहा: 'ऐसा है क्या? यह बच्चा मेरा नहीं है?'
इसी तरह तुम्हें इस सूत्र को जीवन में लागू करना है। मान और अपमान में तुम्हें असमता के बीच समभाव रखना है। परिधि पर कुछ भी घटे, लेकिन अंतरस्थ केंद्र को वही का वही रहना चाहिए। परिधि तो बदलेगी ही, लेकिन तुम्हें नहीं बदलना चाहिए। और क्योंकि तुम दोनों हो—परिधि और केंद्र—इसीलिए कहा गया है कि असमता में समभाव रखो।
और तुम इस विधि का प्रयोग सभी विरोधी तत्वों में कर सकते हो: प्रेम— घृणा में, गरीबी—अमीरी में, सुविधा—असुविधा में समभाव रखो। इतना ही जानो कि सब बदलाहट परिधि पर है; तुम्हारे केंद्र पर कोई बदलाहट नहीं हो सकती। इसलिए तुम अनासक्त रह सकते हो। और यह अनासक्ति आरोपित नहीं है। तुम जानते हो कि ऐसा ही है। यह अनासक्ति बाहर से नहीं लादी गई है; तुमने अनासक्त रहने की चेष्टा नहीं की है।
अगर तुम अनासक्त रहने का प्रयत्न करते हो तो तुम परिधि पर ही हो; तुम्हें अभी केंद्र का कुछ पता नहीं है। केंद्र अनासक्त है; वह सदा अनासक्त है। वह पार है; वह सदा अस्पर्शित है। नीचे कुछ भी घटे, यह केंद्र सदा अछूता रहता है, सदा कुंवारा रहता है।
तो परस्पर विरोधी स्थितियों में इस विधि का प्रयोग करो; और अपने भीतर उसे अनुभव करते चलो जो सदा समान है। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो अपने ध्यान को उस बिंदु पर ले जाओ जहां तुम सिर्फ उस आदमी को सुन रहे हो, बिना किसी प्रतिक्रिया के बस सुन रहे हो। यह अपमान की स्थिति है। फिर कोई तुम्हारा सम्मान कर रहा। उसे भी', सिर्फ सुनो। निंदा—प्रशंसा, मान— अपमान, सब में सिर्फ सुनो। तुम्हारी परिधि बेचैन होगी, उसे भी देखो। केवल देखो, बदलने की कोशिश मत करो। उसे देखो, और स्वयं केंद्र से जुड़े रहो। तब तुम्हें वह अनासक्ति उपलब्ध होगी जो आरोपित नहीं है, जो सहज है, स्वाभाविक है।
और एक बार तुम्हें इस सहज अनासक्ति की प्रतीति हो जाए तो फिर कुछ भी तुम्हें बेचैन नहीं कर सकेगा। तुम शात बने रहोगे। संसार में कुछ भी होगा, तुम अकंप रहोगे। तब अगर कोई तुम्हारी हत्या भी करेगा तो सिर्फ शरीर स्पर्शित होगा, तुम अस्पर्शित रहोगे। तुम सबके पार रहोगे। और यह पार रहना ही तुम्हें अस्तित्व में प्रवेश देगा, यह पार रहना ही तुम्हें आर्नद में, शाश्वत में, सत्य में प्रतिष्ठित करेगा—जो सदा है, जो अमृत है, जो नित्य जीवन है। तुम उसे परमात्मा कह सकते हो, या जो भी नाम देना चाहो। तुम उसे निर्वाण कह सकते हो, या और कुछ। लेकिन जब तक तुम परिधि से केंद्र पर नहीं गति करते और जब तक तुम्हें अपने भीतर के शाश्वत का बोध नहीं होता, तब तक तुमने धर्म को नहीं जाना है, तब तक तुमने जीवन को नहीं जाना है। तब तक तुम चूक रहे हो, सब कुछ चूक रहे हो। और यह —संभव है, जीवन के परम आनंद को चूकना संभव है।
शंकर कहते हैं कि मैं उस व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं जो जानता है कि क्या अनित्य.है और क्या नित्य है, क्या चलायमान है और क्या अचल है। भारतीय दर्शन इसे ही विवेक कहता है। परिवर्तन और सनातन की पहचान ही विवेक है, बोध है।
तुम जो कुछ भी कर रहे हो, उसमें इस सूत्र का प्रयोग बड़ी गहराई के साथ
और बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। तुम्हें भूख लगी है; इसमें दोनों स्थितियों को स्मरण रखो। भूख की प्रतीति परिधि को होती है, क्योंकि परिधि को ही भोजन की जरूरत है, ईंधन की जरूरत है। तुम्हें भोजन की कोई जरूरत नहीं है; तुम्हें ईंधन की कोई जरूरत नहीं है। यह शरीर की जरूरत है।
स्मरण रहे, जब भी भूख लगती है, शरीर को लगती है, तुम बस उसके जानने वाले हो। अगर तुम नहीं होते तो भूख नहीं जानी जा सकती थी। और अगर शरीर नहीं होता तो भूख ही नहीं लगती। तुम्हारी अनुपस्थिति से भूख का ज्ञान नहीं हो सकता है, क्योंकि शरीर को ज्ञान नहीं होता है। शरीर को भूख तो लग सकती है, लेकिन

148

उसे उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। और तुम जानते तो हो, लेकिन तुम्हें भूख नहीं लगती है।
तो कभी मत कहो कि मुझे भूख लगी है; सदा यही कहो कि मैं जानता हूं कि मेरा शरीर भूखा है। अपने जानने पर जोर दो। यह विवेक है। तुम के हो रहे हो। कभी मत कहो कि मैं का हो रहा हूं इतना ही कहो कि यह शरीर का हो रहा है। और तब मृत्यु के क्षण में भी तुम जानोगे कि मैं नहीं मर रहा हूं मेरा शरीर मर रहा है; मैं शरीर बदल रहा हूं घर बदल रहा हूं। और अगर यह विवेक प्रगाढ़ हो तो किसी दिन अचानक बुद्धत्व घटित हो जाएगा।

दूसरा सूत्र:
यह जगत परिवर्तन का है परिवर्तन ही परिवर्तन का परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।
पहली बात तो यह समझने की है कि तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है; तुम्हारे अतिरिक्त, जानने वाले के अतिरिक्त सब कुछ परिवर्तन है। क्या तुमने कोई ऐसी चीज देखी है जो परिवर्तन न हो, जो परिवर्तन के अधीन न हो। यह सारा संसार परिवर्तन की घटना है।
हिमालय भी बदल रहा है। हिमालय का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक कहते हैं कि हिमालय बढ़ रहा है, बड़ा हो रहा है। हिमालय संसार का सबसे कम उम्र का पर्वत है; वह अभी बच्चा ही है और बढ़ रहा है। वह अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है, वह अभी उस अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है जहां पहुंचकर हास या गिरावट शुरू होती है। हिमालय अभी बढ़ रहा है। अगर तुम उसकी तुलना विंध्याचल से करोगे तो उसके सामने हिमालय बच्चे जैसा है। विंध्याचल संसार के सबसे पुराने पर्वतों में है, कुछ तो उसे दुनिया का सबसे पुराना पर्वत मानते हैं। सदियों से वह अपने बुढ़ापे के कारण क्षीण हो रहा है, मर रहा है।
तो इतना स्थिर और अडिग और दृढ़ मालूम पड़ने वाला हिमालय भी बदल रहा है।
वह बस पत्थरों की नदी जैसा है। पत्थर होने से कोई फर्क नहीं पड़ता है, पत्थर भी प्रवाहमान है, बह रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से सब कुछ बदल रहा है। कुछ चीजें ज्यादा बदलती मालूम पड़ती हैं और कुछ चीजें कम बदलती मालूम पड़ती हैं, लेकिन ऐसा सापेक्षत: है।
कोई भी चीज, जिसे तुम जान सकते हो, बदलाहट के बिना नहीं है। मेरी बात खयाल में रहे: जिसे तुम जान सकते हो ऐसी कोई भी वस्तु नित्य नहीं है। जानने वाले के अतिरिक्त कुछ भी नित्य नहीं है, शाश्वत नहीं है। लेकिन जानने वाला सदा पीछे है। वह सदा जानता है; वह कभी जाना नहीं जाता। वह कभी आब्जेक्ट नहीं बन सकता, वह सदा सब्जेक्ट ही रहता है। तुम जो कुछ भी करते हो या जानते हो, जानने वाला सदा उससे पीछे है। तुम उसे नहीं जान सकते हो।
और जब मैं कहता हूं कि तुम जानने वाले को नहीं जान सकते, तो इससे परेशान मत होओ। जब मैं कहता हूं कि तुम उसे नहीं जान सकते हो तो उसका इतना ही मतलब है कि तुम उसे विषय की तरह नहीं जान सकते। मैं तुम्हें देखता हूं लेकिन मैं उसी तरह अपने को कैसे देख सकता हूं? यह असंभव है। क्योंकि ज्ञान के लिए दो चीजें जरूरी हैं—ज्ञाता और ज्ञेय। तो जब मैं तुम्हें देखता हूं तो तुम ज्ञेय हो और मैं ज्ञाता हूं और दोनों के बीच ज्ञान सेतु की तरह है। लेकिन ज्ञान का यह सेतु कहां बनेगा जब मैं अपने को ही देखता हूं जब मैं अपने को ही जानने की कोशिश करता हूं? वहां तो केवल मैं ही हूं पूरी तरह अकेला मैं हूं। दूसरा किनारा बिलकुल अनुपस्थित है। फिर सेतु कहा निर्मित किया जाए? स्वयं को जाना कैसे जाए?
तो आत्मज्ञान एक नेति—नेति प्रक्रिया है। तुम अपने को सीधे—सीधे नहीं जान सकते; तुम सिर्फ ज्ञान के विषयों को हटाते जा सकते हो। ज्ञान के विषयों को एक—एक करके छोड़ते चले जाओ। और जब ज्ञान का कोई विषय न रह जाए, जब जानने को कुछ भी न रह जाए, सिर्फ एक शून्य, एक खालीपन रह जाए—और यही ध्यान है, ज्ञान के विषयों को छोड़ते जाना—तब एक क्षण आता है जब चेतना तो है लेकिन जानने के लिए कुछ नहीं है; जानना तो है, लेकिन जानने को कुछ नहीं है। तब जानने की सहज—शुद्ध ऊर्जा रहती है, लेकिन जानने को कुछ भी नहीं बचता है। कोई विषय नहीं रहता है। उस अवस्था में, जब जानने को कुछ नहीं रहता, तुम एक अर्थों में स्वयं को जानते हो, अपने को जानते हो।

149

लेकिन यह ज्ञान अन्य सब ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। दोनों के लिए एक ही शब्द का उपयोग करना भ्रामक है। इसीलिए अनेक रहस्यवादियों ने कहा है कि आत्मज्ञान शब्द विरोधाभासी है। ज्ञान सदा दूसरे का होता है, अत: आत्मज्ञान संभव नहीं है। जब दूसरा नहीं होता है तो कुछ होता है, तुम उसे आत्मज्ञान कह सकते हो, लेकिन यह शब्द भ्रामक है।
तो तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है। ये जो दीवारें हैं, ये भी निरंतर बदल रही हैं। और भौतिकशास्त्र भी इसका समर्थन करता है। जो दीवार स्थाई मालूम पड़ती है, ठहरी हुई लगती है, वह भी प्रतिपल बदल रही है। सब एक महाप्रवाह है। एक—एक अणु बह रहा है, एक—एक परमाणु बह रहा है। प्रत्येक चीज बह रही है। लेकिन उसकी गति इतनी तीव्र है कि उसका पता नहीं चलता। यही कारण है कि दीवार ठहरी हुई मालूम पड़ती है। सुबह वह ऐसी ही लगती थी, दोपहर भी वह ऐसी ही लगती थी, और शाम में भी ऐसी ही लगती थी। कल भी वह ऐसी ही थी, और आने वाले कल भी वह ऐसी ही होगी। लेकिन यह बात सच नहीं है। तुम्हारी आंखें उसकी गति को पकड़ने में समर्थ नहीं हैं।
यह पंखा है। यदि पंखा बहुत तेजी से चल रहा हो तो बीच की खाली जगह तुम्हें नहीं दिखाई पड़ेगी; एक वर्तुल जैसा दिखाई पड़ेगा। खाली जगह इसलिए नहीं दिखाई देती, क्योंकि पंखे की गति तीव्र है। और अगर गति बहुत तेज हो जाए तो तुम्हें यह भी नहीं दिखाई देगा कि पंखा चल रहा है। तुम्हें कोई गति नहीं पता चलेगी, पंखा ठहरा हुआ मालूम पड़ेगा; यहां तक कि तुम उसे छू भी सकते हो। वह ठहरा मालूम होगा, और तुम खाली जगह में हाथ भी नहीं ले जा सकते। क्योंकि तुम्हारा हाथ उस गति से नहीं चल सकता कि खाली जगह में जा सके। तुम्हारा हाथ खाली जगह में जाए, इसके पहले ही दूसरा डैना आ पहुंचेगा, और तुम्हें सदा डैना ही छूने को मिलता रहेगा। और उसकी गति इतनी तेज होगी कि पंखा ठहरा हुआ मालूम पड़ेगा। तो जो चीजें ठहरी हुई हैं वे दरअसल बहुत तेज गति कर रही हैं। यही कारण है कि ऐसा आभास होता है कि वे ठहरी हुई हैं।
यह सूत्र कहता है कि सभी चीजें बदल रही हैं: 'यह जगत परिवर्तन का है......।’
इस सूत्र पर ही बुद्ध का समस्त दर्शन खड़ा है। बुद्ध कहते हैं कि प्रत्येक चीज बहाव है, बदल रही है, क्षणभंगुर है। और यह बात प्रत्येक व्यक्ति को जान लेनी चाहिए। बुद्ध का सारा जोर इसी एक बात पर है; उनकी पूरी दृष्टि इसी बात पर आधारित है। वे कहते हैं कि यह सतत स्मरण रहे कि सब परिवर्तन ही परिवर्तन है। और जब सब परिवर्तन है तो तुम उससे आसक्त कैसे हो सकते हो?
तुम्हें एक चेहरा दिखाई देता है, बहुत सुंदर है। और जब तुम उस सुंदर रूप को देखते हो तो भाव होता है कि यह रूप सदा ही ऐसा रहेगा। इस बात को ठीक से समझ लो। ऐसी अपेक्षा कभी मत करो कि यह सौंदर्य हमेशा रहेगा। और अगर तुम जानते हो कि यह रूप तेजी से बदल रहा है, कि यह इस क्षण सुंदर है और अगले क्षण कुरूप हो जा सकता है, तो फिर आसक्ति कैसे पैदा होगी? असंभव है। एक शरीर को देखो, वह जीवित है; अगले क्षण वह मृत हो सकता है। अगर तुम परिवर्तन को समझो तो सब व्यर्थ है।
बुद्ध ने अपना राजमहल छोड़ दिया, परिवार छोड़ दिया, सुंदर पत्नी छोड़ दी, प्यारा पुत्र छोड़ दिया। और जब किसी ने पूछा कि क्यों छोड़ रहे हैं तो उन्होंने कहा. 'जहां कुछ भी स्थाई नहीं है वहा रहने का क्या प्रयोजन? बच्चा एक न एक दिन मर जाएगा।' बच्चे का जन्म उसी रात हुआ था जिस रात बुद्ध ने महल छोड़ा। उसके जन्म के कुछ घंटे ही हुए थे।
बुद्ध उसे अंतिम बार देखने के लिए अपनी पत्नी के कमरे में गए। पत्नी
की पीठ दरवाजे की तरफ थी और वह बच्चे को अपनी बांहों में लेकर सोई थी। बुद्ध ने अलविदा कहना चाहा, लेकिन वे झिझके। उन्होंने कहा. 'क्या प्रयोजन है?' एक क्षण उनके मन में यह विचार कौंधा कहा: 'क्या प्रयोजन हैँ? सब तो बदल रहा है। आज बच्चा पैदा हुआ है, कल वह मरेगा। एक दिन पहले वह नहीं था, अभी वह है, और एक दिन फिर नहीं हो जाएगा। तो क्या प्रयोजन है? सब कुछ तो बदल रहा है।’ वे मुड़े और विदा हो गए।
जब किसी ने पूछा कि आपने क्यों सब कुछ छोड़ दिया? बुद्ध ने कहा: 'मैं उसकी खोज में हूं जो कभी नहीं बदलता, जो शाश्वत है। यदि मैं परिवर्तनशील

150

सब तरफ परिवर्तन है। यह परिवर्तन पृष्ठभूमि बन जाता है, कंट्रास्ट बन जाता है। और तुम शिथिल होते हो, विश्राम में होते हो, इसलिए तुम्हारे मन में भविष्य नहीं होता, भविष्य के विचार नहीं होते। तुम यहां और अभी होते हो, यह क्षण ही सब कुछ होता है। सब कुछ बदल रहा है—और अचानक तुम्हें अपने भीतर उस बिंदु का बोध होता है जो कभी नहीं बदला है।
'परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।’
इसका यही अर्थ है। लड़ो मत। मृत्यु के द्वारा अमृत को जान लो; मृत्यु
के द्वारा मृत्यु को मर जाने दो। उससे लड़ाई मत करो।
तंत्र की दृष्टि को समझना कठिन है। कारण यह है कि हमारा मन कुछ करना चाहता है, और तंत्र है कुछ न करना। तंत्र कर्म नहीं, पूर्ण विश्राम है। लेकिन यह एक सर्वाधिक गुह्य रहस्य है। और अगर तुम इसे समझ सको, अगर तुम्हें इसकी प्रतीति हो जाए, तो तुम्हें किसी अन्य चीज की चिंता लेने की जरूरत न रही। यह अकेली विधि तुम्हें सब कुछ दे सकती है।
तब तुम्हें कुछ करने की जरूरत न रही, क्योंकि तुमने इस रहस्य को जान लिया कि परिवर्तन से परिवर्तन का अतिक्रमण हो सकता है, मृत्यु से मृत्यु का अतिक्रमण हो सकता है, काम से काम का अतिक्रमण हो सकता है, क्रोध से क्रोध का अतिक्रमण हो सकता है। अब तुम्हें यह कुंजी मिल गई कि जहर से जहर का अतिक्रमण हो सकता है।
आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
चवालीसवां प्रवचन

आधुनिक मनुष्य प्रेम में असमर्थ क्यों

पहला प्रश्न:
तंत्र प्रेम कीं विधि है, अपने हम वक्तव्य के संदर्भ में कृपया हमें समझाएं कि आधुनिक मनुष्य प्रेम करने में असमर्थ क्यों हो गया है?
प्रेम सहज है; उसे नियंत्रित नहीं किया जा सकता। तुम प्रेम कर नहीं सकते; इस संबंध में तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम जितना ही करोगे, उतना ही चूकोगे। तुम्हें प्रेम को होने देना है। उसके लिए तुम जरूरी नहीं हो; तुम्हारी उपस्थिति ही बाधा है। तुम जितने अनुपस्थित रहोगे उतना अच्छा। जब तुम नहीं होते तो प्रेम होता है।
अनुपस्थित होने की अपनी असमर्थता के कारण आधुनिक पुरुष और स्त्री प्रेम करने में असमर्थ हो गए हैं। वे केवल करने में समर्थ हैं; समूचा आधुनिक चित्त कृत्य पर आधारित है। जो कुछ भी किया जा सकता है उसे आधुनिक मनुष्य अतीत के किसी भी मनुष्य से ज्यादा कुशलता से कर सकता है। जो भी किया जा सकता है उसे हम ज्यादा कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। हमारी सदी सर्वाधिक कुशल व दक्ष सदी है। हमने हर एक चीज को टेक्नीक में बदल दिया है। हमने हर एक चीज को 'कैसे करने' की समस्या में बदल दिया है।
हमने एक आयाम में बहुत विकास किया है; और वह करने का आयाम है। लेकिन इस आयाम को विकसित करने में हमने बहुत कुछ गंवा दिया है। होने की कीमत पर हमने करना सीखा है। इसलिए जो किया जा सकता है उसे हम किसी से भी, अतीत के किसी भी समाज से बेहतर ढंग से कर सकते हैं। लेकिन जब प्रेम का प्रश्न आता है तो समस्या उठ खड़ी होती है, क्योंकि प्रेम किया नहीं जा सकता।
और ऐसा प्रेम के साथ ही नहीं है; हम उन सभी बातों में असमर्थ हो गए हैं
जो करने से नहीं होतीं। उदाहरण के लिए ध्यान है। हम ध्यान में असमर्थ हो गए हैं, ध्यान किया नहीं जा सकता। खेल है; हम उसमें भी असमर्थ हो गए हैं। यह किया नहीं जा सकता। वैसे ही आनंद है, सुख है। हम उनमें भी असमर्थ हो गए हैं, क्योंकि वे भी लाए नहीं जा सकते। वे कृत्य नहीं हैं, तुम उन्हें जबरदस्ती नहीं ला सकते। उलटे तुम्हें अपने को हटाना होगा, अपने को खोना होगा। तब सुख घटित होता है, तब प्रसन्नता आती है, तब प्रेम तुममें प्रवेश करता है। तुम्हारे विदा होने पर ही प्रेम तुम में उतरता है, तुम्हें अभिभूत करता है।
और हम मिटने से, आविष्ट होने से डरते हैं। आधुनिक मनुष्य सब पर अधिकार करना चाहता है, लेकिन वह खुद किसी के अधिकार में नहीं होना चाहता। वह खुद सबका मालिक बनना चाहता है। लेकिन मालिक केवल वस्तुओं का हुआ जा सकता है; प्राणों का नहीं। तुम किसी मकान के मालिक हो सकते हो। तुम किसी मशीन के मालिक हो सकते हो। लेकिन तुम किसी ऐसी चीज के मालिक नहीं हो सकते जो जीवित है, प्राणवान है। जीवन पर मालकियत नहीं की जा सकती; तुम उसे अपने कब्जे में नहीं कर सकते। बल्कि इसके विपरीत तुम्हें ही जीवन के कब्जे में होना है, केवल तभी जीवन से संपर्क हो सकता है।
प्रेम जीवन है। और प्रेम तुमसे बड़ा है, तुम उस पर मालकियत नहीं कर सकते। मैं इस बात को दोहराना चाहूंगा कि प्रेम तुमसे बड़ा है, तुम उस पर अधिकार नहीं जमा सकते। तुम प्रेम की मालकियत स्वीकार कर सकते हो, तुम प्रेम को अपने ऊपर आच्छादित होने दे सकते हो, लेकिन तुम उसे नियंत्रण में नहीं रख सकते।
आधुनिक अहंकार सबको अपने नियंत्रण में रखना चाहता है, और जो उसके नियंत्रण में नहीं आ पाता उससे वह भयभीत हो जाता है। तुम डर जाते हो, तुम दरवाजा बंद कर लेते हो। तुम उस आयाम को बिलकुल छोड़ ही देते हो, क्योंकि भय होता है। वहा तुम्हारा नियंत्रण नहीं चलेगा, प्रेम पर तुम्हारा जोर नहीं चलेगा। और इस सदी के निर्माण में इस प्रवृत्ति का बड़ा योगदान है कि कैसे नियंत्रण किया जाए। सारे संसार में, विशेषकर पश्चिम में यह प्रवृत्ति सक्रिय है कि कैसे प्रकृति को काबू में किया जाए, कैसे ऊर्जा को वश में

154

किया जाए, कैसे सब कुछ को नियंत्रित किया जाए। मनुष्य मालिक बनने के लिए परेशान है।
और तुम मालिक हो भी गए हो, हालाकि तुम उन्हीं चीजों के मालिक हो जिनका मालिक होना संभव है। और साथ—साथ तुम उन चीजों में असमर्थ होते गए हो जिनका मालिक होना संभव नहीं है। तुम धन के मालिक हो सकते हो, लेकिन प्रेम के मालिक नहीं हो सकते। और यही कारण है कि हम सबको वस्तु बनाने में लगे हैं; हम व्यक्तियों को भी वस्तु बना लेते हैं। क्योंकि वस्तु बनाकर ही उन्हें हम अपने कब्जे में रख सकते हैं।
अगर तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम उसके मालिक नहीं हो; कोई भी मालिक नहीं है। दो प्रेमपूर्ण व्यक्तियों में कोई किसी का मालिक नहीं है — न प्रेमी, न प्रेमिका। सच्चाई यह है कि प्रेम उनका मालिक है; दोनों ही उनसे किसी बड़ी शक्ति से आविष्ट हैं—एक विराट ऊर्जा, एक झंझावात ने उन्हें घेर लिया है।
अगर वे एक—दूसरे पर मालकियत करने की कोशिश करेंगे तो वे प्रेम से चूक जाएंगे। तब फिर मालकियत संभव है; तब प्रेमी पति बन जाएगा और प्रेमिका पत्नी बन जाएगी। तब कब्जा हो सकता है; लेकिन अब वे व्यक्ति नहीं रहे, वस्तु हो गए। पति वस्तु है, पत्नी वस्तु है, तब मालकियत संभव है। मगर वे मुर्दा संबंध हैं, कानूनी नाम हैं—जीवंत व्यक्ति नहीं हैं।
मालकियत करने के लिए हम व्यक्तियों को वस्तुओं में बदल देते हैं; और फिर निराशा हाथ आती है। कारण यह है कि हम व्यक्ति पर मालकियत करना चाहते थे, और व्यक्ति पर मालकियत नहीं हो सकती। जब भी तुम किसी व्यक्ति के मालिक बन जाते हो, वह व्यक्ति व्यक्ति नहीं रह जाता, वह मृत वस्तु बन जाता है। और तुम मृत वस्तु से तृप्त नहीं हो सकते हो। इस विरोधाभास को देखो। व्यक्ति ही तुम्हें तृप्त कर सकता है, वस्तु नहीं। लेकिन तुम्हारा मन मालकियत करना चाहता है, इसलिए तुम उन्हें वस्तुओं में बदल देते हो। लेकिन वस्तुओं से तृप्ति मिलनी संभव नहीं है। और तब निराशा ही निराशा हाथ आती है। मालकियत करने की, अधिकार जमाने की प्रवृत्ति ने प्रेम करने की क्षमता को नष्ट कर दिया है।
मालकियत की भाषा से मत सोचो, बल्कि डूब जाने की भाषा में सोचो। समर्पण
का वही अर्थ है, डूब जाना। समर्पण में तुम अपने को अपने से किसी बड़ी शक्ति के हाथों में सौंप देते हो, उससे आविष्ट हो जाते हो। तब तुम्हारा कोई वश नहीं चलेगा; तब तुमसे कोई बड़ी शक्ति तुम्हें अपने हाथों में ले लेगी। तब किधर जाना है, कहा जाना है, यह तुम्हारे हाथ में नहीं रहा। तब भविष्य अज्ञात है; अब तुम सुनिश्चित नहीं हो।
अपने से बड़ी शक्ति के साथ चलने में तुम असुरक्षित और भयभीत महसूस करते हो। और अगर तुम भयभीत हो, असुरक्षित हो, तो अच्छा है कि बड़ी शक्तियों के साथ मत चलो; तब अपने से छोटी शक्तियों के साथ रहना ही बेहतर है। छोटी शक्तियों के साथ रहकर तुम मालिक रह सकते हो, पहले से अपना गंतव्य निश्चित कर सकते हो। और तब तुम्हें तुम्हारा गंतव्य उपलब्ध भी हो जा सकता है। लेकिन ध्यान रहे, यह उपलब्धि कोई उपलब्धि नहीं है; उससे तुम्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। तुमने जीवन व्यर्थ ही गंवाया।
प्रेम का रहस्य, प्रार्थना का रहस्य, या किसी भी तृप्ति देने वाली चीज
का रहस्य समर्पण में है, अपने को छोड़ने की क्षमता में है। और प्रेम की समस्या इसीलिए है क्योंकि मनुष्य की यह क्षमता खो गई है। और दूसरे कारण भी हैं, लेकिन यह आधारभूत कारण है। पहला कारण यह है कि बुद्धि पर, तर्क पर अतिशय जोर दिया जाता है। इसलिए मनुष्य एकांगी हो गया है, तुम्हारा मस्तिष्क बड़ा हो गया है और हृदय अत्यंत उपेक्षित रह गया है। और प्रेम करना मस्तिष्क की क्षमता नहीं है। प्रेम का स्रोत भिन्न है, उसका स्थान भिन्न है। प्रेम तुम्हारे हृदय में बसता है। प्रेम तुम्हारा भाव है, तर्क नहीं। लेकिन सारी आधुनिक शिक्षा बुद्धि और तर्क पर, मस्तिष्क और सोच—विचार पर आधारित है। वहा हृदय की चर्चा तक नहीं है; असल में हृदय वहा अस्वीकृत है।
हृदय एक कपोल—कल्पना मात्र है।
लेकिन ऐसा नहीं है; हृदय एक यथार्थ है, सत्य है।

155

इस बात को इस ढंग से देखो। अगर आरंभ से ही किसी बच्चे को मस्तिष्क का, बुद्धि का, तर्क का प्रशिक्षण, बौद्धिक प्रशिक्षण दिए बिना ही बड़ा किया जाए तो क्या उसको बुद्धि होगी? उसे बुद्धि नहीं हो सकती है।
ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं। कभी—कभी ऐसा हुआ कि मनुष्य का बच्चा भेड़ियों द्वारा बड़ा किया गया। अभी सिर्फ दस साल पहले एक बच्चा जंगल में पाया गया; उसे भेड़ियों ने पाला—पोसा था। उसकी उम्र चौदह साल थी। वह दो पांवों पर खड़ा नहीं हो सकता था; वह चार पांवों से चलता था। वह एक शब्द भी नहीं बोल सकता था; वह भेड़ियों की तरह गुर्राता था। वह हर तरह से भेड़िया था; और वह चौदह वर्ष का था।
जिन लोगों ने उसको पकड़ा था उन्होंने उसका नाम राम रख दिया था। उस बच्चे को अपना नाम सीखने में छह महीने लगे। और एक वर्ष के भीतर वह बच्चा मर गया। जो मनसविद उसके साथ मेहनत कर रहे थे उनका अनुमान है कि मस्तिष्क पर अतिशय तनाव पड़ने के कारण उसकी मृत्यु हुई। दो पांवों पर खड़ा करने का प्रशिक्षण, अपना नाम याद रखने के लिए स्मृति का प्रशिक्षण, उसे मनुष्य बनाने की चेष्टा, इन सब चीजों ने उसे मारा। जब वह जंगल से लाया गया था तब वह शरीर से तगडा था; किसी भी मनुष्य से ज्यादा स्वस्थ था। वह ठीक पशु जैसा था, लेकिन प्रशिक्षण ने उसकी जान ले ली।
तमाम कोशिशें की गईं कि जब तुम पूछो कि तुम्हारा नाम क्या है? तो वह कह सके कि मेरा नाम राम है। इतनी ही उसकी कुल बुद्धि थी। छह महीनों तक सतत प्रशिक्षण देने के बाद, सब तरह के भय और लोभ देने के बाद वह बच्चा अपनी बुद्धि का इतना ही प्रमाण दे सका कि वह राम कह सका।
क्या हुआ? अगर कोई मंगल ग्रह का रहने वाला इस बच्चे को मिलता तो वह यही समझता कि मनुष्यता के पास मन नहीं है, मस्तिष्क नहीं है, बुद्धि नहीं है। यही बात हृदय के साथ घटित हुई है। प्रशिक्षण के बिना हृदय ऐसा है कि नहीं के बराबर है। हृदय बिलकुल ही उपेक्षित रहा है। नतीजा यह हुआ कि तुम्हारी संपूर्ण जीवन—ऊर्जा मस्तिष्क में समा जाने को विवश हो गई; वह हृदय की तरफ बहती ही नहीं। और प्रेम हृदय—केंद्र का काम है।
यही कारण है कि आधुनिक मनुष्य प्रेम करने में असमर्थ हो गया है; आधुनिक मनुष्य हृदय के मामलों में असमर्थ हो गया है। वह हिसाब लगाता है, और प्रेम हिसाब—किताब नहीं है। वह गणित जानता है, और प्रेम गणित नहीं है। वह तर्क की भाषा में सोचता है, और प्रेम अतर्क्य है। वह हर एक चीज को बुद्धि—संगत बनाने की कोशिश करता है; वह जो भी करता है उसमें बुद्धि का समर्थन पाना चाहता है, और प्रेम बुद्धि की नहीं सुनता है।
असल में जब तुम प्रेम में पड़ते हो तो तुम बुद्धि को पूरी तरह ताक पर धर देते हो। इसीलिए हम कहते हैं कि व्यक्ति प्रेम में गिर गया। वह कहां से गिरता है? वह मस्तिष्क से नीचे हृदय में गिरता है। हम यह निंदा से कहते हैं कि 'प्रेम में गिर गया', क्योंकि बुद्धि प्रेम को निंदा के बिना नहीं देख सकती; उसके लिए प्रेम गिरना है। लेकिन प्रेम वस्तुत: क्या है? पतन है या उत्थान है? तुम प्रेम से बढ़ते हो या घटते हो? तुम विस्तीर्ण होते हो या सिकुड़ते हो?
प्रेम से तुम बढ़ते हो, विस्तीर्ण होते हो। प्रेम से तुम्हारी चेतना बढ़ती है, तुम्हारा भाव बढ़ता है, तुम्हारी संवेदना बढ़ती है। तुम्हारा आनंद बढ़ता है, तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ती है। प्रेम में तुम ज्यादा जीवंत होते हो। लेकिन एक चीज कम हो जाती है, तुम्हारी तार्किक बुद्धि कम हो जाती है। तुम प्रेम को बुद्धि से नहीं समझ सकते, वह अंधा है। जहां तक बुद्धि का संबंध है, प्रेम अंधा है। यह दूसरी बात है कि हृदय के पास अपनी समझ है। यह और बात है कि हृदय के पास अपनी आंखें हैं। लेकिन बुद्धि की आंखें वहा नहीं हैं। इसलिए बुद्धि कहती है कि यह पतन है, कि तुम गिर गए।
जब तक हृदय—केंद्र फिर से सक्रिय नहीं होगा, मनुष्य प्रेम करने में समर्थ नहीं होगा। और आधुनिक जीवन का सारा संताप यह है कि प्रेम किए बिना उसके जीवन में अर्थवत्ता नहीं आ सकती। जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। प्रेम उसे अर्थ देता है। प्रेम के सिवाय कोई दूसरा अर्थ नहीं है। जब तक तुम प्रेम में समर्थ नहीं होते, तुम अर्थशून्य रहोगे, तुम्हें लगेगा कि मैं व्यर्थ जी रहा हूं।

156

इसी कारण गरम दूध नींद लाने में सहयोगी होता है। अगर तुम सोने के पहले गरम दूध पी लो तो अच्छा होगा। गरम दूध तुम्हें पुन: बच्चा बना देता है। दूध बच्चे का भोजन है, और वह अगर गरम हो तो तुम्हें मां के स्तन से जुड्ने का अनुभव होगा। नींद के लिए गरम दूध इसीलिए अच्छा है क्योंकि तुम अपने बचपन में लौट जाते हो, तुम फिर बच्चे हो जाते हो।
नींद तुम्हें तरो—ताजा करती है। क्यों? क्योंकि चेतन मन थक जाता है।
वह एक अंश मात्र है; समूचा मन तो अचेतन है। नींद में लौटकर चित्त पुनरुज्जीवित हो जाता है। सुबह में तुम्हें अच्छा लगता है, सुबह तुम्हें सुंदर लगती है, इसका यही कारण है। इसीलिए नहीं क्योंकि सुबह सुंदर होती है, बल्कि इसलिए भी कि उसे देखने के लिए तुम्हारे पास बच्चे की आंख होती है। दोपहर उतनी सुंदर नहीं लगती है। संसार तो दोपहर भी वही है, लेकिन तब तक तुम्हारी आंखों की निर्दोषता खो जाती है। सांझ कुरूप हो जाती है; क्योंकि तुम थके—मांदे होते हो।
तुम चेतन मन में बहुत रह चुके। अहंकार इस चेतन मन का केंद्र है। ये दो सामान्य स्थितियां हैं, जिन्हें हम जानते हैं। तीसरा तल, तीसरी अवस्था, जिसका संबंध तंत्र और योग से है, अतिचेतन की है। अतिचेतन का अर्थ है कि तुम्हारा समस्त अचेतन चेतन हो गया। अचेतन में अहंकार नहीं है; तुम समग्र हो। अतिचेतन में भी अहंकार नहीं है; तुम समग्र हो। लेकिन इन दोनों के बीच जो चेतन है उसका एक केंद्र है, वह केंद्र अहंकार है।
यह अहंकार ही समस्या है; यह अहंकार ही समस्या पैदा करता है। तुम प्रेम नहीं कर सकते, क्योंकि तब तुम्हें अचेतन हो जाना पड़ेगा—नींद जैसा अचेतन। या यदि तुम प्रार्थना की ऊंचाई छूना चाहते हो तो तुम्हें बुद्ध या मीरा की भांति समग्रत: चेतन होना पड़ेगा, अतिचेतन होना पड़ेगा। बीच के तल पर प्रेम असंभव है, और प्रार्थना भी असंभव है। अहंकार बाधा निर्मित करता है। तुम अपने को खो नहीं सकते; और प्रेम खोना है, मिटना है, पिघलना है, विलीन होना है। यदि तुम अचेतन में डूब जाओ तो वह प्रेम है। और यदि अतिचेतन में डूब जाओ तो वह प्रार्थना है। लेकिन दोनों में मिटना पड़ेगा, विलीन होना पड़ेगा। तो क्या किया जाए? स्मरण रहे, इसके लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है।
इस बात को गांठ बांध लो कि तुम प्रेम या प्रार्थना के संबंध में कुछ नहीं कर सकते हो। तुम्हारा चेतन मन नपुंसक है, वह कुछ नहीं कर सकता है। चेतन मन को खोना है; उसे अलग रख देना है। और तब समर्पण को स्मरण रखो। जब भी तुम अपने से पार जाना चाहते हो—चाहे प्रेम में या प्रार्थना में—तो समर्पण ही मार्ग है। जब भी पार जाना चाहो, जहां हो वहा से अतिक्रमण करना चाहो, तो समर्पण ही उपाय है।
कुछ चीजें हैं जो अपने आप ही घटित होती हैं; तुम उन्हें बस राह दो, उन्हें होने दो। और एक बार यदि तुम जान गए कि कैसे राह दी जाती है तो बहुत चीजें घटित होने लगेंगी। तुम्हें इसका बोध भी नहीं है कि तुम्हारी संभावना क्या है, कि तुम्हारे भीतर कैसी महान शक्तिशाली ऊर्जा बंद पड़ी है।
इस ऊर्जा का विस्फोट ही समाधि बन जाता है। तब तुम्हारा समस्त जीवन चैतन्य से, प्रकाश से, आनंद से आपूरित हो उठेगा। लेकिन तुम्हें इसका पता नहीं है। यह ऐसे ही है जैसे हर एक परमाणु में परमाणु बम छिपा है; एक परमाणु के विस्फोट से अपार ऊर्जा पैदा होती है। और प्रत्येक हृदय भी एक परमाणु बम है। जब प्रेम या प्रार्थना में उसका विस्फोट होता है तो उससे भी अपार ऊर्जा पैदा होती है।
लेकिन इस विस्फोट के लिए तुम्हें मिटना होगा, इसके लिए तुम्हें अपने
को खोना होगा। बीज को बीज की भांति मिटना होगा, तो ही वृक्ष का जन्म हो सकता है। लेकिन अगर बीज प्रतिरोध करे और कहे कि मुझे जीना है, तो बीज जी सकता है, लेकिन वृक्ष का जन्म कभी नहीं होगा। और जब तक वृक्ष का जन्म नहीं होता, बीज निराशा अनुभव करेगा। वृक्ष होने में सार्थकता है, उसके बिना बीज का जीवन व्यर्थ हो जाएगा। फूलता—फलता वृक्ष हो जाने में ही बीज की सार्थकता है। लेकिन उसके लिए बीज को खोना होगा; बीज को मरना होगा।

159

आधुनिक मनुष्य प्रेम करने में असमर्थ हो गया है, क्योंकि वह मरने में असमर्थ हो गया है। वह किसी के प्रति मरने में असमर्थ हो गया है। वह जीवन से इस कदर आसक्त है कि किसी भी चीज के प्रति मरना उसके लिए असंभव हो गया है। तीन—चार सौ वर्ष पूर्व पुरानी अंग्रेजी भाषा में यह आम कहावत थी, प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता था: 'आई वाट टु डाइ इन धू—मैं तुममें मर जाना चाहता हूं। यह एक प्रेमपूर्ण अभिव्यक्ति थी और बहुत सुंदर थी।’मैं तुममें मर जाना चाहता हूं।’ प्रेम मृत्यु है, अहंकार की मृत्यु है। अहंकार की मृत्यु पर तुम्हारी आत्मा का जन्म होता है।
और आधुनिक मनुष्य मृत्यु से अत्यंत डरा हुआ है। समर्पण मृत्यु है, प्रेम मृत्यु है, और जीवन भी अनवरत मृत्यु है। अगर तुम भयभीत हो तो तुम जीवन से भी चूक जाओगे। प्रत्येक क्षण मरने के लिए राजी रहो। अतीत के प्रति मरो, भविष्य के प्रति मरो; और वर्तमान क्षण में भी मरो। न किसी से चिपको और न प्रतिरोध करो। जीवन के लिए कोई प्रयत्न मत करो, और तुम्हें अनंत जीवन उपलब्ध होगा। अगर तुम मरने को राजी हो तो ही तुम्हें जीवन उपलब्ध। होगा। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ती है, लेकिन यही नियम है।
जीसस कहते हैं कि जो खोने को राजी है उसे मिलेगा, और जो पकड़कर बैठेगा
वह सब कुछ गंवा देगा।

दूसरा प्रश्न:
कल रात आपने कहा कि परिधि सतत बदल रही है जब कि अंतरस्थ केंद्र नित्य है,
शाश्वत है। तो उस केंद्र को उपलब्ध होने के लिए क्या यह आवश्यक है कि परिधि की गतिविधियां बंद हों? क्या यह संभव है? कैसे और कब?

तुम पूरी बात ही चूक गए। कुल बात यह थी कि परिधि को बदलने की कोई चेष्टा न की जाए; परिधि जैसी है उसे वैसी ही रहने दिया जाए। तुम उसको नहीं बदल सकते हो। गति और परिवर्तन परिधि का स्वभाव है; तुम उसे रोक नहीं सकते। प्रकृति प्रवाहमान है। वह ऐसी है, तुम उसे रोक नहीं सकते, तुम उसे ठहरा नहीं सकते। अपने समय और जीवन— अवसर को उसे ठहराने में मत गंवाओ। बस जान लो कि वह परिवर्तन है, और उसके साक्षी बनो। और तब तुम्हें उस अंतरस्थ केंद्र की प्रतीति होगी जो परिवर्तन नहीं है।
संसार परिवर्तन है। तुम्हारा व्यक्तित्व परिवर्तन है। तुम्हारा शरीर—मन परिवर्तन है। लेकिन तुम परिवर्तन नहीं हो। फिर परिवर्तन से लड़ने की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं है। तंत्र कहता है: कृपा करके अपने केंद्र में पुन: प्रतिष्ठित हो जाओ, उस केंद्र के प्रति बोधपूर्ण बनो जो अचल है। और पूरे अस्तित्व को गति करने दो; वह कतई उपद्रव नहीं है।
वह उपद्रव तब बनता है जब तुम उससे चिपकते हो या उसे ठहराने की कोशिश करते हो। तब तुम नाहक मूढ़ताओं में, बेकार प्रयत्नों में पड़ रहे हो। तुम्हारे प्रयत्न कभी सफल न होंगे; तुम निष्फल होओगे। भँलीभाति जान लो कि जीवन परिवर्तन है, लेकिन इस परिवर्तन के भीतर कहीं कोई अचल केंद्र भी है। उसके साक्षी हो जाओ। वह बोध ही तुम्हें मुक्त करने के लिए पर्याप्त है। यह भाव ही कि मैं अचल हूं मुक्तिदायी है। यही सत्य है। तुम यह जानते ही भिन्न व्यक्ति हो जाते हो।
छायाओं से मत लड़ो। और समस्त जीवन छाया है, क्योंकि बदलाहट छाया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अपरिवर्तन सत्य है, परिवर्तन मिथ्या है। इसलिए यह मत पूछो कि केंद्र को उपलब्ध होने के लिए क्या परिधिगत परिवर्तन और गतिविधियों को जबरदस्ती बंद करना जरूरी है। उसकी जरूरत नहीं है; और तुम्हारी जबरदस्ती नहीं चलेगी। परिवर्तन नहीं रुकेगा। संसार तो चलता रहता है; सिर्फ तुम्हारे भीतर वह नहीं चलेगा। तुम संसार में रह सकते हो; संसार को तुममें रहने की जरूरत नहीं है।
संसार उपद्रव नहीं है। जब तुम उसमें फंसते हो, जब तुम परिवर्तन बन जाते हो, जब तुम्हें महसूस होता है कि तुम परिवर्तन हो गए हो, तब समस्याएं पैदा होती हैं। समस्याएं बदलती परिधि के कारण नहीं पैदा होती हैं; वे इस तादात्म्य से पैदा होती हैं कि मैं ही यह परिवर्तन हूं। तुम बीमार हो गए

160

हो। दरअसल यह बीमारी समस्या नहीं है, समस्या तब पैदा होती है जब तुम सोचते हो कि मैं बीमार हो गया हूं। अगर तुम बीमारी के साक्षी हो सको, अगर तुम देख सको कि बीमारी कहीं परिधि पर घटित हो रही है, मुझे नहीं—किसी दूसरे को हो रही है, मैं तो साक्षी भर हूं—तो मृत्यु के घटने पर भी तुम साक्षी बने रहोगे।
सिकंदर भारत से वापस जा रहा था। कुछ मित्रों ने उससे कहा था कि भारत
से लौटते हुए वहा से एक संन्यासी लेते आना। उन्होंने कहा था: 'जब तुम जीत की संपदा लेकर स्वदेश लौटो तो साथ में एक संन्यासी लाना न भूलना। हम देखना चाहते हैं कि संन्यासी कैसा होता है जो संसार का त्याग कर देता है। हम जानना चाहते हैं कि वह व्यक्ति कैसा होता है जिसकी सब कामनाएं विसर्जित हो गई हैं। हम देखने को उत्सुक हैं कि जो व्यक्ति सब वासनाओं को, भविष्य की, संपदा की, वस्तुओं की सब आकांक्षाओं को छोड़ देता है, उसका आनंद कैसा होता है।’
भारत से लौटते समय अंतिम क्षण में सिकंदर को इस बात का स्मरण आया। आखिरी शहर में, जहां से वह अपने देश के लिए रवाना होता, उसने अपने सैनिकों को हुक्म दिया कि जाओ और एक संन्यासी को पकड़ लाओ। सैनिक शहर में गए और उन्होंने एक के व्यक्ति से पूछा। उसने कहा. 'ही, यहां संन्यासी तो है, महान संन्यासी है; लेकिन उसे सिकंदर के साथ एथेंस जाने के लिए राजी करना कठिन होगा, बहुत कठिन होगा।’
लेकिन सिपाही तो सिपाही ठहरे, उन्होंने कहा: 'इसकी फिक्र मत करो। हम
ले जाएंगे। हमें इतना ही बता दो कि वह कहां है। राजी करने की जरूरत नहीं है; हम उठा ले जाएंगे। अगर सिकंदर पूरे नगर को चलने को कहे तो तुम्हें जाना होगा। फिर एक संन्यासी की क्या बात है!' का आदमी हंसा; लेकिन सिपाही नहीं समझ सके। कैसे समझते? संन्यासी से उन्हें कभी मिलना नहीं हुआ था। वे संन्यासी के पास गए।
वह नदी के किनारे नग्न खड़ा था। सैनिकों ने उससे कहा: 'सिकंदर का हुक्म
है कि तुम्हें हमारे साथ चलना है। तुम्हारी सब देखभाल की जाएगी; तुम्हें किसी तरह की भी असुविधा नहीं होगी; तुम शाही मेहमान होंगे। लेकिन तुम्हें हमारे साथ एथेंस चलना है।’
संन्यासी हंसा और उसने कहा. 'तुम्हारे सिकंदर के लिए मुझे अपने साथ एथेंस ले जाना बहुत मुश्किल होगा। इस दुनिया की कोई भी ताकत मुझे चलने के लिए मजबूर नहीं कर सकती; लेकिन तुम यह बात नहीं समझ सकोगे। अच्छा हो कि तुम अपने सिकंदर को ही यहां ले आओ।’
सिकंदर यह बात सुनकर हैरान रह गया; उसने अपमानित अनुभव किया। लेकिन
वह इस आदमी को देखना चाहता था। वह हाथ में नंगी तलवार लिए वहा पहुंचा। और उसने कहा. 'अगर तुम इनकार करते हो तो तुम्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा; मैं तुम्हारा सिर काट दूंगा।’ सिकंदर के संस्मरणों के अनुसार संन्यासी का नाम ददामी था।
वह संन्यासी हंसा और बोला 'तुम जरा देर से आए। अब तुम मुझे नहीं मार सकते, क्योंकि मैंने खुद अपने को मार दिया है। तुम्हें थोड़ी देरी हो गई। तुम मेरा सिर काट सकते हो, लेकिन मुझे नहीं काट सकते। क्योंकि मैं साक्षी हो गया हूं। जब यह सिर जमीन पर गिरेगा तो तुम उसे गिरते देखोगे और मैं भी उसे गिरते देखूंगा। लेकिन तुम मुझे नहीं काट सकते; तुम मुझे छू भी नहीं सकते हो। तो समय मत गंवाओ, उठाओ अपनी तलवार और मेरा सिर काट डालो।’
सिकंदर उस संन्यासी को नहीं मार सका। मारना असंभव था, क्योंकि मारना व्यर्थ था। वह आदमी मृत्यु के इतने पार चला गया था कि उसे मारना असंभव था। तुम्हें तभी मारा जा सकता है, यदि तुम जीवन से आसक्त हो। परिवर्तनशील जगत से यह लगाव ही तुम्हें मरणधर्मा बनाता है। अगर यह लगाव न रहे तो तुम वह हो जो सदा से हो, तुम अमृत हो। अमृतत्व तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है— अमृतस्य पुत्र:। आसक्ति तुम्हें मरणधर्मा बनाती है।
तो परिवर्तनशील परिधि को ठहराने की जरूरत नहीं है; यह प्रश्न ही नहीं उठता है। यह संभव भी नहीं है। संसार—चक्र तो चलता ही रहेगा। तुम इतना ही कर सकते हो कि तुम जान लो कि तुम चक्र नहीं हो। तुम धुरी हो, चक्र नहीं।

161

तीसरा प्रश्न:
मनुष्य जैसा है वैसे में क्या यह उसके लिए कठिन नहीं है कि वह आसक्ति
के बिना और उससे होने वाली चिंता और निराशा के बिना परिवर्तन को परिवर्तन से, काम को काम से विसर्जित करे?

मनुष्य जैसा है वह यह कर सकता है। मनुष्य जैसा है वैसे मनुष्य के लिए
ही यह उपाय है, विधि है। तंत्र औषधि है—तुम्हारे लिए, उनके लिए जो रुग्ण हैं। ऐसा मत सोचो कि तंत्र तुम्हारे लिए नहीं है। यह तुम्हारे लिए है, और तुम यह कर सकते हो। लेकिन तुम्हें समझना होगा कि इसका क्या अर्थ है जब तुम कहते हो कि आसक्ति में पड़ने की संभावना है और उसके परिणाम में निराशा हाथ आएगी। तब तुम नहीं समझे।’परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो' का अर्थ यह है कि यदि आसक्ति आती है तो उससे लड़ों मत, आसक्त रहो, लेकिन साक्षी भी बने रहो। आसक्ति को अपनी जगह रहने दो, और उससे संघर्ष मत करो। तंत्र असंघर्ष की विधि है। लड़ो मत। निराशा निश्चित आएगी; तो निराश होओ। लेकिन साथ—साथ साक्षी भी रहो। तुम आसक्त थे और तुम साक्षी थे। अब निराशा आई है और तुम जानते हो कि इसे आना ही था। अब निराश होओ, लेकिन साक्षी भी रहो। तब आसक्ति से आसक्ति विसर्जित हो जाती है, और निराशा से निराशा विसर्जित हो जाती है।
जब तुम दुखी हो तो इसका प्रयोग करो। दुखी होओ; दुख से लड़ो मत। इसे प्रयोग करो; यह अदभुत विधि है। जब दुख आए और तुम दुखी हो जाओ, तुम्हें पीड़ा अनुभव हो; तो तुम अपने द्वार—दरवाजे बंद कर लो और दुखी हो जाओ। अब और क्या कर सकते हो? तुम दुखी हो, तो तुम दुखी हो। अब पूरी तरह दुखी हो जाओ। और अचानक तुम्हें दुख का बोध होगा। लेकिन अगर तुम दुख को बदलने की कोशिश करोगे तो तुम्हें कभी दुख का बोध नहीं होगा। क्योंकि तब तुम्हारी चेतना, तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारा प्रयत्न, सब दुख को बदलने की दिशा में नियोजित हो जाएगा। तब तुम सोचने लगोगे कि यह दुख कैसे आया और इसे बदलने के लिए क्या किया जाए। और तुम एक बहुत सुंदर अनुभव से वंचित हो रहे हो, दुख को सीधे देखने से वंचित हो रहे हो। अब तुम दुख के कारणों पर विचार कर रहे हो, उसके परिणाम पर विचार कर रहे हो, उसे भूलने के उपाय खोज रहे हो, उससे छूटने के तरीके निकालने में लगे हो। तुम खुद दुख को चूक रहे हो जो कि वहा मौजूद है और जिसे सीधे देख लेना मुक्तिदायी हो सकता है।
कुछ मत करो। दुख कैसे पैदा हुआ, इसका विश्लेषण मत करो। और इसकी भी फिक्र मत करो कि इसके क्या—क्या परिणाम होंगे। परिणाम जब आएंगे तब उन्हें देख लेना। जल्दी क्या है? अभी दुखी होओ, सिर्फ दुखी होओ। और उसे बदलने की चेष्टा मत करो।
इस तरह प्रयोग करो: देखो कि कितने मिनट तक तुम दुखी रह सकते हो। तब तुम्हें पूरी चीज पर हंसी आएगी; पूरी चीज मूढ़तापूर्ण मालूम पडेगी। क्योंकि अगर तुम समग्रत: दुखी हो जाओ तो अचानक तुम्हारा केंद्र दुख के पार हो जाएगा। वह केंद्र कभी दुखी नहीं हो सकता; यह असंभव है। अगर तुम दुख के साथ बने रहे तो दुख पृष्ठभूमि बन जाता है और तुम्हारा केंद्र, जो कभी दुखी नहीं हो सकता, अचानक उभर आता है। और तब तुम दुखी हो और दुखी नहीं भी हों— असमता में समभाव। अब तुम दुख को दुख से विसर्जित कर रहे हो। यही इसका अर्थ है। तुम और कुछ नहीं करते हो; तुम सिर्फ दुख से दुख का विसर्जन कर रहे हो। दुख ऐसे ही विलीन हो जाएगा जैसे आकाश से बादल विलीन हो जाते हैं और आकाश खुल जाता है। तब तुम हंसोगे। और तुमने कुछ किया भी नहीं। और तुम कुछ कर भी नहीं सकते हो।
तुम जो भी करोगे उससे उलझन बढ़ेगी, दुख बढ़ेगा। किसने यह दुख पैदा किया है? तुमने। और अब तुम ही उसे बदलने की कोशिश कर रहे हो। उससे दुख बदतर हो जाएगा। तुम ही दुख के निर्माता हो, तुमने ही उसे पैदा किया है, तुम ही उसके स्रोत हो। और अब स्रोत ही प्रयत्न कर रहा है। तुम क्या कर सकते हो? अब रोगी अपना ही इलाज कर रहा है, जिसने सारा रोग खड़ा किया है। अब वह शल्य—चिकित्सा की सोच रहा है, वह आत्मघात होगा।
कुछ मत करो। अंतस बहुत गहरा है। कितनी बार तुमने कोशिश नहीं की कि दुख रुके, कि उदासी रुके, कि यह रुके, वह रुके, और कुछ भी नहीं रुका। अब यह

162

प्रयोग करो कि कुछ मत करो और दुख को उसकी समग्रता में होने दो। दुख को उसकी पूरी त्वरा में होने दो और तुम निष्क्रिय बने रहो। तुम सिर्फ दुख के साथ रहो और देखो कि क्या होता है।
जीवन परिवर्तन है। हिमालय भी बदल रहा है। तुम्हारा दुख अचल नहीं रह सकता; वह अपने आप ही बदलेगा। और तुम दुख को बदलते हुए देखोगे, उसे विलीन होते हुए देखोगे, उसे विदा होते हुए देखोगे, और तब तुम निर्भार महसूस करोगे। और तुमने कुछ भी तो नहीं किया!
एक बार तुम्हें कुंजी हाथ लग जाए तो तुम किसी भी चीज का विसर्जन उसी चीज के द्वारा कर सकते हो। और कुंजी यह है कि बिना कुछ किए शांतिपूर्वक उसके साथ रहना। क्रोध है तो क्रोध ही हो जाओ; कुछ करो मत। अगर तुम इतना ही कर सके—यह न करना कर सके—अगर तुम मात्र साक्षी के रूप में उपस्थित रह सके, अगर तुमने कुछ बदलने का प्रयत्न नहीं किया और चीजों को अपनी राह जाने दिया, तो तुम किसी भी चीज का विसर्जन कर सकते हो। तुम किसी भी चीज का निरसन कर सकते हो।

अंतिम प्रश्न:
तंत्र कहता है कि जीवन की नदी के साथ संघर्ष मत करो, तैरो नहीं; बल्कि उसकी धारा में अपने को छोड़ दो और बहो। लेकिन अनुभव कहता है कि अति यंत्रीकरण और भाग—दौड़ से भरा आधुनिक शहरी जीवन शारीरिक और मानसिक तलों पर निरंतर तनाव और थकान पैदा करता है। इसके प्रति तंत्र की क्या दृष्टि है? क्या अनावश्यक भाग—दौड़ से बचना अच्छा नहीं है?

जीवन सदा ही ऐसा रहा है—चाहे आधुनिक हो या आदिम। उसमें तनाव हैं, चिंताएं हैं। विषय बदल जाते हैं, लेकिन आदमी वही का वही रहता है। दो हजार साल पहले तुम बैलगाड़ी चलाते थे, अब तुम कार चला रहे हो, लेकिन चालक वही है। बैलगाड़ी बदल गई, चीजें बदल गईं; तुम कार चला रहे हो। लेकिन चालक नहीं बदला है, वह वही है। वह अपनी बैलगाड़ी के लिए चिंतित था, तनावग्रस्त था; अब तुम अपनी कार के लिए चिंतित हो, तनावग्रस्त हो। विषय बदल जाते हैं, लेकिन मन वही रहता है।
तो ऐसा मत सोचो कि आधुनिक जीवन के कारण तुम इतने चिंताग्रस्त हो। उसका कारण तुम हो, आधुनिक जीवन नहीं। और तुम कहीं भी, किसी भी सभ्यता में चिंतित ही रहोगे। कुछ दिन के लिए, दो—तीन दिन के लिए तुम गांव चले जाओ। कुछ समय वहा तुम्हें अच्छा लगेगा, क्योंकि रोगों को भी समायोजित होना पड़ता है। तीन दिन के भीतर तुम गांव के साथ समायोजित हो जाओगे, और तब चिंताएं फिर सिर उठाने लगेंगी, उपद्रव फिर खड़े होने लगेंगे। अब कारण तो वही नहीं रहे, लेकिन तुम वही हो।
कभी—कभी ऐसा होता है कि तुम शहर के यातायात के कारण, शोरगुल के कारण परेशान हो जाते हो, और कहते हो कि इतनी भीड़भाड़ और शोरगुल के कारण मुझे रात में नींद नहीं आ पाती। तो गांव चले जाओ, और वहां भी नींद नहीं आएगी, क्योंकि वहा भीड़भाड़ नहीं है, शोरगुल नहीं है। तुम्हें शहर लौट आना पड़ेगा, क्योंकि गांव मुर्दा मालूम पड़ता है, उसमें जीवन नहीं है।
लोग मुझे अक्सर अपने ऐसे अनुभव सुनाते हैं। मैंने एक मित्र को काश्मीर जाने को, पहलगांव जाने को कहा। उसने लौटकर मुझे बताया कि वहां की जिंदगी बहुत नीरस है, वहां जिंदगी ही नहीं है। तुम वहां एक—दो दिन पहाडियों और घाटियों का आनंद लोगे, और उसके बाद ऊब जाओगे। वह आदमी मुझे कहा करता था कि शहर की जिंदगी में मेरा सिर चकराने लगता है, और वही अब कहता है कि वे पहाड़ ऊब पैदा करने लगे और मैं घर लौट आने के लिए आतुर हो उठा।
तुम समस्या हो, काश्मीर कोई मदद नहीं कर सकेगा। बंबई या लंदन या न्यूयार्क तुम्हें नहीं बेचैन करते हैं; बेचैनी का कारण तुम हो। लंदन ने तुम्हें नहीं बनाया; तुमने लंदन को बनाया है। यह यातायात, यह शोरगुल, यह पागल भाग—दौड़, सब तुम्हारी निर्मिति हैं; तुम जैसे लोगों की कृतियां हैं। देखो, कारण तुम्हारे भीतर है। ऐसा नहीं है कि तुम शोरगुल के कारण तनावग्रस्त हो; तुम्हारे तनावग्रस्त होने के कारण शोरगुल है; तुम उसके बिना नहीं रह सकते। तुम्हें उसकी जरूरत है, तुम उसके बिना नहीं जी सकते।

163

मेरी दृष्टि में यह न स्वस्थ है और न अस्वस्थ। धारणा असली चीज है। अगर इसे स्वस्थ माना जाए और इस धारणा को बल दिया जाए तो यह स्वस्थ हो जाएगा। अब पश्चिम में वे कहते हैं कि हस्तमैथुन से बुद्धि को कतई क्षति नहीं पहुंचती है। वे यहां तक कहते हैं कि जितनी ज्यादा बुद्धि उतना ज्यादा हस्तमैथुन। तो जो लड़का हस्तमैथुन करता है उसका बुद्धि—अंक उस लड़के से ज्यादा होगा जो हस्तमैथुन नहीं करता है।
और उनके ऐसा कहने का कारण है; क्योंकि लड़के के लिए हस्तमैथुन खोज निकालना उसकी बुद्धि की पहचान है; उसने एक रास्ता तो निकाला! समाज ने विवाह का दरवाजा बंद कर दिया है और प्रकृति है कि काम—ऊर्जा को धक्के मार रही है। बुद्धिमान लड़का रास्ता ढूंढ लेगा और मूढ़ अवरुद्ध रहेगा, कुंठा में फंसेगा। नया अध्ययन कहता है कि जो लड़के हस्तमैथुन करते हैं वे ज्यादा बुद्धिमान हैं। अगर यह धारणा फैली—और देर—अबेर यह धारणा सारे जगत में फैलेगी—तो हस्तमैथुन स्वास्थ्यप्रद हो जाएगा; और उससे लोग स्वस्थ अनुभव करेंगे।
अभी तो मां—बाप भयभीत हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उन्होंने अपनी युवावस्था में क्या किया था। जब कोई लड़का किशोरावस्था में प्रवेश करने लगता है तो उसके मां—बाप चिंतित हो जाते हैं और ताक—झांक करने लगते हैं कि लड़का क्या करता है। उन्हें डर है कि वह हस्तमैथुन तो नहीं करता है! और यदि लड़का ऐसा करता पाया जाता है तो वे उसे सजा देते हैं। लेकिन नया विज्ञान कहता है कि लड़के को सजा मत दो, बल्कि उसे हस्तमैथुन की शिक्षा दो। यदि वह हस्तमैथुन नहीं करता है तो उसे डाक्टर के पास ले जाओ और पता लगाओ कि क्या गडबडी है।
अगर यह नया ज्ञान फैलेगा तो यही होगा। लेकिन दोनों धारणाएं हैं, दोनों दृष्टियां हैं। और जब कोई लड़का हस्तमैथुन करता है तो उस क्षण में वह बहुत खुला हुआ और ग्रहणशील हो जाता है, उसका मन शात हो जाता है, क्योंकि इस क्षण में उसकी काम—ऊर्जा स्खलित हो रही है। इस समय जो भी सुझाव, जो भी विचार उसे दिया जाएगा, वह उस पर प्रभावी हो जाएगा। अगर तुम उसे कहोगे कि इसके कारण तुम बीमार हो जाओगे तो वह बीमार हो जाएगा। अगर तुम कहोगे कि इसके कारण तुम स्वस्थ होओगे तो वह स्वस्थ हो जाएगा। और अगर तुम उसे कहोगे कि हस्तमैथुन करने से तुम जिंदगी भर के लिए मूढ़ हो जाओगे तो वह सचमुच मूढ़ रह जाएगा। और यदि कोई उसे कहेगा कि हस्तमैथुन बुद्धि का लक्षण है तो उसका बुद्धि—अंक सचमुच बढ़ जाएगा। ऐसा होता है, क्योंकि बहुत ग्रहणशील क्षण में तुम उसे सुझाव दे रहे हो। तुम जो भी सोचते हो, वह घटित होने लगता है। बुद्ध ने कहा है कि हर एक विचार यथार्थ हो जाता है, इसलिए सजग रहो।
अगर तुम सोचते हो कि सड़क का शोरगुल परेशान करता है तो वह तुम्हें जरूर परेशान करेगा, क्योंकि तुम परेशान होने को तैयार ही बैठे हो। अगर तुम सोचते हो कि पारिवारिक जीवन बंधन है तो वह तुम्हारे लिए बंधन हो जाएगा; तुम उसके लिए राजी ही हो। और अगर तुम सोचते हो कि गरीबी तुम्हें मुक्त होने में सहयोगी होगी तो वह सहयोगी होगी। अंततः तुम स्वयं ही अपने चारों ओर का संसार निर्मित करते हो; तुम जो भी सोचते हो वह तुम्हारा परिवेश बन जाता है और तुम उसमें ही जीते हो।
तंत्र कहता है, इस कारण को सदा स्मरण रखो, कारण सदा तुम्हारे भीतर है।
और यदि तुम यह जान लो तो फिर तुम कारण नहीं बनोगे, फिर तुम अपने लिए कोई नया बंधन नहीं गढ़ोगे। और जो कारण गढ़ना बंद कर देता है वह मुक्त हो जाता है। तब न वह दुख में होता है और न आनंद में होता है। आनंद तुम्हारा सृजन है और दुख भी तुम्हारा सृजन है। तुम अपने दुख को आनंद में बदल सकते हो, क्योंकि वह तुम्हारा सृजन है। बुद्ध पुरुष न दुख में होते हैं और न आनंद में, क्योंकि वे कार्य—कारण से बाहर हो गए हैं। वे सिर्फ हैं।
इसीलिए बुद्ध कभी यह नहीं कहते कि आत्मोपलब्ध व्यक्ति आनंदित है। जब
भी कोई उनसे पूछता कि बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति कैसा होता है? क्या वह परम आनंद में होता है? तो बुद्ध हंसते और कहते. 'यह मत पूछो। मैं इतना ही कह सकता हूं कि वह दुख में नहीं होता। इससे ज्यादा मैं नहीं कह सकता, यही कह सकता हूं कि वह दुख में नहीं होता।’

166

बुद्ध का निषेध पर इतना जोर क्यों था? क्योंकि बुद्ध जानते हैं। जब तुम जान गए कि तुम ही अपने दुख का कारण हो तो तुम यह भी जान गए कि आनंद भी तुम्हारा ही कृत्य है। तब तुम कारण बनना छोड़ देते हो, कुछ भी करना छोड़ देते हो। इसे ही निर्वाण कहते हैं: अपने आस—पास समस्त कार्य—कारण का विसर्जन। तब तुम मात्र हो—न दुख, न आनंद। अगर तुम समझ सको तो यही आनंद है। न कोई दुख है, न आनंद; क्योंकि यदि आनंद है तो दुख भी रहेगा। तुम अभी भी कुछ पैदा कर रहे हो। और अगर तुम आनंद पैदा कर सकते हो तो दुःख भी पैदा कर सकते हो।
और तुम आनंद से भी ऊब जाओगे। कितनी देर सह सकोगे? कितनी देर? क्या तुमने कभी इस पर विचार किया है? यदि चौबीस घंटे आनंद के ही हों तो क्या तुम उसे झेल सकोगे? तुम बोर हो जाओगे, और ऐसे शिक्षक की तलाश में निकलोगे जो तुम्हें फिर से दुखी होना सिखाए।
मैं नहीं सोचता कि यदि सारा संसार आनंदित हो जाए तो फिर शिक्षक नहीं रहेंगे। शिक्षक रहेंगे, क्योंकि तब लोगों को दुख की जरूरत होगी। तब कोई यह बताने वाला जरूरी हो जाएगा कि कैसे फिर से दुखी हुआ जाए। सिर्फ थोड़ी बदलाहट के लिए दुख जरूरी हो जाएगा। उसके बाद तुम फिर आनंद में लौट सकते हो। और तब आनंद की अनुभूति बढ़ जाएगी, क्योंकि खोने के बाद ही तुम्हारी आनंद की अनुभूति प्रगाढ़ होती है। तो शिक्षक तो रहेंगे। अभी वे सुखी होना सिखाते हैं; तब वे दुखी होना सिखाएंगे; सिखाएंगे कि नरक का स्वाद कैसे लिया जाए। थोड़ी सी बदलाहट सहयोगी होगी, अच्छी होगी।
लेकिन तुम ही कारण हो। और तुम उसी क्षण बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे जिस क्षण जान लोगे कि जिस संसार में तुम रहते हो वह तुम्हारा ही बनाया हुआ है। अब तुम उसे नहीं बनाओगे, और वह विलीन हो जाएगा। यातायात जारी रहेगा, शोरगुल जारी रहेगा, सब कुछ वैसा ही रहेगा जैसा है, लेकिन तुम नहीं रहोगे।
क्योंकि कारण के साथ ही तुम भी विदा हो जाओगे।

आज इतना ही।

167

तंत्र-सूत्र, भाग 3
पैंतालीसवां प्रवचन

न बंधन है न मोक्ष

सूत्र:
68—जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन—पोषण करती है,
वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का
पालन—पोषण करो।
69—यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है; ये केवल विश्व से
भयभीत लोगों के लिए है। यह विश्व मन का प्रतिबिंब है।
जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे
ही बंधन और मोक्ष को देखो।

इनोने किसी से पूछा था: 'समस्या क्या है? वे जड़ें क्या हैं जिन से मनुष्य का समाधान हो सके और वह यह जानने का प्रयत्न करे कि मैं कौन हूं?' बिना किसी प्रयत्न के आदमी स्वयं को क्यों नहीं जान सकता? कोई समस्या
ही क्यों हो? तुम हो; तुम जानते हो कि मैं हूं। फिर तुम क्यों नहीं जान सकते कि मैं कौन हूं? कहा चूक रहे हो? तुम चेतन हो, और तुम्हें बोध है कि मैं चेतन हूं। जीवन है, और तुम जीवित हो। फिर तुम्हें यह बोध क्यों नहीं है कि मैं कौन हूं? वह क्या है जो अवरोध बनता है? वह क्या है जो तुम्हें इस बुनियादी आत्मज्ञान से वंचित रखता है?
अगर तुम अवरोध को समझ सको तो अवरोध आसानी से विसर्जित किया जा सकता है। असली सवाल यह नहीं है कि कैसे स्वयं को जाना जाए; असली सवाल यह है कि तुम कैसे स्वयं को नहीं जान पा रहे हो! कैसे इतने स्पष्ट यथार्थ को, इतने बुनियादी सत्य को चूक रहे हो, जो तुम्हारे निकट से निकट है! कैसे वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है! तुमने जरूर कोई उपाय किया होगा; अन्यथा स्वयं से बचना कठिन है। तुमने दीवारें खड़ी की होंगी, तुम किसी न किसी अर्थ में अपने को धोखा दे रहे होगे। अपने से बचने की, अपने को न जानने की युक्ति क्या है? तरकीब क्या है?
जब तक तुम उस युक्ति को, उस तरकीब को नहीं समझते, तुम कुछ भी करो वह कारगर नहीं होगा। क्योंकि वह युक्ति बची रहती है और तुम पूछते रहते हो कि स्वयं को कैसे जाना जाए? सत्य को, यथार्थ को कैसे जाना जाए? और नतीजा यह होता है कि तुम अवरोध को सहारा देते हो। तुम अवरोध को निर्मित भी किए जाते हो। इसलिए तुम जो भी करोगे वह व्यर्थ हो जाएगा।
सच तो यह है कि स्वयं को जानने के लिए विधायक रूप से कुछ करने की जरूरत नहीं है, बस कुछ नकारात्मक करना है। तुम्हें उस अवरोध को हटा देना है जिसे खुद तुमने निर्मित किया है। और जैसे ही वह अवरोध गया कि तुम जान जाओगे। अवरोध के हटते ही जानना घटित होता है; उसके लिए तुम कोई विधायक प्रयत्न नहीं कर सकते। तुम्हें सिर्फ इस बात का बोध होना चाहिए कि कैसे मैं इसे चूक रहा हूं।
इस संबंध में कुछ बातें समझने जैसी है। पहली बात कि तुम अपने सपनों में जीते हो, और फिर ये सपने ही अवरोध बन जाते हैं। सत्य कोई स्वप्न नहीं है; वह है। सत्य है; वह तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है, हर तरफ से घेरे हुए है। भीतर—बाहर वही है, तुम उसे चूक नहीं सकते। लेकिन तुम सपने देख रहे हो; और तब तुम एक ऐसे आयाम में चले जाते हो जो सत्य नहीं है। तब तुम एक काल्पनिक दुनिया में सैर करते हो। और ये सपने तुम्हारे चारों ओर बादलों की भांति छा जाते हैं और अवरोध बन जाते हैं।
जब तक मन स्वप्न देखना नहीं छोडेगा, तुम सत्य को नहीं जान सकते। जब तुम सत्य को सपने के माध्यम से देखते हो तो सत्य विकृत हो जाता है। और तुम्हारी आंखें सपनों से भरी हैं; तुम्हारे कान सपनों से भरे हैं; तुम्हारे हाथ सपनों से भरे हैं। तो तुम जो भी देखते हो, सपनों भरी आंख से देखते हो, तुम जो कुछ सुनते हो, सपनों भरे कान से सुनते हो, तुम जो कुछ छूते हो, सपनों भरे हाथ से छूते हो। और इस तरह सब कुछ विकृत हो जाता है, बदल जाता

168

है। तुम्हारे पास जो कुछ भी पहुंचता है, सपनों के माध्यम से पहुंचता है; और सपने सब कुछ बदल देते हैं, सब कुछ रंग देते हैं।
सपनों में खोए चित्त के कारण तुम सत्य को चूक रहे हो, बाहर के सत्य को चूक रहे हो और भीतर के सत्य को चूक रहे हो। तुम सत्य को पाने के लिए बहुत उपाय कर सकते हो; लेकिन वे उपाय भी स्वप्न देखने वाले चित्त के द्वारा ही होंगे। तुम धार्मिक सपने देख सकते हो, तुम सत्य के संबंध में सपने देख सकते हो, ईश्वर और क्राइस्ट और बुद्ध के सपने भी देख सकते हो; लेकिन वे भी सपने ही होंगे।
सपने देखना छोड़ो; सपनों को विदा करो। सपनों के जरिए सत्य को नहीं जाना
जा सकता है। लेकिन सपना देखने से मेरा क्या तात्पर्य है?
तुम अभी मुझे सुन रहे हो। लेकिन तुम्हारे भीतर स्वप्न भी चल रहा है,
और वह स्वप्न निरंतर उसकी व्याख्या कर रहा है जो कहा जा रहा है। तब तुम मुझे नहीं सुन रहे हो, तुम अपने को ही सुन रहे हो। क्योंकि तुम सुनने के साथ ही साथ उसकी व्याख्या भी किए जा रहे हो। क्या यही बात नहीं है? जो कहा जा रहा है, तुम उस पर विचार भी कर रहे हो।
लेकिन विचार करने की क्या जरूरत है? सिर्फ सुनो; सोच—विचार मत करो। क्योंकि अगर तुम सोचोगे तो सुन नहीं सकोगे, और अगर सोचना और सुनना साथ— साथ चलेंगे तो तुम अपना शोरगुल ही सुनोगे। और वह वही नहीं है जो कहा जा रहा है। सोच—विचार बंद करो, सुनने के मार्ग को विचारों से खाली रखो। तभी जो कहा जा रहा है उसे सुन सकोगे।
जब किसी फूल को देखो तो सपनों को रोक दो। अपनी आंखों को अतीत और भविष्य के विचारों और सपनों से मत भरी रहने दो; उन्हें फूलों के संबंध में अपनी जानकारी से खाली रखो। इतना भी मत कहो कि फूल सुंदर है, क्योंकि तब तुम सत्य से वंचित हो रहे हो। ये शब्द ही देखने में बाधा बन जाएंगे। तुम कहते हो कि फूल सुंदर है; यह कहते ही शब्द बीच में आ गए और सत्य की व्याख्या शब्दों में शुरू हो गई। शब्दों को अपने आस—पास मत इकट्ठा होने दो। सीधे सीधे देखो; सीधे—सीधे सुनो, सीधे—सीधे स्पर्श करो।
जब तुम किसी को छुओ तो सिर्फ छुओ; यह मत कहो कि त्वचा कितनी सुंदर है, कितनी चिकनी है। तब तुम चूक रहे हो; तब तुम सपने में खो गए। जैसी भी त्वचा है, वह अभी और यहां है; उसे छुओ और उसे अपने को तुम पर प्रकट करने दो। तुम किसी सुंदर चेहरे को देखते हो; उसे देखो और उस चेहरे को अपने भीतर प्रवेश करने दो। उसकी व्याख्या मत करो; कुछ भी मत कहो। अपने अतीत मन को बीच में मत आने दो।
पहली तो बात कि सपने तुम्हारे अतीत चित्त से निर्मित होते हैं। यह तुम्हारा अतीत मन है जो निरंतर तुम्हारे चारों ओर घूम रहा है। अतीत को बीच में मत आने दो। वैसे ही भविष्य को भी बीच में मत आने दो। जैसे ही तुम्हें कोई सुंदर रूप, कोई सुंदर शरीर दिखाई पड़ता है, तुरंत इच्छाएं पैदा होने लगती हैं। तुम उसे पाना चाहते हो। तुम एक सुंदर फूल देखते हो और तुरंत उसे तोड़ लेना चाहते हो।
लेकिन चाह के उठते ही तुम फूल से दूर चले गए। फूल तो वहीं है; लेकिन तुम कामना में सरक गए, भविष्य में भटक गए। अब तुम यहां नहीं हो; तुम अतीत में हो जो नहीं है, या भविष्य में हो जो अभी नहीं आया है। और तुम उसे चूक रहे हो जो अभी है।
तो पहली चीज स्मरण रखने की है कि अपने और सत्य के बीच में शब्दों को मत आने दो। जितने कम शब्द होंगे उतनी कम बाधा रहेगी। और जब शब्द बिलकुल नहीं होंगे तो कोई भी बाधा नहीं है। तब तुम सत्य का सीधा साक्षात्कार करते हो, तुम उसी क्षण उसके आमने—सामने होते हो।
शब्द सब कुछ नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे अर्थ ही बदल देते हैं।
मैं किसी की आत्मकथा पढ़ रहा था—एक स्त्री की आत्मकथा। वह बिस्तर से बाहर आने के बाद से पूरे दिन का वर्णन कर रही थी। वह लिखती है कि एक सुबह मैंने अपनी आंखें खोलीं। लेकिन तुरंत ही वह कहती है कि यह कहना सही नहीं है कि मैंने आंखें खोलीं; मैंने तो कुछ भी नहीं किया, आंखें अपने आप खुल गईं। वह वाक्य को बदल देती है और लिखती है कि नहीं, यह कहना ठीक नहीं है कि मैंने आंखें खोलीं; मैंने तो कुछ नहीं किया; यह मेरा प्रयत्न नहीं था, यह

169

मुझे स्मरण आता है कि एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से उसके एक पड़ोसी ने कहा कि मुझे कुछ घंटों के लिए तुम्हारा घोड़ा चाहिए। मुल्ला ने कहा कि मैं तो तुम्हें खुशी से अपना
घोड़ा दे देता, लेकिन मेरी पत्नी घोड़े को लेकर कहीं गई है और वह दिन भर बाहर ही रहेगी। ठीक उसी समय अस्तबल से घोड़े की हिनहिनाहट सुनाई पड़ी, और पड़ोसी ने मुल्ला की तरफ देखा। मुल्ला ने कहा: अच्छा, तुम मुझ पर विश्वास करते हो या घोड़े पर? और घोड़ा तो झूठ बोलने के लिए बदनाम ही है। तुम किस पर भरोसा करते हो?'
हम अपने प्रक्षेपणों के द्वारा अपने चारों ओर एक झूठा संसार निर्मित
कर लेते हैं। और अगर सत्य स्वयं भी सामने खड़ा होता है और अस्तबल से घोड़ा हिनहिनाता है तो भी हम पूछते हैं: 'किसका विश्वास करोगे?' हम सदा अपना भरोसा करते हैं, सत्य का नहीं, जो सदा—सदा उभरकर सामने आता रहता है। सत्य प्रतिपल प्रकट है, लेकिन हम अपनी भ्रांतियों को जबरदस्ती उस पर थोपते रहते हैं।
यही कारण है कि प्रत्येक आदमी को अंततः विषाद का, निराशा का शिकार होना पड़ता है। इसका कारण सत्य नहीं, हमारा प्रक्षेपण है, हमारा आरोपण है। अंत में प्रत्येक मनुष्य को उदासी और निराशा ही हाथ लगती है; उसे लगता है कि समूचा जीवन व्यर्थ हो गया। लेकिन अब तुम कुछ नहीं कर सकते; अब यह अनकिया नहीं हो सकता। समय अब तुम्हारे पास नहीं है। समय चला गया और मृत्यु निकट है। तुम्हारा भ्रम भंग तो हुआ, लेकिन अवसर भी जाता रहा।
क्यों हरेक आदमी को अंत में हताशा ही हाथ लगती है? न केवल उन्हें ही जो जीवन में असफल होते हैं, बल्कि जो सफल होते हैं उन्हें भी इसी अनुभव से गुजरना पड़ता है। यह तो ठीक है कि असफल लोगों को लगता है कि धोखा हुआ, मगर सफल लोगों को भी ऐसा ही लगता है। नेपोलियन और हिटलर और सिकंदर का भ्रम भी टूटता है; उन्हें भी लगता है कि सारा जीवन व्यर्थ गया। क्यों? इसका कारण सत्य है या इसका कारण तुम्हारा वह सपना है जो तुम प्रक्षेपित कर रहे थे? और फिर तुम स्वप्न को नहीं प्रक्षेपित कर पाए और अंतत: सत्य प्रकट हो गया। और आखिर में सत्य जीत जाता है और तुम हार जाते हो—सत्यमेव जयते। तुम तभी जीत सकते हो यदि तुम प्रक्षेपित न करो।
इसलिए दूसरी बात स्मरण रखो, चीजों को ठीक वैसी देखो जैसी वे हैं। प्रक्षेपण मत करो; व्याख्या मत करो, चीजों पर अपने मन को आरोपित मत करो।
सत्य को, वह जो भी हो, जैसा भी हो, प्रकट होने दो। यह सदा शुभ है। और तुम्हारे सपने कितने ही सुंदर हों, वे अशुभ हैं। क्योंकि सपनों के साथ तुम मोह— भंग की यात्रा पर निकले हो, जिसमें निराशा अनिवार्य है। और यह मोह— भंग जितना शीघ्र हो उतना बेहतर है।
लेकिन जैसे ही एक भ्रम टूटता है, तुम तुरंत उसकी जगह दूसरा भ्रम निर्मित कर लेते हो।' उनके बीच अंतराल आने दो; दो भ्रमों के बीच अंतराल आने दो; ताकि सत्य देखा जा सके। यह कठिन है; सत्य को सीधे—सीधे देखना कठिन है। हो सकता है, वह तुम्हारी कामनाओं के अनुकूल न हो। सत्य के लिए जरूरी नहीं है कि वह तुम्हारी कामनाओं के अनुकूल हो। लेकिन तब तुम्हें सत्य के साथ रहना होगा, सत्य में रहना होगा। और तुम सत्य में ही हो। तो अपने को धोखा देने की बजाय सत्य का सीधा साक्षात्कार, सत्य को सीधे—सीधे देख लेना बेहतर है।
तुम्हें बोध नहीं है कि तुम किस तरह प्रक्षेपण करते रहते हो। कोई कुछ कहता है और तुम कुछ का कुछ समझते हो। और तुम अपनी समझ के आधार पर चीजों को देखते हो और उनसे एक ताश का महल निर्मित कर लेते हो। लेकिन तुमने जो समझा वह कभी नहीं कहा गया था; और जो कहा गया था उसका अर्थ कुछ और ही था।
सदा उसे देखो जो है। जल्दबाजी मत करो। गलत समझने की बजाय न समझना कहीं बेहतर है। अपने को ज्ञानी समझने की बजाय जान—बूझ कर अज्ञानी बने रहना बेहतर है। अपने संबंधों को देखो—पति, पत्नी, मित्र, शिक्षक, मालिक, नौकर— सबको देखो। प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से सोच रहा है; प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की व्याख्या कर रहा है। उनमें कहीं कोई मिलन नहीं है, कहीं कोई संवाद नहीं है। वे लड़ रहे हैं, वे निरंतर संघर्ष में हैं। और यह संघर्ष दो व्यक्तियों के बीच नहीं है; यह संघर्ष दो झूठी प्रतिमाओं के बीच है।

171

हो, तो भी यहीं रहो। यहां से और इस क्षण से मत हटो। हटो ही मत। दुख सह लो, लेकिन आशा को मत प्रवेश करने दो। आशा के द्वारा स्वप्न प्रवेश करते हैं। निराश रहो, अगर जीवन में निराशा है तो निराश रहो। निराशा को स्वीकार करो; लेकिन भविष्य में होने वाली किसी घटना का सहारा मत लो।
और तब अचानक बदलाहट होगी। जब तुम वर्तमान में ठहर जाते हो तो सपने भी ठहर जाते हैं। तब वे नहीं उठ सकते, क्योंकि उनका स्रोत ही बंद हो गया। सपने उठते हैं, म् क्योंकि तुम उन्हें सहयोग देते हो, तुम उन्हें पोषण देते हो। सहयोग मत दो; पोषण मत दो।
यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन—पोषण करो।’
विशेष ज्ञान क्यों? तुम भी पोषण देते हो, लेकिन तुम विशेष सिद्धांतों
को पोषण देते हो, ज्ञान को नहीं। तुम विशेष शास्त्रों को पोषण देते हो, ज्ञान को नहीं। तुम विशेष मतवादों को, दर्शनशास्त्रों को, विचार— पद्धतियों को पोषण देते हो, लेकिन विशेष ज्ञान को कभी पोषण नहीं देते। यह सूत्र कहता है कि उन्हें हटाओ, दूर करो; शास्त्र और सिद्धांत किसी काम के नहीं हैं। अपना अनुभव प्राप्त करो जो प्रामाणिक हो; अपना ही ज्ञान हासिल करो, और उसे पोषण दो। कितना भी छोटा हो, प्रामाणिक अनुभव असली बात है। तुम उस पर अपने जीवन का आधार रख सकते हो। वे जैसे भी हों, जो भी हों, सदा प्रामाणिक अनुभवों की चिंता लो जो तुमने स्वयं जाने हैं। क्या तुमने स्वयं कुछ जाना है?
तुम बहुत कुछ जानते हो; लेकिन तुम्हारा सब जानना उधार है। किसी से तुमने सुना है; किसी ने तुम्हें दिया है। शिक्षकों ने, मां—बाप ने, समाज ने तुम्हें संस्कारित किया है। तुम ईश्वर के बारे में जानते हो; तुम प्रेम के संबंध में जानते हो; तुम ध्यान के विषय में जानते हो। लेकिन तुम यथार्थत: कुछ भी नहीं जानते। तुमने इनमें से किसी का स्वाद नहीं लिया है। यह सब उधार है। किसी दूसरे ने स्वाद लिया है; स्वाद तुम्हारा निजी नहीं है। किसी दूसरे ने देखा है; तुम्हारी भी आंखें हैं, लेकिन तुमने उनका उपयोग नहीं किया है। किसी ने अनुभव किया—किसी बुद्ध ने, किसी जीसस ने—और तुम उनका शान उधार लिए बैठे हो।
उधार ज्ञान झूठा है, और वह तुम्हारे काम का नहीं है। उधार ज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक है। क्योंकि अज्ञान तुम्हारा है, और ज्ञान उधार है। इससे तो अज्ञानी रहना बेहतर है, कम से कम तुम्हारा तो है, प्रामाणिक तो है, सच्चा है, ईमानदार है। उधार ज्ञान मत ढोओ, अन्यथा तुम भूल जाओगे कि तुम अज्ञानी हो; और तुम अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे।
यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन—पोषण करो।’
सदा ही जानने की कोशिश इस ढंग से करो कि वह सीधा हो, सच हो, प्रत्यक्ष हो। कोई विश्वास मत पकड़ो, विश्वास तुम्हें भटका देगा। अपने पर भरोसा करो, श्रद्धा करो। और अगर तुम अपने पर ही श्रद्धा नहीं कर सकते तो किसी दूसरे पर कैसे श्रद्धा कर सकते हो?
सारिपुत्र बुद्ध के पास आया और उसने कहा: 'मैं आपमें विश्वास करने के लिए आया हूं मैं आ गया हूं। मुझे आप में श्रद्धा हो, इसमें मेरी सहायता करें।’ बुद्ध ने कहा: 'अगर तुम्हें स्वयं में श्रद्धा नहीं है तो मुझमें श्रद्धा कैसे करोगे? मुझे भूल जाओ। पहले स्वयं में श्रद्धा करो; तो ही तुम्हें किसी दूसरे में श्रद्धा होगी।’
यह स्मरण रहे, अगर तुम्हें स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है तो किसी में
भी श्रद्धा नहीं हो सकती। पहली श्रद्धा सदा अपने में होती है; तो ही वह प्रवाहित हो सकती है, बह सकती है, तो ही वह दूसरों तक पहुंच सकती है। लेकिन अगर तुम कुछ जानते ही नहीं हो तो अपने में श्रद्धा कैसे करोगे? अगर तुम्हें कोई अनुभव ही नहीं है तो स्वयं में श्रद्धा कैसे होगी? अपने में श्रद्धा करो। और मत सोचो कि हम परमात्मा को ही दूसरों की आंखों से देखते हैं; साधारण अनुभवों में भी यही होता है। कोशिश करो कि साधारण अनुभव भी तुम्हारे अपने अनुभव हों। वे तुम्हारे विकास में सहयोगी होंगे; वे तुम्हें प्रौढ़ बनाएंगे, वे तुम्हें परिपक्वता देंगे।’'
बड़ी अजीब बात है कि तुम दूसरों की आंख से देखते हो, तुम दूसरों की जिंदगी से जीते हो। तुम गुलाब को सुंदर कहते हो। क्या यह सच में ही

174

तुम्हारा भाव है या तुमने दूसरों से सुन रखा है कि गुलाब सुंदर होता है? क्या यह तुम्हारा जानना है? क्या तुमने जाना है? तुम कहते हो कि चांदनी अच्छी है, सुंदर है। क्या यह तुम्हारा जानना है? या कवि इसके गीत गाते रहे हैं और तुम बस उन्हें दुहरा रहे हो?
अगर तुम तोते जैसे दुहरा रहे हो तो तुम अपना जीवन प्रामाणिक रूप से नहीं जी सकते। जब भी तुम कुछ कहो, जब भी तुम कुछ करो, तो पहले अपने भीतर जांच कर लो कि क्या यह मेरा अपना जानना है? मेरा अपना अनुभव है? उस सबको बाहर फेंक दो जो तुम्हारा नहीं है; वह कचरा है। और सिर्फ उसको ही मूल्य दो, पोषण दो, जो तुम्हारा है। उसके द्वारा ही तुम्हारा विकास होगा।
'यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन—पोषण करो।’
यहां 'यथार्थ में' को सदा स्मरण रखो। कुछ करो। क्या कभी तुमने स्वयं कुछ किया है या तुम केवल दूसरों के हुक्म बजाते रहे हो? केवल दूसरों का अनुसरण करते रहे हो? कहते हैं 'अपनी पत्नी को प्रेम करो।’ क्या तुमने यथार्थत: अपनी पत्नी को प्रेम किया है? या तुम सिर्फ कर्तव्य निभा रहे हो; क्योंकि तुम्हें कहा गया है, सिखाया गया है कि पत्नी को प्रेम करो, या मा को प्रेम करो, या पिता को, भाई को प्रेम करो? तुम्हारा प्रेम भी अनुकरण मात्र है। क्या तुमने कभी ऐसा प्रेम किया है जिसमें तुम थे? क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम्हारे प्रेम में किसी की सिखावन न काम कर रही हो, किसी का अनुसरण न हो रहा हो? क्या तुमने कभी प्रामाणिक रूप से प्रेम किया है?
तुम अपने को धोखा दे सकते हो; तुम कह सकते हो कि हां, किया है। लेकिन कुछ कहने के पहले ठीक से निरीक्षण कर लो। अगर तुमने सचमुच प्रेम किया होता तो तुम रूपांतरित हो जाते; प्रेम का वह विशेष कृत्य ही तुम्हें बदल डालता। लेकिन उसने तुम्हें नहीं बदला, क्योंकि तुम्हारा प्रेम झूठा है। और तुम्हारा पूरा जीवन ही झूठ हो गया है। तुम ऐसे काम किए जाते हो जो तुम्हारे अपने नहीं हैं। कुछ करो जो तुम्हारा अपना हो; और उसका पोषण क्रो। बुद्ध बहुत अच्छे हैं; लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। जीसस अच्छे हैं; लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। और अगर तुम अनुसरण करोगे तो तुम कुरूप हो जाओगे, तुम कार्बन कापी हो जाओगे। तब तुम झूठे हो जाओगे, और अस्तित्व तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा। वहां कुछ भी झूठ स्वीकृत नहीं है। बुद्ध को प्रेम करो, जीसस को प्रेम करो; लेकिन उनकी कार्बन कापी मत बनो। नकल मत करो; सदा अपनी निजता को अपने ढंग से खिलने दो। तुम किसी दिन बुद्ध जैसे हो जाओगे, लेकिन मार्ग बुनियादी तौर से तुम्हारा अपना होगा। किसी दिन तुम जीसस जैसे हो जाओगे, लेकिन तुम्हारा यात्रा—पथ भिन्न होगा, तुम्हारे अनुभव भिन्न होंगे। एक बात पक्की है: जो भी मार्ग हो, जो भी अनुभव हो, वह प्रामाणिक होना चाहिए, असली होना चाहिए, तुम्हारा होना चाहिए। तब तुम किसी न किसी दिन पहुंच जाओगे।
असत्य से तुम सत्य तक नहीं पहुंच सकते हो। असत्य तुम्हें और असत्य में ले जाएगा। जब कुछ करो तो भलीभांति स्मरण रखकर करो कि यह तुम्हारा अपना कृत्य हो, तुम खुद कर रहे हो; किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। तो एक छोटा सा कृत्य भी, एक मुस्कुराहट भी सतोरी का, समाधि का स्रोत बन सकती है।
तुम अपने घर लौटते हो और बच्चों को देखकर मुस्कुराते हो। यह मुस्कुराहट झूठी है; तुम अभिनय कर रहे हो। तुम इसलिए मुस्कुराते हो क्योंकि मुस्कुराना चाहिए। यह ऊपर से चिपकायी गई मुस्कुराहट है; तुम्हारे होंठों के अतिरिक्त तुम्हारा कुछ भी इस मुस्कुराहट में सम्मिलित नहीं है। यह मुस्कुराहट कृत्रिम है, यांत्रिक है। और तुम इसके इतने अभ्यस्त हो गए हो कि तुम बिलकुल ही भूल गए हो कि सच्ची मुस्कुराहट क्या है। तुम हंस सकते हो, लेकिन संभव है वह हंसी तुम्हारे केंद्र से न आ रही हो।
सदा ध्यान रखो कि तुम जो भी कर रहे हो उसमें तुम्हारा केंद्र सम्मिलित है या नहीं। अगर तुम्हारा केंद्र उस कृत्य में सम्मिलित नहीं है तो बेहतर है कि उस कृत्य को न करो। उसे बिलकुल मत करो। कोई तुम्हें कुछ करने के लिए मजबूर नहीं कर रहा है। बिलकुल मत करो। अपनी ऊर्जा को उस घड़ी के लिए बचा कर रखो जब कोई सच्चा भाव तुम्हारे भीतर उठे। और तब उसे करो। यों ही मत मुस्कुराओ; ऊर्जा को बचाकर रखो। मुस्कुराहट आएगी, जो तुम्हें पूरा का

175

क्या हुआ है? वे धन से लड़ रहे हैं। वे पहले जरूर ही लोभी, अति लोभी व्यक्ति रहे होंगे। तभी वे दूसरी अति पर पहुंच गए। उनकी धन की पकड़ आत्यंतिक रही होगी; वे धन के लिए पागल रहे होंगे; वे धन से ग्रस्त रहे होंगे। वे अब भी धन से ग्रस्त हैं, लेकिन अब उसकी दिशा बदल गई है। वे पहले धन की तरफ भाग रहे थे, अब वे धन से भाग रहे हैं। लेकिन भागना कायम है, पकड़ बनी है।
मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो किसी स्त्री को नहीं देख सकते। वे बहुत घबड़ा जाते है। अगर कोई स्त्री मौजूद हो तो वे आंखें झुकाए रखते है, वे सीधे नहीं देखते। क्या समस्या है? निश्चित ही, वे अति कामुक रहे होंगे, कामवासना से बहुत ग्रस्त रहे होंगे। वह ग्रस्तता अभी भी जारी है, लेकिन पहले वे स्त्रियों के पीछे भागते थे और अब वे स्त्रियों से दूर भाग रहे हैं। पर स्त्रियों से ग्रस्तता बनी हुई है; चाहे वे स्त्रियों की ओर भाग रहे हों या स्त्रियों से दूर भाग रहे हों, उनका मोह बना ही हुआ है।
वे सोचते हैं कि अब वे स्त्रियों से मुक्त हैं, लेकिन यह एक नया बंधन है। तुम प्रतिक्रिया करके मुक्त नहीं हो सकते। जिस चीज से तुम भागोगे वह पीछे के रास्ते से तुम्हें बांध लेगी; उससे तुम बच नहीं सकते। यदि कोई व्यक्ति संसार के विरोध में मुक्त होना चाहता है तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता, वह संसार में ही रहेगा। किसी चीज के विरोध में होना भी एक बंधन है। यह सूत्र बहुत गहरा है। यह कहता है. 'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष हैं.....।’
वे विपरीत नहीं, सापेक्ष हैं। मोक्ष क्या है? तुम कहते हो, जो बंधन नहीं है वह मोक्ष है। और बंधन क्या है? तब तुम कहते हो, जो मोक्ष नहीं है वह बंधन है। तुम एक—दूसरे से उनकी परिभाषा कर सकते हो। वे गर्मी और ठंडक की भांति हैं; विपरीत नहीं हैं। गर्मी क्या है और ठंडक क्या है? वे एक ही चीज की कम—ज्यादा मात्राएं हैं—ताप की मात्राएं हैं। लेकिन चीज एक ही है, गर्मी और ठंडक सापेक्ष हैं।
अगर एक बाल्टी में ठंडा पानी हो और दूसरी बाल्टी में गर्म पानी हो, और तुम अपना एक हाथ ठंडे पानी की बाल्टी में डालो और दूसरा हाथ गर्म पानी की बाल्टी में, तो तुम्हें क्या अनुभव होगा? तुम्हें जो अनुभव होगा वह बस ताप की मात्रा का फर्क होगा। और अगर तुम पहले दोनों हाथों को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लो और तब उनमें से एक को गरम पानी में डालो और दूसरे को ठंडे पानी में, तब क्या होगा? तब फिर तुम्हें फर्क मालूम पड़ेगा। गर्म पानी में पड़ा हाथ पहले से ज्यादा गर्मी महसूस करेगा। और अगर तुम्हारा दूसरा हाथ ठंडे पानी से भी ज्यादा ठंडा हो चुका है तो उसे ठंडा पानी भी गर्म मालूम पडेगा। ठंडा पानी उस हाथ के लिए ठंडा न रहा। बात सापेक्ष है। फर्क मात्रा का, डिग्री का है; चीज वही है।
तंत्र कहता है, बंधन और मोक्ष, संसार और निर्वाण दो चीजें नहीं हैं; वे सापेक्ष हैं, वे एक ही चीज की दो अवस्थाएं हैं। इसीलिए तंत्र अनूठा है। तंत्र कहता है कि तुम्हें बंधन से ही मुक्त नहीं होना है, तुम्हें मोक्ष से भी मुक्त होना है। जब तक तुम दोनों से मुक्त नहीं होते, तुम मुक्त नहीं हो।
तो पहली बात कि किसी भी चीज के विरोध में जाने की कोशिश मत करो, क्योंकि ऐसा करके तुम उसी चीज की किसी भिन्न अवस्था में प्रवेश कर जाओगे। वह विपरीत दिखाई पड़ता है, लेकिन विपरीत है नहीं। कामवासना से ब्रह्मचर्य में जाने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य कामुकता के सिवाय और कुछ नहीं होगा। लोभ से अलोभ में जाने की चेष्टा मत करो, क्योंकि वह अलोभ भी सूक्ष्म लोभ ही होगा। इसीलिए अगर कोई परंपरा अलोभ सिखाती तो उसमें भी वह तुम्हें कुछ लालच देती है।
मैं एक महात्मा के साथ ठहरा हुआ था। और वे अपने अनुयायियों को समझा रहे थे: 'अगर तुम लोभ छोड़ दोगे तो तुम्हें परलोक में बहुत मिलेगा। यदि तुम लोभ को त्याग दोगे तो दूसरे लोक में तुम्हें बहुत कुछ मिलेगा।’
जो लोग लोभी है, परलोक के लोभी है, वे इस उपदेश से बहुत प्रभावित होंगे। वे इसके लालच में बहुत कुछ छोड़ने को भी तैयार हो जाएंगे। लेकिन पाने की प्रवृत्ति, पाने की चाह बनी रहती है। अन्यथा लोभी आदमी अलोभ की

178

तरफ क्यों जाएगा? उसके लोभ की सूक्ष्म तृप्ति के लिए कुछ अभिप्राय, कुछ हेतु तो चाहिए ही।
तो विपरीत ध्रुवों का निर्माण मत करो। सभी विपरीतताए परस्पर जुड़ी हैं; वे एक ही चीज की भिन्न—भिन्न मात्राएं हैं। और अगर तुम्हें इसका बोध हो जाए तो तुम कहोगे कि दोनों ध्रुव एक हैं। अगर तुम यह अनुभव कर सके, और अगर यह अनुभव तुम्हारे भीतर गहरा हो सके, तो तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे। तब तुम न संसार चाहते हो न मोक्ष। वस्तुत: तब तुम कुछ भी नहीं चाहते हो; तुमने चाहना ही छोड दिया। और उस छोड़ने में ही तुम मुक्त हो गए। इस भाव में ही कि सब कुछ समान है, भविष्य गिर गया। अब तुम कहां जाओगे?
यदि कामवासना और ब्रह्मचर्य एक ही हैं, तो कहां जाना है? यदि लोभ और अलोभ एक ही हैं, हिंसा और अहिंसा एक ही हैं, तो फिर जाना कहा है? कहीं जाने को न बचा। सारी गति समाप्त हुई; भविष्य ही न रहा। तब तुम किसी चीज की भी कामना, कोई भी कामना नहीं कर सकते, क्योंकि सब कामनाएं एक ही हैं। फर्क केवल परिमाण का होगा। तुम क्या कामना करोगे? तुम क्या चाहोगे?
कभी—कभी मैं लोगों से पूछता हूं जब वे मेरे पास आते हैं, मैं पूछता हूं: 'सच में तुम क्या चाहते हो?' उनकी चाह उनसे ही पैदा होती है। वे जैसे हैं उसमें ही उसकी जड़ होती है। अगर कोई लोभी है तो वह अलोभ की चाह करता है। अगर कोई कामी है तो वह ब्रह्मचर्य की कामना करता है। कामी कामवासना से छूटना चाहता है, क्योंकि वह उससे पीड़ित है, दुखी है। लेकिन ब्रह्मचर्य की इस कामना की जड़ उसकी कामुकता में ही है।
लोग पूछते हैं: 'इस संसार से कैसे छूटा जाए?'
संसार उन पर बहुत भारी पड़ रहा है। वे संसार के बोझ के नीचे दबे जा रहे हैं। और वे संसार से बुरी तरह चिपके भी हैं, क्योंकि जब तक तुम संसार से चिपकते नहीं हो तब तक संसार तुम्हें बोझिल नहीं कर सकता। यह बोझ तुम्हारे सिर में है; और उसका कारण तुम हो, बोझ नहीं। तुम इसे ढो रहे हो। और लोग सारा संसार उठाए हैं; और फिर वे दुखी होते हैं। और दुख के इसी अनुभव से विपरीत कामना का उदय होता है, और वे विपरीत के लिए लालायित हो उठते हैं।
पहले वे धन के पीछे भाग रहे थे, अब वे ध्यान के पीछे भाग रहे हैं। पहले
वे इस लोक में कुछ पाने के लिए भाग—दौड़ कर रहे थे; अब वे परलोक में कुछ पाने के लिए भाग—दौड़ कर रहे हैं। लेकिन भाग—दौड़ जारी है। और भाग—दौड़ ही समस्या है, विषय अप्रासंगिक है। कामना समस्या है; चाह समस्या है। तुम क्या चाहते हो, यह अर्थपूर्ण नहीं है; तुम चाहते हो, यह समस्या है।
और तुम चाह के विषय बदलते रहते हो। आज तुम 'क' चाहते हो, कल 'ख’ चाहते हो,
और तुम समझते हो कि मैं बदल रहा हूं। और फिर परसों तुम 'ग' की चाह करते हो, और तुम सोचते हो कि मैं रूपांतरित हो गया। लेकिन तुम वही हो। तुमने 'क' की चाह की, तुमने ‘ख’ की चाह की, तुमने ‘ग’ की चाह की; लेकिन यह क—ख—ग तुम नहीं हो; तुम तो वह हो जो चाहता है, जो कामना करता है। और वह वही का वही रहता है। तुम बंधन चाहते हो और फिर उससे निराश हो जाते हो, ऊब जाते हो। और तब तुम मोक्ष की कामना करने लगते हो। लेकिन तुम कामना करना जारी रखते हो। और कामना बंधन है; इसलिए तुम मोक्ष की कामना नहीं कर सकते। चाह ही बंधन है; इसलिए तुम मोक्ष नहीं चाह सकते। जब कामना विसर्जित होती है तो मोक्ष है; चाह का छूट जाना मोक्ष है।.
इसीलिए यह सूत्र कहता है: 'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष हैं।’
तो विपरीत से ग्रस्त मत होओ।
'ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए हैं।’
बंधन और मोक्ष, ये शब्द उनके लिए हैं जो विश्व से भयभीत हैं।
'यह विश्व मन का प्रतिबिंब है।’
तुम संसार में जो कुछ देखते हो वह प्रतिबिंब है। अगर वह बंधन जैसा दिखता है तो उसका मतलब है कि वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। और अगर यह विश्व मुक्ति जैसा दिखता है तो भी वह तुम्हारा प्रतिबिंब है।
'जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन और मोक्ष को देखो।’
सुबह सूरज उगता है। और सरोवर अनेक हैं—बड़े और छोटे, शुद्ध और गंदे, सुंदर और कुरूप। एक ही सूरज इन अनेक सरोवरों में प्रतिबिंबित होता है। जो

179

व्यक्ति प्रतिबिंबों को गिनेगा वह सोचेगा कि सूर्य अनेक हैं। और जो प्रतिबिंबों को न देखकर यथार्थ को देखेगा उसे एक सूर्य ही दिखेगा।
जिस संसार को तुम देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। अगर तुम कामुक
हो तो सारा संसार तुम्हें कामुक मालूम पड़ेगा। और अगर तुम चोर हो तो सारा संसार तुम्हें उसी धंधे में संलग्न मालूम पड़ेगा।
एक बार मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी, दोनों मछली पकड़ रहे थे। और वह जगह प्रतिबंधित थी, केवल लाइसेंस लेकर ही लोग वहां मछली पकड सकते थे। अचानक एक पुलिस का सिपाही वहा आ गया। मुल्ला की पत्नी ने कहा. 'मुल्ला, तुम्हारे पास लाइसेंस है, तुम भागों; इस बीच मैं यहां से खिसक जाऊंगी।’ मुल्ला भागने लगा। वह भागता गया, भागता गया और सिपाही उसका पीछा करता रहा। मुल्ला ने अपनी पत्नी को वहीं छोड़ दिया और भागने लगा।
दौड़ते—दौड़ते मुल्ला को ऐसा लगा कि उसकी छाती फट जाएगी। तभी उस सिपाही ने उसे पकड़ लिया; सिपाही भी पसीने से तरबतर था। उसने मुल्ला से पूछा: 'तुम्हारा लाइसेंस कहां है?' मुल्ला ने लाइसेंस निकाल कर दिखाया। सिपाही ने गौर से लाइसेंस को देखा और उसे सही पाया। और तब उसने पूछा: 'नसरुद्दीन, फिर तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हारे पास लाइसेंस था तो तुम भाग क्यों रहे थे?'
मुल्ला ने कहा: 'मैं एक डाक्टर के पास जाता हूं और वह कहता है कि भोजन
के बाद आधा मील दौड़ा करो।' सिपाही ने कहा. 'ठीक है; लेकिन जब तुमने देखा कि मैं तुम्हारे पीछे भाग रहा हूं चिल्ला रहा हूं तब तुम क्यों नहीं रुके?' नसरुद्दीन ने कहा: 'मैं समझा कि शायद तुम भी उसी डाक्टर के पास जाते हो।’ बिलकुल तर्कसंगत है; यही हो रहा है। तुम अपने चारों तरफ जो कुछ देखते
हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब ज्यादा है, यथार्थ कम। तुम अपने को ही सब जगह प्रतिबिंबित देख रहे हो। और जिस क्षण तुम बदलते हो, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बदल जाता है। और जिस क्षण तुम समग्रत: मौन हो जाते हो, शांत हो जाते हो, सारा संसार भी शात हो जाता है। संसार बंधन नहीं है; बंधन केवल एक प्रतिबिंब है। संसार मोक्ष भी नहीं है, मोक्ष भी प्रतिबिंब है। बुद्ध को सारा संसार निर्वाण में दिखाई पड़ता है। कृष्ण को सारा जगत नाचता—गाता, आनंद में, उत्सव मनाता हुआ दिखाई पड़ता है। उन्हें कहीं कोई दुख नहीं दिखाई पड़ता है।
लेकिन तंत्र कहता है कि तुम जो भी देखते हो वह प्रतिबिंब ही है, जब तक सारे दृश्य नहीं विदा हो जाते और शुद्ध दर्पण नहीं बचता—प्रतिबिबरहित दर्पण। वही सत्य है। अगर कुछ भी दिखाई देता है तो वह प्रतिबिंब ही है। सत्य एक है; अनेक तो प्रतिबिंब ही हो सकते हैं। और एक बार यह समझ में आ जाए — सिद्धांत के रूप में नहीं, अस्तित्वगत, अनुभव के द्वारा—तो तुम मुक्त हो, बंधन और मोक्ष दोनों से मुक्त हो।
नरोपा जब बुद्धत्व को उपलब्ध हुए तो किसी ने उनसे पूछा. 'क्या आपने मोक्ष को प्राप्त कर लिया?' नरोपा ने कहा. 'हां और नहीं दोनों। हां, क्योंकि मैं बंधन में नहीं हूं; और नहीं, क्योंकि वह मोक्ष भी बंधन का ही प्रतिबिंब था। मैं बंधन के कारण ही मोक्ष की सोचता था।’
इसे इस ढंग से देखो। जब तुम बीमार होते हो तो स्वास्थ्य की कामना करते हो। यह स्वास्थ्य की कामना तुम्हारी बीमारी का ही अंग है। अगर तुम स्वस्थ ही हो तो तुम स्वास्थ्य की कामना नहीं करोगे। कैसे करोगे? अगर तुम सच में स्वस्थ हो तो फिर स्वास्थ्य की चाह कहां है? उसकी जरूरत क्या है?
अगर तुम यथार्थत: स्वस्थ हो तो तुम्हें कभी यह महसूस नहीं होता है कि मैं स्वस्थ हूं। सिर्फ बीमार, रोगग्रस्त लोग ही महसूस कर सकते हैं कि हम स्वस्थ हैं। उसकी जरूरत क्या है? तुम कैसे महसूस कर सकते हो कि तुम स्वस्थ हो? अगर तुम स्वस्थ ही पैदा हुए, अगर तुम कभी बीमार नहीं हुए, तो क्या तुम अपने स्वास्थ्य को महसूस कर सकोगे?
स्वास्थ्य तो है, लेकिन उसका अहसास नहीं हो सकता। उसका अहसास तो विपरीत के द्वारा, विरोधी के द्वारा ही हो सकता है। विपरीत के द्वारा ही, उसकी पृष्ठभुमि में ही किसी चीज का अनुभव होता है। अगर तुम बीमार हो तो स्वास्थ्य का अनुभव कर सकते हो; और अगर तुम्हें स्वास्थ्य का अनुभव हो रहा है तो निश्चित जानो कि तुम अब भी बीमार हो।

180

तो नरोपा ने कहा 'ही और नहीं दोनों। ही इसलिए कि अब कोई बंधन नहीं रहा,
और नहीं इसलिए कि बंधन के जाने के साथ मुक्ति भी विलीन हो गई। मुक्ति बंधन का ही हिस्सा थी। अब मैं दोनों के पार हूं न बंधन में हूं और न मोक्ष में।’ धर्म को चाह मत बनाओ। धर्म को कामना मत बनाओ। मोक्ष को, निर्वाण को कामना का विषय मत बनाओ। वह तभी घटित होता है जब सारी कामनाएं खो जाती हैं।

आज इतना ही।

तंत्र-सूत्र, भाग 3
छयालीसवां प्रवचन

समझ और समग्रता कुंजी है

पहला प्रश्न:
समझ और आपने कल कहा कि मोक्ष या समाधि की कामना भी तनाव और बाधा है। लेकिन क्या यह सही नहीं है कि यह कामना न होकर आकांक्षा है, मनुष्य की मूलभूत अभीप्सा है?

यह समझना जरूरी है कि कामना क्या है, चाह क्या है। धर्मों ने इस संबंध में लोगों में बहुत भ्रम पैदा कर रखा है। अगर तुम कोई सांसारिक चीज चाहते हो, तो वे इसे कामना कहते हैं, वासना कहते हैं। और अगर तुम कोई परलोक की चीज चाहते हो तो वे उसे भिन्न नाम से पुकारते हैं। यह बहुत बेतुका है, अनर्गल है। कामना कामना है; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसका विषय क्या है। विषय कुछ भी हो सकता है—चाहे इस लोक का हो, पार्थिव हो, या परलोक का हो, आध्यात्मिक हो—लेकिन कामना वही रहती है।
और प्रत्येक कामना बंधन है, प्रत्येक चाह बंधन है। यदि तुम ईश्वर को चाहते हो तो वह भी बंधन है। मोक्ष की कामना भी बंधन है। और जब तक यह कामना पूरी तरह विदा नहीं होती तब तक मोक्ष नहीं घटित हो सकता। स्मरण रहे, तुम मोक्ष की कामना नहीं कर सकते। यह असंभव है; यह विरोधाभासी है। तुम निष्काम हो जाओ, और मोक्ष घटित होगा। लेकिन मोक्ष तुम्हारी कामना का फल नहीं है, वह निष्काम होने का सहज परिणाम है।
अत: कामना को समझने की कोशिश करो। कामना का अर्थ है कि ठीक अभी, वर्तमान में तुम संतुष्ट नहीं हो, तुम तृप्त नहीं हो। इस क्षण तुम्हें अपने साथ तृप्ति नहीं मिल रही है, और तुम सोचते हो कि भविष्य में कोई चीज— यदि वह फलीभूत हो—तुम्हें शाति देने वाली है, तृप्ति देने वाली है। तुम्हारी तृप्ति सदा भविष्य में होती है; वह कभी यहां और अभी नहीं होती। भविष्य के प्रति मन का यह खिंचाव, यह फैलाव, यह तनाव ही कामना है। कामना का अर्थ है कि तुम वर्तमान में नहीं हो। और जो कुछ है वह वर्तमान में है। और तुम कहीं भविष्य में हो जो कि अभी नहीं है। भविष्य न कभी आया है, न कभी आने वाला है। और जो कुछ भी है सब वर्तमान है, यही क्षण है।
भविष्य में कहीं तृप्ति की कल्पना ही कामना है। वह तृप्ति क्या है, इससे मतलब नहीं है। वह ईश्वर का राज्य हो सकता है, स्वर्ग हो सकता है या निर्वाण हो सकता है, वह कुछ भी हो सकता है; लेकिन अगर भविष्य में है तो वह कामना है। और स्मरण रहे, तुम वर्तमान में कामना नहीं कर सकते; वह संभव नहीं है। वर्तमान में तुम सिर्फ हो सकते हो; तुम कामना नहीं कर सकते। वर्तमान में कामना कैसे कर सकते हो? कामना भविष्य में, कल्पना में और स्वप्न में ले जाती है।
इसीलिए बुद्ध निर्वासना पर इतना जोर देते हैं। निर्वासना से ही तुम सत्य में प्रवेश पा सकते हो। वासना स्वप्न में ले जाती है, भविष्य स्वप्न है। और जब तुम भविष्य में सपने देखने लगते हो तो तुम्हें निराशा ही हाथ लगेगी। तुम भविष्य के स्वप्नों के लिए वर्तमान वास्तविकता के प्रति आंखें बंद कर रहे हो। और मन की यह तुम्हारी आदत रोज—रोज बलशाली होती जाएगी; और यह आदत तुम्हारे साथ रहेगी। तो जब भविष्य आएगा वह वर्तमान के रूप में ही आएगा, और तुम्हारा मन किसी और भविष्य में गति कर जाएगा। अगर तुम्हें ईश्वर भी मिल जाए तो भी तुम संतुष्ट नहीं होगे। तुम जैसे हो उसमें संतुष्ट होना असंभव है। परमात्मा की उपस्थिति में भी तुम किसी भविष्य में सरक जाओगे।
तुम्हारा मन सदा भविष्य में गति करता रहता है। और मन की भविष्य में यह यात्रा ही कामना है, इच्छा है, चाह है। कामना का विषय से कोई लेना—देना नहीं है; तुम धन चाहते हो या ध्यान, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहना असली बात है; असली बात है कि तुम कुछ चाहते हो। उसका अर्थ है कि तुम यहां नहीं हो। उसका अर्थ है कि तुम वर्तमान क्षण में नहीं हो। और वर्तमान क्षण ही अस्तित्व का एकमात्र द्वार है। अतीत और भविष्य द्वार नहीं, दीवारें हैं।

182

तुम सोचते तो सदा यही हो कि मैं अपने को सुख में ले जा रहा हूं और रू सदा दुख में पहुंच जाते हो। यही जन्मों—जन्मों से हो.रहा है। तुम सदा सोचते हो कि यह रहा स्वर्ग का द्वार, और उसमें प्रवेश करने पर तुम्हें सदा पता चला है कि यह तो नरक है। और ऐसा निरपवाद रूप से होता आया है, सदा—सदा से होता आया है।
अब तुम प्रत्येक कामना में स्मरणपूर्वक, होश के साथ प्रवेश करो, और प्रत्येक कामना को तुम्हें दुख में ले जाने दो। तब किसी दिन अचानक तुम्हें यह समझ आएगी, तुम्हें यह परिपक्वता घटित होगी, और तुम समझोगे कि प्रत्येक कामना दुख है। और जिस क्षण तुम्हें यह बोध होता है, कामना गिर जाती है। तब कुछ करना नहीं पड़ता है; कामना अपने आप ही तिरोहित हो जाती है, सूखे पत्ते की भांति गिर जाती है। तब तुम अकाम की अवस्था में होते
हो। और उसी अकाम अवस्था में निर्वाण है, परम आनंद है। तुम उसे परमात्मा कह सकते हो,
परमात्मा का राज्य कह सकते हो, या जो भी नाम देना चाहो दे सकते हो। लेकिन ठीक से स्मरण रखो कि यह तुम्हारी कामना का फल नहीं है, यह अकाम का सहज परिणाम है।
और ध्यान रहे, अकाम का अभ्यास नहीं किया जा सकता है। जो अकाम का अभ्यास करते हैं वे अपने को ही धोखा दे रहे हैं। सारी दुनिया में ऐसे अनेक लोग हैं, भिक्षु हैं, संन्यासी हैं, जो निष्काम होने का अभ्यास कर रहे हैं। लेकिन तुम निष्काम होने का अभ्यास नहीं कर सकते; किसी भी नकारात्मक चीज का अभ्यास नहीं हो सकता है। जो निष्काम की साधना करते हैं वे भीतर— भीतर कामना ही कर रहे हैं। वे परमात्मा की कामना कर रहे हैं; वे उस शाति की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उन्हें साधना से प्राप्त होने वाली है, वे उस आनंद की राह देख रहे हैं जो मृत्यु के बाद कहीं भविष्य में उन्हें उपलब्ध होने वाला है।
वे कामना ही कर रहे हैं, और वे अपनी कामना को आध्यात्मिक कामना कह रहे हैं। तुम अपने को बहुत आसानी से धोखा दे सकते हो। शब्द बहुत धोखेबाज होते हैं। तुम चीजों को तर्कसंगत बना सकते हो, उन्हें बुद्धि का समर्थन दे सकते हो। तुम जहर को अमृत कह सकते हो, और जब तुम उसे अमृत कहते हो तो वह अमृत प्रतीत होने लगता है। तो शब्द सम्मोहित करते हैं, यह एक बात हुई। लेकिन यह भाव, यह अनुभूति कि कामना दुख है, तुम्हारी अपनी होनी चाहिए।
मेरी स्टीवेंस ने कहीं लिखा है कि वह अपने एक मित्र को मिलने उसके घर
गई थी। मित्र की बेटी अंधी थी। लेकिन मेरी स्टीवेंस को यह देखकर बहुत हैरानी हुई कि वह अंधी लड़की अक्सर कह बैठती थी 'वह आदमी कुरूप है, मैं उसे पसंद नहीं करती,' या कि 'इस पोशाक का रंग बहुत सुंदर है।’ चूकि वह अंधी थी, स्टीवेंस ने उससे पूछा कि तुम कैसे समझती हो कि कोई व्यक्ति कुरूप है या कोई रंग सुंदर है? लड़की ने जवाब दिया कि मेरी बहिनें ये बातें बताती रहती हैं।
यह ज्ञान है। बुद्ध ने कहा कि तृष्णा दुख है, और तुम उसे दोहरा रहे हो।
यह ज्ञान है। तुम कामना कर रहे हो, और तुमने कभी स्वयं नहीं जाना कि कामना दुख है। तुमने बस बुद्ध को सुना है। उससे काम नहीं चलेगा। तुम सिर्फ अपना जीवन और अवसर गंवा रहे हो। तुम्हारा अपना अनुभव ही तुम्हें बदल सकता है; कोई दूसरी चीज तुम्हें नहीं बदल सकती। ज्ञान उधार नहीं लिया जा सकता; उधार ज्ञान धोखा है। वह ज्ञान जैसा दिखाई पड़ता है; लेकिन वह शान नहीं है। लेकिन क्यों हम किसी बुद्ध या किसी जीसस का अनुगमन करते हैं? क्यों? इसका कारण हमारा लोभ है। हम बुद्ध की आंखों को देखते हैं; वे इतनी शात हैं कि हममें लोभ पैदा होता है, कामना पैदा होती है कि कैसे हमें वह शाति प्राप्त हो जाए। बुद्ध इतने आनंदित हैं; उनका प्रत्येक क्षण समाधि में है। यह देखकर हमें लगता है कि हम कैसे बुद्ध जैसे हों। हम भी अपने लिए उस अवस्था की आकांक्षा करने लगते हैं।
और तब हम पूछने लगते हैं कि बुद्ध को यह अवस्था कैसे प्राप्त हुई? और यही 'कैसे' अनेक समस्याएं खड़ी करता है। बुद्ध कहेंगे कि यह शाति, यह आनंद निष्काम में घटित होता है। और बुद्ध ठीक कहते हैं; यह उन्हें निष्काम में ही घटित हुआ है। लेकिन जब हम सुनते हैं कि निष्काम में यह घटित हुआ तो हम

184

निष्काम होने का अभ्यास करने लगते हैं, हम कामनाओं को छोड़ने का प्रयत्न करने लगते हैं।
लेकिन बुद्ध जैसे होने का यह सारा प्रयत्न कामना ही तो है। बुद्ध किसी दूसरे जैसे होने की चेष्टा नहीं कर रहे थे। वे किसी से बुद्ध होने के लिए नहीं पूछ रहे थे। वे केवल अपने दुख को समझने की चेष्टा कर रहे थे। और जैसे—जैसे उनकी समझ बढ़ती गई, वैसे—वैसे उनका दुख विलीन होता गया। और एक दिन वे समझ गए कि कामना विष है।
अगर तुम्हें कोई भी चाह है तो तुम पकड़े गए; अब कभी तुम्हारे सुखी होने
की संभावना न रही। अब तुम सिर्फ आशा कर सकते हो; आशा करो और निराशा हाथ लगेगी। फिर और आशा और निराशा, यह चक्र चलता रहेगा। जब तुम और निराश होते हो तो तुम और आशा करने लगते हो, क्योंकि वही एकमात्र सांत्वना है। तुम भविष्य में भागने लगते हो, क्योंकि वर्तमान में तो सदा निराशा ही मिलती है।
और यह निराशा तुम्हारे अतीत के कारण आ रही है। जो अभी वर्तमान है वह अतीत में तुम्हारा भविष्य था, और तुमने आशा की थी। अब यह निराशा है। अब तुम फिर भविष्य के लिए आशा करने लगोगे। और जब वह वर्तमान बनेगा तो तुम फिर निराश होओगे। तब तुम फिर आशा करोगे। फिर और निराशा होगी तो और आशा करोगे; जितनी अधिक आशा करोगे, उतनी अधिक निराशा आती रहेगी। यह दुष्टचक्र है; यही संसार चक्र है।
लेकिन कोई बुद्ध तुम्हें अपनी आंखें नहीं दे सकते हैं। और यह शुभ है
कि वे तुम्हें अपनी आंखें नहीं दे सकते; अन्यथा तुम हमेशा नकली बने रहोगे, झूठे बने रहोगे। तब तुम कभी प्रामाणिक नहीं हो सकोगे। दुख से गुजरना अच्छा है, क्योंकि दुख से गुजर कर ही तुम प्रामाणिक हो सकते हो, सच्चे हो सकते हो।
तो पहली बात कि अपनी कामनाओं को जीओ, ताकि तुम समझ सको कि वे यथार्थत: क्या हैं। उनमें जो भी दुख छिपा है, उससे गुजरो, उसे अनुभव करो, उसे प्रकट होने दो। वही तपश्चर्या है—एकमात्र तपश्चर्या।
नरोपा ने कहा है कि अगर तुम सावचेत, होशपूर्ण रह सको तो प्रत्येक कामना निर्वाण में पहुंचा देती है।
इसका यही अर्थ है; वह निर्वाण में इसीलिए पहुंचा देती है क्योंकि तुम सावचेत होकर जान लेते हो कि प्रत्येक कामना दुख है। और जब तुम कामना को अच्छी तरह देख लेते हो, समझ लेते हो तो तुम अचानक ठहर जाते हो। और उसी ठहरने में घटना घटती है। वह घटना तो सदा मौजूद है, और वह सदा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, वर्तमान में तुमसे मिलने की राह देख रही है। लेकिन तुम कभी वर्तमान में नहीं होते; तुम सदा सपने देखते रहते हो।
सत्य ही तुम्हें सम्हाले हुए है। सत्य के कारण तुम जीवित हो; सत्य के कारण ही तुम हो। लेकिन तुम सदा असत्य में सरकते रहते हो। असत्य बहुत सम्मोहक है।
मैने एक यहूदी मजाक सुना है। अनेक वर्षों के बाद दो मित्र मिले। एक ने दूसरे से पूछा: 'मैं पच्चीस वर्षों बाद तुमसे मिल रहा हूं तुम्हारा बेटा कैसा है? हैरी कैसा है?' दूसरे ने कहा: 'वह बेटा कवि हो गया है; वह बड़ा कवि है। पूरे देश में उसकी आवाज सुनी जाती है, उसके गीत गाए जाते हैं। और जो लोग कविता समझते हैं वे कहते हैं कि देर—अबेर वह नोबल पुरस्कार छ वाला।’ मित्र ने कहा: 'बहुत खूब! और अपने दूसरे बेटे बेन्नी के बारे में बताओ,
वह कैसा है?' उस मित्र ने कहा: 'मैं अपने दूसरे बेटे से अति प्रसन्न हूं। वह नेता है, महान राजनेता; और हजारों उसके अनुयायी हैं। और मुझे विश्वास है कि देर—अबेर वह इस देश का प्रधान मंत्री होने वाला है।’ मित्र ने कहा: 'क्या कहने हैं! तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। और तुम्हारे तीसरे बेटे इजी का क्या हाल है?' यह प्रश्न सुनकर पिता बहुत उदास हो गया और बोला: 'इजी? इजी अभी इजी ही है। वह दर्जी है। लेकिन मैं तुमसे कहूं कि अगर इजी नहीं होता तो हम लोग भूखे मरते होते।’
लेकिन बाप दुखी था कि इजी मामूली दर्जी था। और जो कवि और महान राजनेता थे, वे सपने थे। इजी सत्य है—दर्जी। लेकिन बाप ने कहा कि उसके बिना हम लोग भूखे मरते।

185

तुम भी नहीं होते अगर यह क्षण नहीं होता; यह क्षण सत्य है। लेकिन तुम कभी उससे प्रसन्न नहीं होते; तुम अपने भविष्य के स्वप्नों से, नोबल पुरस्कार विजेताओं और प्रधानमंत्रियों से प्रसन्न रहते हो। अभी इजी महज दर्जी है।
तुम्हारा सत्य वहां है जहां तुम खड़े हो, जहां तुम्हारी जड़ें हैं। जहां के तुम सपने देख रहे हो, वहां तुम हो नहीं; वे सपने झूठे हैं। मौजूदा क्षण में जो तुम्हारी वास्तविकता है उसे सीधे—सीधे देखो। वह जो भी है उसका साक्षात करो, सामना करो, और मन को भविष्य में मत सरकने दो। भविष्य कामना है, चाह है। और अगर तुम यहीं और अभी हो सको तो तुम बुद्ध हो। और अगर तुम यहीं और अभी नहीं हो सकते तो सब कुछ सपना है। और तुम्हें वापस आना होगा, क्योंकि सपने कहीं नहीं पहुंचा सकते। वे तुम्हें आशा और निराशा में ही पहुंचा सकते हैं; लेकिन उनसे कुछ वास्तविक हाथ नहीं आता है।
लेकिन मेरी यह बात स्मरण रहे कि नकल करने से, अनुकरण करने से कुछ नहीं होगा। तुम्हें दुख से गुजरना ही होगा। दुख ही मार्ग है। दुख तुम्हें निखारता है, शुद्ध करता है। दुख तुम्हें सजग बनाता है; तुम्हें होशपूर्ण बनाता है। और तुम जितने बोधपूर्ण होगे उतने ही कम कामना से भरे होगे। अगर तुम परिपूर्ण बोध से भरे हो तो कोई कामना नहीं पैदा होती है। और परिपूर्ण बोध के अतिरिक्त ध्यान का और कुछ अर्थ नहीं है।

दूसरा प्रश्न:
कृपया समझाने की कृपा करें कि कोई व्यक्ति क्रोध, घृणा और हिंसा के कृत्यों में समग्र होकर आध्यात्मिक रूपांतरण को कैसे उपल्बध हो सकता है।

हां, तुम क्रोध, घृणा और हिंसा के द्वारा भी समग्रत: रूपांतरित हो सकते हो। और दूसरा कोई मार्ग भी नहीं है; क्योंकि तुम हिंसा में, क्रोध में, लोभ में, वासना में ही हो। तुम जहां हो वहीं से मार्ग आरंभ हो सकता है। तो मैं तुम्हें नहीं कहूंगा कि अपने लोभ के विपरीत अलोभ पैदा करो। मैं कहूंगा कि पूरी तरह लोभी हो जाओ, लेकिन होश पूरा रहे। वैसे ही मैं कहूंगा कि हिंसक होओ, क्रोधी होओ; लेकिन समग्रतापूर्वक हिंसा और क्रोध में उतरो। तो ही तुम उनकी पीड़ा को अनुभव कर सकोगे; तो ही तुम उनके पूरे जहर को अनुभव कर सकोगे। इस आग से तुम्हें गुजरना ही होगा। कोई दूसरा तुम्हारे लिए यह काम नहीं कर सकता; इसमें एजेंट की, दलाल की गुंजाइश नहीं है।
ईसाई सोचते हैं कि जीसस मुक्ति लाएंगे; लेकिन अब तक मुक्ति नहीं? आई। संसार वैसे का वैसा है। जीसस को सूली लगे दो हजार साल बीत गए; लेकिन हम आशा किए जा रहे हैं कि कोई दूसरा हमारे लिए दुख भोगेगा और हम आनंद को उपलब्ध हो जाएंगे।
नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सूली आप ही ढोना है। जीसस को सूली लगी; वे पहुंच गए। तुम नहीं पहुंच सकते, तुम्हें स्वयं सूली से गुजरना होगा। और यही सूली हैं—क्रोध, कामना, हिंसा, लोभ, ईर्ष्या—यही सूली हैं। तुम उनके साथ क्या कर रहे हो?
समाज सिखाता है कि उनके विपरीत ध्रुव निर्मित करो। लोभ है तो लोभ का दमन करो और अलोभ साधो। क्रोध है तो क्रोध का दमन करो और अक्रोध साधो। उस ऊर्जा को नीचे ढकेल दो और मुस्कुराओ। इससे क्या होता है? क्रोध भीतर इकट्ठा होता जाता है, और तुम ज्यादा से ज्यादा क्रोधी होते जाते हो। क्योंकि दमित क्रोध की और—और ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती रहती है। यह तुम्हारा अचेतन भंडार बन जाता है; और इसके विपरीत तुम मुस्कुराते रहते हो। वह मुस्कुराहट झूठी है, क्योंकि जब भीतर क्रोध बल मार रहा है तो तुम बाहर हंस कैसे सकते हो? अगर तुम हंसोगे तो वह हंसी झूठी होगी।
अब तुम दो में बंट गए; बाहर झूठी हंसी है और भीतर सच्चा क्रोध। झूठी हंसी तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारा वस्त्र बन जाती है और सच्चा क्रोध तुम्हारी आत्मा बना रहता है। और तुम अपने विरुद्ध ही बंटे रहते हो, एक सतत संघर्ष चलता रहता है। और झूठी हंसी के साथ तुम सुखी नहीं हो सकते; उससे कोई धोखे में नहीं आ सकता है। वैसे ही तुम भीतर छिपे सच्चे क्रोध के रहते भी सुखी नहीं हो सकते; वह निरंतर प्रकट होने की चेष्टा कर रहा है।

186

शायद तुम्हें पता न हो, जीव—रसायन शास्त्री कहते हैं कि जब कोई प्रेम में होता है या क्रोध में होता है या कामवासना में होता है, तो उसके शरीर से अलग— अलग तरह की गंध निकलती है। यह बात प्रतीकात्मक नहीं है, यथार्थ है। जब तुम क्रोध में होते हो, तुम्हारे शरीर से एक दुर्गंध निकलती है; और जब तुम प्रेम में होते हो तो गंध का गुण भिन्न होता है। और जब कामवासना तुम्हें पकड़ती है तो बिलकुल भिन्न गंध निकलती है।
पशु गंध से ही एक—दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। जब मादा तैयार होती है तो उसकी काम—ग्रंथियों से एक सूक्ष्म गंध निकलती है और उससे ही नर उसकी तरफ आकर्षित होता है। अगर वह गंध नहीं है तो उसका मतलब है कि मादा तैयार नहीं है। यही कारण है कि कुत्ते सूंघते हैं, वे कामवासना को सूंघ सकते हैं।
तुम अगर कामुक हो तो तुम भी एक सूक्ष्म गंध छोड रहे हो। और अगर तुम क्रोध में हो तो भी, क्योंकि भिन्न—भिन्न भावदशा में रक्त—व्यवस्था में भिन्न—भिन्न रसायन पैदा होते हैं। शायद सचेतन रूप से कोई न भी जान सके, लेकिन अचेतन रूप से इसे सभी पहचान लेते हैं। क्रोध में, हिंसा में तुम बोझ हो जाते हो; विकर्षण और विध्वंसक हो जाते हो।
इस विष को अपने से निकालो। और स्मरण रहे, इसे शून्य में निकालना अच्छा है। और आकाश काफी बड़ा है; वह उसे तुम पर वापस नहीं फेंकेगा। आकाश उसे पी जाएगा और तुम हलके हो जाओगे, मुक्त हो जाओगे। तो जो भी करो उसे ध्यानपूर्वक करो, समग्रता से करो—क्रोध को भी, हिंसा को भी, कामवासना को भी।
एकांत में क्रोध करने की बात तो तुम आसानी से सोच सकते हो; लेकिन तुम एकांत में ध्यानपूर्वक संभोग भी निर्मित कर सकते हो। और उसके बाद तुम्हारी गुणवत्ता ही और होगी। जब बिलकुल अकेले हो, कमरे को बंद कर लो और ऐसे गति करो जैसे काम—कृत्य में करते हो। अपने पूरे शरीर को गति करने दो; उछलो और चीखो, जो जी में आए करो। और उसे समग्रता से करो। सामाजिक निषेध आदि सब भूल जाओ काम—कृत्य में ध्यानपूर्वक और अकेले डूब जाओ। लेकिन अपनी समग्र कामुकता को प्रकट होने दो।
जब दूसरा है तो उसके साथ समाज सदा उपस्थित है। क्योंकि दूसरा व्यक्ति उपस्थित है, समाज उपस्थित है। और इतने गहन प्रेम में होना कठिन है कि तुम्हें लगे कि दूसरा उपस्थित नहीं है। सिर्फ अत्यंत गहन प्रेम में, अति घनिष्ठता में ही संभव है कि तुम अपने प्रेमी या प्रेमिका के साथ ऐसे रहो जैसे कि वह नहीं है।
घनिष्ठता का यही अर्थ है। अगर तुम अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी के साथ एक कमरे में होकर भी अनुभव करो कि तुम अकेले हो, कि तुम्हें किसी दूसरे का डर नहीं है, तो ही तुम संभोग में समग्रता से उतर सकते हो। अन्यथा दूसरे की उपस्थिति सदा ही बाधा पैदा करती है। दूसरा तुम्हें देख रहा है, न जाने वह अपने मन में क्या सोचेगा! हो सकता है कि वह सोचे कि यह क्या करते हो, जानवर की तरह व्यवहार करते हो!
कुछ ही दिन पूर्व एक महिला यहां आई थी। वह अपने पति की शिकायत करने आई थी। उसने कहा: 'मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती; वे जब भी मेरे साथ संभोग में उतरते हैं, वे जानवर की तरह व्यवहार करने लगते हैं।’
जब दूसरा उपस्थित है तो दूसरा तुम्हें देख रहा है। उसके देखने में यह प्रश्न हो सकता है कि यह तुम क्या कर रहे हो! और तुम्हें सिखाया गया है कि कुछ चीजें हैं जो करने योग्य हैं, और कुछ चीजें हैं जो करने योग्य नहीं हैं। तो दूसरे की उपस्थिति में तुम्हें बाधा पहुंचती है; तुम काम—कृत्य में समग्र नहीं हो सकते।
लेकिन यदि गहन प्रेम हो तो तुम संभोग में ऐसे उतर सकते हो जैसे कि अकेले हो। और जब दो शरीर एक हो जाते हैं तो वे एक लय में घड़कते हैं; तब द्वैत मिट जाता है, और तब काम अपनी समग्रता में प्रकट हो सकता है।
और काम क्रोध की तरह नहीं है। क्रोध सदा ही कुरूप होता है; काम सदा कुरूप नहीं होता। कभी—कभी काम अत्यंत सुंदर होता है; लेकिन कभी—कभी ही। जब मिलन पूर्ण होता है, जब दो व्यक्ति एक लयबद्धता में खो जाते हैं, जब उनकी श्वासें एक हो जाती हैं, जब उनके प्राण एक वर्तुल में घूमते हैं, जब

190

कभी सृजनात्मक नहीं होती, उससे कोई सृजन नहीं हो सकता। वैसे ही क्रोध
भी सदा विध्वंसक है। लेकिन काम के साथ ऐसी बात नहीं है। काम सृजनात्मकता का स्त्रोत है। परमात्मा ने सृजन के लिए काम का उपयोग किया है। लेकिन कामुकता ईर्ष्या, क्रोध और लोभ जैसी चीज है; वह सदा विध्वंसात्मक है। काम विध्वंसात्मक नहीं है।
लेकिन हमें शुद्ध काम का पता ही नहीं है, हम सिर्फ कामुकता जानते हैं।
जो आदमी अश्लील चित्र देखता है या जो कामुक फिल्म देखने जाता है, वह काम नहीं, कामुकता की खोज में है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो अपनी पत्नी के साथ संभोग में उतरने से पूर्व गंदी पत्रिकाओं, पुस्तकों या चित्रों को उलट—पलट कर देख लेते हैं। इन्हें देखकर ही उन्हें कामोत्तेजना होती है। असली पत्नी उनके लिए कुछ नहीं है; एक चित्र, एक नग्न स्त्री का चित्र उनके लिए ज्यादा उत्तेजक होता है। यह उत्तेजना नैसर्गिक नहीं है, यह उनके मस्तिष्क में है। और काम जब मस्तिष्क में चला जाता है तो वही कामुकता है; काम का चिंतन कामुकता है।
काम को जीना, काम को भोगना सर्वथा भिन्न चीज है। और अगर तुम काम को जी सको तो तुम उसके पार जा सकते हो। जो भी चीज समग्रता से जी ली जाए, तुम उसका अतिक्रमण कर जाते हो। तो किसी चीज से डरो नहीं; उसे जीओ। अगर तुम सोचते हो कि यह दूसरों के लिए हानिप्रद हो सकता है तो उसमें अकेले उतरो; तब दूसरों के साथ उसमें मत उतरो। और अगर तुम समझते हो कि यह सृजनात्मक होगा, रचनात्मक होगा, तो कोई भागीदार खोजो, कोई मित्र ढूंढो। तब जोड़े बना लो— तांत्रिक युगल—और फिर काम—कृत्य में पूरी समग्रता से प्रवेश करो। फिर भी यदि तुम्हें लगता है कि दूसरे की उपस्थिति बाधा बन रही है तो इसमें अकेले ही उतरना बेहतर है।

अंतिम प्रश्न:

क्या बुद्ध पुरुष भी कभी स्वप्न देखते हैं? क्या आप हमें बुद्ध पुरुषों की नींद कीं गुणवत्ता और स्वभाव के संबंध में कुछ बताने की कृपा करेंगे?

नहीं, बुद्ध पुरुष स्वप्न नहीं देख सकते हैं। और अगर तुम्हें स्वप्न बहुत पसंद हैं तो कभी बुद्ध मत होना। सावधान! स्वप्न देखना नींद का अंग है। स्वप्न देखने के लिए पहली चीज यह है कि तुम्हें नींद में जाना होगा। साधारण स्वप्नों के लिए तुम्हें नींद में उतरना आवश्यक है। नींद में तुम अचेतन हो जाते हो, और जब तुम अचेतन होते हो, तो स्वप्न घटित होते हैं। वे तुम्हारे अचेतन में ही घटित हो सकते हैं।
बुद्ध पुरुष सोते हुए भी चेतन रहते हैं, वे अचेतन नहीं हो सकते। अगर तुम उन्हें बेहोश करने की दवा, क्लोरोफार्म या वैसी ही कोई चीज भी दे दो तो भी उनकी परिधि ही सोएगी। वे स्वयं जागरूक, सचेतन रहते हैं; उनका चैतन्य खंडित नहीं हो सकता।
कृष्ण गीता में कहते हैं कि जब सब लोग सोते हैं, योगी जागता है। ऐसा नहीं है कि योगी रात में नींद नहीं लेते, वे भी सोते हैं। लेकिन उनकी नींद की गुणवत्ता भिन्न है; उनका शरीर ही सोता है। और तब उनकी नींद' सुंदर होती है, वह विश्राम है।
तुम्हारी नींद विश्राम नहीं है। हो सकता है कि तुम्हारी नींद भी श्रम हो, और सुबह उठकर तुम शाम से भी ज्यादा थके—मांदे अनुभव करो। सारी रात सोने के बाद सुबह तुम ज्यादा थकावट अनुभव करते हो। हो क्या रहा है? तुम चमत्कार कर रहे हो!
तुम्हारी सारी रात एक आंतरिक उपद्रव थी। तुम्हारा शरीर विश्राम नहीं
कर सका, क्योंकि तुम्हारा मन बहुत सक्रिय था। और मन की सक्रियता शरीर को अनिवार्यत: थकाती है, क्योंकि मन शरीर के बिना सक्रिय नहीं हो सकता। मन की सक्रियता का अर्थ है शरीर की समांतर सक्रियता; फलत: सारी रात तुम्हारा शरीर करवटें बदलता है, सक्रिय रहता है। यही कारण है कि सुबह तुम ज्यादा थके—मांदे महसूस करते हो।

किसी के बुद्ध होने का क्या अर्थ है? एक ही अर्थ है कि अब वह पूर्णत: जाग्रत है, सचेतन है; उसके मन में जो भी चलता है उसका उसे बोध है। और जब तुम बोधपूर्ण होते हो तो कुछ चीजें होनी बिलकुल बंद हो जाती हैं; बोध के आते ही वे बंद हो जाती हैं। यह ऐसे ही है जैसे इस कमरा में अंधेरा है, और तुम एक दीया लाते हो और अंधकार गायब हो जाता है। सब चीजें नहीं गायब होती हैं; किताबों की अलमारिया बनी रहती हैं, हम जो बैठे हैं बैठे रहते हैं। दीया लाने से सिर्फ अंधकार विलीन होता है।
जब कोई व्यक्ति आत्मोपलब्ध होता है तो उसे एक आंतरिक प्रकाश उपलब्ध होता है। वह आंतरिक प्रकाश बोध है; और उस बोध से मूर्च्छा मिटती है, नींद मिटती है—और कुछ नहीं। लेकिन नींद के मिटते ही सब चीजों की गुणवत्ता बदल जाती है। अब वह जो भी करेगा पूरे होश में करेगा, और अब वे चीजें असंभव हो जाएंगी जिनके लिए मूर्च्छा या नींद अनिवार्य है।
अब वह क्रोध नहीं कर सकता है; इसलिए नहीं कि उसने क्रोध न करने का कोई निर्णय लिया है। नहीं, अब क्रोध करना उसके लिए असंभव है। जब तुम बेहोश हो, मूर्च्छित हो, तो ही क्रोध संभव है। मूर्च्छा के जाते ही क्रोध का आधार चला जाता है और क्रोध असंभव हो जाता है। वह घृणा भी नहीं कर सकता, क्योंकि घृणा भी मूर्च्छा में ही संभव है। वह व्यक्ति प्रेम हो जाता है; इसलिए नहीं कि उसने प्रेम का कोई निर्णय लिया है। जब प्रकाश होता है, जब बोध होता है, तो प्रेम प्रवाहित होता है। यह स्वाभाविक है।
तो बुद्ध पुरुष के लिए स्वप्न देखना असंभव हो जाता है, क्योंकि स्वप्न देखने के लिए सबसे पहले मूर्च्छा जरूरी है, और वह मूर्च्छित नहीं है।
बुद्ध का शिष्य आनंद उनके साथ ही, उनके कमरे में ही सोता था। एक दिन उसने बुद्ध से कहा: 'यह तो चमत्कार है; यह बहुत अदभुत बात है। आप नींद में कभी करवट नहीं बदलते हैं।’ बुद्ध सारी रात एक करवट ही सोते थे; जिस करवट वे रात सोने के लिए लेटते थे, सुबह नींद से जागते समय भी वे उसी करवट में होते थे। और उनके हाथ भी सारी रात एक ही स्थान पर रखे रहते थे। संभवत: तुमने बुद्ध की शयनमुद्रा की मूर्ति देखी होगी। उसे शयनासन कहते हैं। वे इसी एक आसन में सारी रात सोते थे। आनंद ने वर्षों उन्हें देखा था। जब भी वह बुद्ध को सोए हुए देखता, वे सारी रात एक ही तरह से सोए होते। तो उसने पूछा: 'मुझे कहें कि सारी रात आप क्या करते हैं? आप एक ही आसन में होते हैं?'
कहते हैं कि बुद्ध ने कहा: 'सिर्फ एक बार मैंने नींद में करवट बदली थी, लेकिन तब मैं बुद्ध नहीं था। बुद्धत्व के घटित होने के कुछ दिन पूर्व मैंने नींद में करवट ली थी, लेकिन तभी मुझे अचानक बोध हुआ और आश्चर्य हुआ कि मैं करवट क्यों ले रहा हूं! मैंने मूर्च्छा में करवट ली थी, जिसका मुझे कोई होश नहीं था। लेकिन बुद्धत्व के बाद उसकी कोई जरूरत न रही। अगर मैं चाहूं तो करवट ले सकता हूं, लेकिन उसकी जरूरत नहीं है। शरीर पूरे विश्राम में है।’
बोध नींद में भी प्रवेश कर जाता है। लेकिन तुम सारी रात एक ही करवट पड़े रह सकते हो और उससे तुम बुद्ध नहीं होगे। तुम उसका अभ्यास कर सकते हो; वह कठिन नहीं है। तुम अपने साथ जबरदस्ती कर सकते हो, और थोड़े ही दिन में तुम इसे साध सकते हो। लेकिन वह कोई बात नहीं है। और अगर तुम जीसस को करवट लेते देखो तो मत सोचना कि वे करवट क्यों लेते हैं! यह उन पर निर्भर है। अगर जीसस नींद में करवट लेते हैं तो भी वे सावचेत हैं। वे चाहें तो करवट ले सकते हैं।
मेरे साथ बिलकुल उलटा हुआ। बोध को उपलब्ध होने के पूर्व मैं सारी रात
एक ही करवट सोता था; मुझे नहीं याद है कि मैंने कभी करवट बदली हो। लेकिन उसके बाद से मैं सारी रात करवटें बदलता रहता हूं एक करवट में पांच मिनट रहना काफी है। मैं बार—बार करवट बदलता हूं। मैं इतना बोधपूर्ण हूं कि असल में यह नींद बिलकुल नहीं है।
तो यह व्यक्ति—व्यक्ति पर निर्भर है। लेकिन तुम बाहर से कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते, यह सदा भीतर से संभव होता है।
बुद्ध पुरुष को नींद में भी बोध बना रहेगा; और तब स्वप्न संभव नहीं है। स्वप्न के लिए मूर्च्छा जरूरी है—यह एक बात हुई। और स्वप्न के लिए

193

आधे—अधूरे अनुभव जरूरी हैं—यह दूसरी बात। लेकिन बुद्ध पुरुष के कोई आधे — अधूरे अनुभव नहीं होते; उनकी हर चीज पूरी होती है। उन्होंने भोजन कर लिया तो वे फिर भोजन के संबंध में सोच—विचार नहीं करते हैं। जब उन्हें फिर भूख लगेगी तो वे फिर भोजन ले लेंगे; लेकिन इस बीच वे भोजन की नहीं सोचेंगे। उन्होंने स्नान कर लिया तो वे अब कल के स्नान का विचार नहीं करेंगे। जब उसका समय आएगा, और अगर वे जिंदा रहे, तो वे फिर स्नान कर लेंगे। यदि परिस्थिति ने इजाजत दी तो स्नान हो जाएगा, लेकिन उसके संबंध में कोई विचार नहीं है। कृत्य तो हैं; लेकिन उनके संबंध में विचार नहीं हैं। लेकिन तुम क्या करते हो? तुम सतत पूर्वाभ्यास करते हो, कल के लिए निरंतर रिहर्सल करते हो। मानो तुम कोई अभिनेता हो और तुम्हें किसी को अपना नाटक दिखाना है। तुम रिहर्सल क्यों करते हो? जब समय आएगा तो तुम तो मौजूद ही रहोगे।
बुद्ध पुरुष क्षण में जीते हैं, कृत्य में पूरे मौजूद होते हैं। और वे इतनी समग्रता से जीते हैं कि कुछ अधूरा नहीं रहता है। जो अधूरा रह जाता है उसे ही स्वप्न में पूरा करना पड़ता है। स्वप्न परिपूरक है। स्वप्न इसीलिए आता है क्योंकि मन किसी काम को आधा—अधूरा नहीं छोड़ सकता। अगर कोई चीज अधूरी रह गई है तो मन को बेचैनी महसूस होती है कि कैसे उसे पूरा किया जाए। तब तुम स्वप्न में उसे पूरा करते हो और तभी चैन पाते हो। यदि वह स्वप्न में भी पूरा हो जाता है तो मन को विश्राम मिलता है।
तुम्हारे सपने क्या हैं? तुम क्या सपना देखते हो? तुम दिन में जिन कामों को पूरा नहीं कर सके, उन अपूर्ण कामों को स्वप्न में पूरा करते हो। दिन में तुम किसी स्त्री को चूमना चाहते थे, लेकिन चूम न सके। अब तुम स्वप्न में उसे चूमोगे, और तब तुम्हारा मन चैन पाएगा। उससे तनाव मिट जाता है।
तुम्हारे सपने देखने का कारण तुम्हारा आधा—अधूरा जीना है; और बुद्ध पुरूष पूर्ण है। वे जो भी करते हैं उसे इतनी पूर्णता से, इतनी समग्रता से करते हैं कि कुछ भी अधूरा नहीं रह जाता है। तब स्वप्न देखने की कोई जरूरत नहीं रहती है। रात में स्वप्न खो जाते हैं और दिन में विचार खो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि वे विचार करने में असमर्थ हो जाते हैं। जरूरत होने पर
वे विचार कर सकते हैं। यदि तुम उन्हें कोई प्रश्न पूछोगे तो वे तुरंत विचार करेंगे; लेकिन उन्हें किसी पूर्वाभ्यास की जरूरत नहीं है। तुम तो पहले विचार करते हो और तब उत्तर देते हो। लेकिन उनकी विचारणा ही उनका उत्तर होती है, वे जो विचारते हैं वही उत्तर में कहते हैं। ऐसा कहना भी शायद ठीक नहीं है; उनके विचारने और उत्तर देने में कोई अंतराल नहीं होता है; दोनों युगपत होते हैं। उनके विचार साथ ही साथ वाणी से अभिव्यक्त हो जाते हैं।
लेकिन वे कोई पूर्वाभ्यास नहीं करते, वे विचार नहीं करते, वे स्वप्न नहीं देखते; वे जीवन को जीते हैं। और तुम विचार करने और स्वप्न देखने में ही जीवन को गंवा देते हो।

आज इतना ही।

194

तंत्र-सूत्र, भाग 3
सैंतालीसवां प्रवचन

मूलाधार से सहस्त्रार की ज्योति—यात्रा

सूत्र:
70—अपनी प्राण—शक्ति को मेरूदंड में ऊपर उठती,
एक केंद्र से दूसरे केंद्र की और गति करती हुई
प्रकाश—किरण समझों; ओरइस भांति तुममें
जीवंतता का उदय होता है।
71—या बीच के रिक्त स्थानों में ये बिजली कौंधने
जैसा है—ऐसा भाव करो।
72—भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।

मनुष्य को तीन रूपों में सोचा जा सकता है—सामान्य, असामान्य और अधिसामान्य। पश्चिमी मनोविज्ञान असामान्य मनुष्य की, रुग्ण मनुष्य की सामान्य से, औसत से नीचे गिर गए मनुष्य की चिंता लेता है। और पूर्वीय मनोविज्ञान—तंत्र और योग—अधिसामान्य मनुष्य के दृष्टिकोण से मनुष्य पर विचार करता है, उस मनुष्य के दृष्टिकोण से मनुष्य पर विचार करता है जो सामान्य के, औसत के पार चला गया है। दोनों ही असामान्य हैं। जो मनुष्य रुग्ण है, बीमार है, वह असामान्य है; क्योंकि वह स्वस्थ नहीं है। और जो मनुष्य अधिसामान्य है वह भी असामान्य है; क्योंकि वह सामान्य मनुष्य से ज्यादा स्वस्थ है। भेद ऋण और धन का है।
पश्चिमी मनोविज्ञान मनोचिकित्सा के अंग के रूप में विकसित हुआ। फ्रायड, कै, एडलर तथा दूसरे मनोवैज्ञानिक असामान्य लोगों की, मानसिक रूप से रुग्ण लोगों की चिकित्सा कर रहे थे। इस कारण मनुष्य के प्रति पश्चिम की पूरी दृष्टि भ्रांत हो गई है। फ्रायड बीमार लोगों का अध्ययन कर रहा था। कोई स्वस्थ आदमी क्यों उसके पास जाता! सिर्फ वे लोग उसके पास जाते थे जो मानसिक रूप से रुग्ण थे। उसने उन लोगों का ही अध्ययन किया, और इस अध्ययन से उसने सोचा कि मैंने मनुष्य को समझ लिया।
लेकिन बीमार मनुष्य दरअसल पूरी तरह मनुष्य नहीं हैं। वे रुग्ण हैं, बीमार हैं। और जो चीज उनके अध्ययन पर आधारित होगी वह निश्चित ही पूरी तरह गलत होगी, हानिकारक होगी। यह बात हानिकारक सिद्ध हुई, क्योंकि यह मनुष्य को रुग्णता के दृष्टिकोण से देखती है। अगर चित्त की एक विशेष दशा चुनी जाती है और वह दशा रुग्ण है, बीमार है, तो मनुष्य का पूरा चित्र रोग— आधारित हो जाता है।
इसी दृष्टिकोण के कारण सारा पश्चिमी समाज नीचे गिर गया, क्योंकि रुग्ण मनुष्य उसकी नींव बन गया है, विकृत मनुष्य उसका आधार बन गया है। और अगर तुम सिर्फ असामान्य लोगों का अध्ययन करोगे तो तुम अधिसामान्य लोगों के होने की कल्पना भी नहीं कर सकते। बुद्ध फ्रायड के लिए असंभव हैं, अकल्पनीय हैं। निश्चित ही, फ्रायड के लिए बुद्ध काल्पनिक हैं, पौराणिक हैं; वे उसके लिए सत्य नहीं हो सकते। फ्रायड सिर्फ बीमार लोगों के संपर्क में आया; वे लोग सामान्य भी नहीं थे। इसलिए वह सामान्य लोगों के संबंध में भी जो कहता है वह असामान्य लोगों के अध्ययन पर आधारित है।
यह ऐसा ही है जैसे कि अगर कोई चिकित्सक, कोई डाक्टर अध्ययन करना चाहे
तो वह बीमार लोगों का ही अध्ययन करेगा। कोई स्वस्थ आदमी क्यों उसके पास जाएगा? उसकी जरूरत नहीं है। अस्वस्थ लोग ही उसके पास जाएंगे। और इतने अस्वस्थ लोगों का अध्ययन करके वह अपने मन में मनुष्य का जो चित्र निर्मित करेगा वह निश्चित ही मनुष्य का चित्र नहीं हो सकता है। वह मनुष्य का चित्र नहीं हो सकता है, क्योंकि मनुष्य बस रोग ही रोग नहीं है। और अगर तुम मनुष्य की धारणा रोगों पर आधारित बनाओगे तो उसका दुष्परिणाम पूरे समाज को भोगना पड़ेगा।
पूर्वीय मनोविज्ञान के पास, विशेषकर तंत्र और योग के पास भी मनुष्य
की एक धारणा है; लेकिन वह धारणा अधिसामान्य लोगों के, बुद्ध, पतंजलि, शंकर, नागार्जुन, कबीर, नानक जैसे लोगों के अध्ययन पर आधारित है। ये वे लोग हैं

195

करता है। तुम जो हो और जो हो सकते हो तंत्र उसकी फिक्र करता है। और यह बहुत बड़ा फर्क है।
अन्य सभी देशनाएं, दूसरे सभी शास्त्र आदर्शों की फिक्र करते हैं। वे कहते हैं कि बुद्ध बनो, जीसस बनो; यह बनो, वह बनो। उनके आदर्श हैं, और तुम्हें उन आदर्शों के अनुरूप बनना है। तंत्र तुम्हें कोई आदर्श नहीं देता है। तुम्हारा अज्ञात आदर्श तुम्हारे भीतर ही छिपा है; वह तुम्हें दिया नहीं जा सकता। तुम्हें बुद्ध नहीं बनना है; उसकी कोई जरूरत नहीं है। एक बुद्ध काफी हैं; पुनरुक्ति का कोई मूल्य नहीं है।
अस्तित्व सदा अनूठा है, वह अपने को कभी नहीं दोहराता है। दोहराना ऊब पैदा करता है। अस्तित्व सदा नया है, नितनूतन है, शाश्वत रूप से नया है। वह बुद्ध को भी दोबारा नहीं पैदा करता है; बुद्ध जैसी सुंदर घटना को भी नहीं दोहराता है।
क्यों? क्योंकि बुद्ध भी यदि दोहराए जाएं तो ऊब ही पैदा करेंगे। और फिर उपयोग क्या है? मौलिक का ही, अनूठे का ही मूल्य है, नकल का कोई मूल्य नहीं है। अगर तुम मौलिक हो सको, स्वयं हो सको, तो ही तुम्हारी नियति पूरी होगी। यदि तुम नकल हो, किसी की अनुकृति हो, तो तुम चूक गए।
तो तंत्र यह कभी नहीं कहता कि इसके जैसे बनो या उसके जैसे बनो, कोई आदर्श नहीं है। तंत्र कभी आदर्शों की बात नहीं करता है; इसीलिए तो इसका नाम तंत्र है। तंत्र विधियों की चर्चा करता है; वह कभी आदर्शों की बात नहीं करता। वह समझाता है कि तुम कैसे हो सकते हो; यह नहीं कि तुम्हें क्या होना है। उस 'कैसे' के कारण ही तंत्र का अस्तित्व है; तंत्र शब्द का अर्थ ही विधि है, उपाय है। तुम कैसे हो सकते हो, तंत्र इसकी फिक्र करता है; तुम क्या हो सकते हो, तंत्र इसकी फिक्र नहीं करता।
वह जो 'क्या' है वह तुम्हारे विकास से पैदा होगा, तुम्हारी वृद्धि से आएगा। तुम सिर्फ विधि का प्रयोग करो, और धीरे— धीरे तुम्हारी आंतरिक संभावना वास्तविक होती जाएगी। तब वह अज्ञात, अप्रकट संभावना प्रकट हो जाएगी। और जैसे—जैसे वह प्रकट होगी, तुम्हें बोध होगा कि वह क्या है। और कोई नहीं कह सकता कि वह क्या है; जब तक तुम वह हो ही नहीं जाते, कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि तुम क्या हो सकते हो।
तो तंत्र केवल विधियां देता है; वह कभी आदर्श नहीं देता। और यहीं वह सभी नैतिक शिक्षाओं से भिन्न है। नैतिक शिक्षाएं सदा आदर्श देती हैं। अगर वे विधियों की बात भी करती हैं तो वे विधियां सदा किसी आदर्श विशेष के लिए होती हैं। तंत्र तुम्हें कोई आदर्श नहीं देता; तुम स्वयं आदर्श हो। और तुम्हारा भविष्य अज्ञात है। अतीत से मिला कोई भी आदर्श काम का नहीं है, क्योंकि कुछ भी पुनरुक्त नहीं हो सकता। और अगर पुनरुक्त होता है तो वह व्यर्थ है। झेन संत कहते हैं कि स्मरण रखो और सजग रहो। अगर तुम्हें ध्यान में बुद्ध मिल जाएं तो तुरंत उनकी हत्या कर दो; उन्हें वहां टिकने ही मत दो। झेन संत बुद्ध के अनुयायी हैं; तो भी वे कहते हैं कि यदि बुद्ध ध्यान में मिल जाएं तो उन्हें तुरंत समाप्त कर देना। क्योंकि बुद्ध का व्यक्तित्व, बुद्ध का आदर्श इतना सम्मोहक हो सकता है कि तुम स्वयं को भूल जा सकते हो। और अगर तुम स्वयं को भूल गए तो तुम मार्ग से च्युत हो गए। बुद्ध आदर्श नहीं हैं; तुम स्वयं आदर्श हो, तुम्हारा अज्ञात भविष्य आदर्श है। उसे ही आविष्कृत करना है। तंत्र उसे आविष्कृत करने की विधि देता है। खजाना तुम्हारे भीतर ही है। तो यह दूसरी बात स्मरण रखो। यह मानना बहुत कठिन है कि तुम स्वयं आदर्श हो। मानना कठिन इसलिए है क्योंकि हरेक आदमी तुम्हारी निंदा कर रहा है। कोई व्यक्ति तुम्हें स्वीकार नहीं करता है, तुम खुद भी तो अपने को स्वीकार नहीं करते हो। तुम सतत अपनी निंदा करते रहते हो। तुम सदा किसी दूसरे जैसे होने की भाषा में सोचते रहते हो, और यह गलत है, खतरनाक है। अगर तुम इस तरह सोचते रहोगे तो तुम नकली हो जाओगे, तुम्हारा सब कुछ झूठा हो जाएगा।
अंग्रेजी में नकली के लिए एक शब्द है: फोनी। क्या तुम जानते हो कि यह फोनी शब्द कहां से आता है? यह टेलीफोन से आता है। टेलीफोन के आरंभिक दिनों में संप्रेषण में आवाज इतनी बदल जाती थी कि टेलीफोन से असली आवाज और एक नकली आवाज, दोनों सुनाई पड़ती थीं। नकली आवाज वह थी जो यांत्रिक थी। असली

197

आवाज तो उन शुरू के दिनों म् में न के बराबर सुनाई पड़ती थी। उससे ही नकली के लिए अंग्रेजी में फोनी शब्द आया।
अगर तुम किसी का अनुकरण कर रहे हो तो तुम फोनी हो जाओगे, नकली हो जाओगे; तुम सच्चे नहीं रहोगे। तुम्हें चारों ओर से एक यांत्रिकता घेरे रहेगी, और उसमें तुम्हारी अपनी आवाज, तुम्हारा यथार्थ, तुम्हारा सत्य, सब खो जाएगा। तो नकली मत बनो, प्रामाणिक बनो, सच्चे बनो।
तंत्र को तुम पर भरोसा है। यही कारण है कि तंत्र को मानने वाले इतने थोड़े हैं। कोई व्यक्ति अपने पर भरोसा नहीं करता है। तंत्र तुम पर श्रद्धा करता है, और कहता है कि तुम स्वयं आदर्श हो। इसलिए किसी का अनुकरण मत करो; अनुकरण तुम्हारे चारों ओर एक झूठा व्यक्तित्व निर्मित कर देगा। और तुम उस झूठे व्यक्तित्व को यह सोचकर ढोए जाओगे कि वह तुम्हारा अपना व्यक्तित्व है। लेकिन वह तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं है।
तो दूसरी बात स्मरण रखने की यह है कि तुम्हारा कोई निश्चित, नियत आदर्श नहीं है। तुम भविष्य की भाषा में नहीं सोच सकते, केवल वर्तमान की भाषा में सोच सकते हो—प्रत्यक्ष भविष्य की भाषा में ही सोच सकते हो। उसमें ही विकास संभव है।
कोई नियत भविष्य नहीं है। और यह अच्छा है कि भविष्य नियत नहीं है। अन्यथा स्वतंत्रता संभव नहीं होती; अगर भविष्य नियत है तो आदमी रोबोट हो जाएगा, यंत्र—मानव हो जाएगा। तुम्हारा भविष्य नियत नहीं है; तुम्हारी संभावनाएं अनंत हैं। तुम अनेक आयामों में विकास कर सकते हो। लेकिन जो चीज तुम्हें परम परितोष देगी, वह यह है कि तुम विकास करो। और यह विकास इस ढंग से हो कि प्रत्येक विकास और—और विकास का द्वार बने।
विधियां सहयोगी हैं, क्योंकि वे वैज्ञानिक हैं। तुम व्यर्थ के भटकाव
से बच जाओगे; तुम्हें बेकार ही इधर—उधर टटोलना नहीं पड़ेगा। अगर तुम किसी विधि का उपयोग नहीं करते हो तो तुम्हें अनेक जन्म लग जाएंगे। तुम मंजिल पर तो पहुंच जाओगे, क्योंकि तुम्हारे अंदर की जीवन—ऊर्जा तब तक गति करती रहेगी जहां से आगे गति करना संभव नहीं होगा। जीवन—ऊर्जा अपने अंतिम बिंदु तक, उच्चतम शिखर तक यात्रा करती रहेगी। यही कारण है कि व्यक्ति को बार—बार जन्म लेना पड़ता है। अपने आप भी तुम पहुंच सकते हो; लेकिन तुम्हें बहुत—बहुत लंबी यात्रा करनी होगी, और वह यात्रा बहुत नीरस और उबाने वाली होगी।
किसी सदगुरु के साथ, वैज्ञानिक विधियों के साथ तुम बहुत समय, अवसर और ऊर्जा की बचत कर सकते हो। और कभी—कभी तो तुम क्षणों में इतना विकास कर सकते हो जितना जन्मों—जन्मों में भी संभव नहीं होगा। अगर सम्यक विधि प्रयोग की जाए तो विकास का विस्फोट घटित होता है।
और ये विधियां लाखों वर्ष तक प्रयोग में लाई गई हैं। ये किसी एक व्यक्ति की ईजाद नहीं हैं; अनेक—अनेक साधकों ने इनके आविष्कार में योगदान दिया है। और यहां इनका सार—सूत्र ही दिया गया है। इन एक सौ बारह विधियों में दुनियाभर की सारी विधियां सम्मिलित हैं; कहीं कोई ऐसी विधि नहीं है जो इन एक सौ बारह विधियों में नहीं है, जो इन एक सौ बारह विधियों में नहीं समाविष्ट की गई है। ये विधियां समस्त आध्यात्मिक खोज का नवनीत हैं।
लेकिन सभी विधियां सभी के लिए नहीं हैं। तो तुम्हें उनका प्रयोग करके देखना होगा। कोई—कोई विधि ही तुम्हारे काम की होगी, और तुम्हें उसे खोजना होगा। दो उपाय हैं। एक कि स्वयं के प्रयोग और भूल के द्वारा कोई विधि तुम्हारे हाथ लग जाए जो काम करने लगे और
तुम विकास करने लगो। फिर तुम उसे जारी रख सकते हो। दूसरा उपाय है कि तुम किसी गुरु के प्रति समर्पित हो जाओ और वह तुम्हारे योग्य विधि चुन दे। ये दो रास्ते हैं, और चुनाव तुम पर निर्भर है। अब विधियों को लें।

पहली विधि:
अपनी प्राण— शक्ति को मेरुदंड में ऊपर उठती एक केंद्र से दूसरे केंद्र की ओर गति करती हुई प्रकाश— किरण समझो; और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।

198

योग के अनेक साधन, अनेक उपाय इस विधि पर आधारित हैं। पहले समझो कि यह क्या है, और फिर इसके प्रयोग को लेंगे।
मेरुदंड, रीढ़ तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क दोनों का आधार है। तुम्हारा मस्तिष्क, तुम्हारा सिर तुम्हारे मेरुदंड का ही अंतिम छोर है। मेरुदंड पूरे शरीर की आधारशिला है। अगर मेरुदंड युवा है तो तुम युवा हो। और अगर मेरुदंड बूढ़ा है तो तुम बूढ़े हो। अगर तुम अपने मेरुदंड को युवा रख सको तो बूढ़ा होना कठिन होगा। सब कुछ इस मेरुदंड पर निर्भर है। अगर तुम्हारा मेरुदंड जीवंत है तो तुम्हारे मन—मस्तिष्क में मेधा होगी, चमक होगी। और अगर तुम्हारा मेरुदंड जड़ और मृत है तो तुम्हारा मन भी बहुत जड़ होगा। समस्त योग अनेक ढंगों से तुम्हारे मेरुदंड को जीवंत, युवा, ताजा और प्रकाशपूर्ण बनाने की चेष्टा करता है।
मेरुदंड के दो छोर हैं। उसके आरंभ में काम—केंद्र है और उसके शिखर पर सहस्रार है—सिर के ऊपर जो सातवां चक्र है। मेरुदंड का जो आरंभ है वह पृथ्वी से जुड़ा है; कामवासना तुम्हारे भीतर सर्वाधिक पार्थिव चीज है। तुम्हारे मेरुदंड के आरंभिक चक्र के द्वारा तुम निसर्ग के संपर्क में आते हो, जिसे सांख्य प्रकृति कहता है—पृथ्वी, पदार्थ। और अंतिम चक्र से, सहस्रार से तुम परमात्मा के संपर्क में होते हो।
तुम्हारे अस्तित्व के ये दो ध्रुव हैं। पहला काम—केंद्र है, और दूसरा सहस्रार है। अंग्रेजी में सहस्रार के लिए कोई शब्द नहीं है। ये ही दो ध्रुव हैं। तुम्हारा जीवन या तो कामोन्यूख होगा या सहस्रारोन्यूख होगा। या तो तुम्हारी ऊर्जा काम—केंद्र से बहकर पृथ्वी में वापस जाएगी, या तुम्हारी ऊर्जा सहस्रार से निकलकर अनंत आकाश में समा जाएगी। तुम सहस्रार से ब्रह्म में, परम सत्ता में प्रवाहित हो जाते हो। तुम काम— केंद्र से पदार्थ जगत में प्रवाहित होते हो। ये दो प्रवाह हैं; ये दो संभावनाएं हैं।
जब तक तुम ऊपर की ओर विकसित नहीं होते, तुम्हारे दुख कभी समाप्त नहीं होंगे। तुम्हें सुख की झलकें मिल सकती हैं; लेकिन वे झलकें ही होंगी, और बहुत भ्रामक होंगी। जब ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होगी, तुम्हें सुख की अधिकाधिक सच्ची झलकें मिलने लगेंगी। और जब ऊर्जा सहस्रार पर पहुंचेगी, तुम परम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे। वही निर्वाण है। तब झलक नहीं मिलती, तुम आनंद ही हो जाते हो।
योग और तंत्र की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे ऊर्जा को मेरुदंड के द्वारा, रीढ़ के द्वारा ऊर्ध्वगामी बनाया जाए, कैसे उसे गुरुत्वाकर्षण के विपरीत गतिमान किया जाए। काम या सेक्स आसान है, क्योंकि वह गुरुत्वाकर्षण के विपरीत नहीं है। पृथ्वी सब चीजों को अपनी तरफ नीचे खींच रही है; तुम्हारी काम—ऊर्जा को भी पृथ्वी नीचे खींच रही है। तुमने शायद यह
नहीं सुना हो, लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों ने यह अनुभव किया है कि जैसे
ही वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल जाते हैं, उनकी कामुकता बहुत क्षीण हो जाती है। जैसे—जैसे शरीर का वजन कम होता है, कामुकता विलीन हो जाती है।
पृथ्वी तुम्हारी जीवन—ऊर्जा को नीचे की तरफ खींचती है, और यह स्वाभाविक है। क्योंकि जीवन—ऊर्जा पृथ्वी से आती है। तुम भोजन लेते हो, और उससे तुम अपने भीतर जीवन—ऊर्जा निर्मित कर रहे हो। यह ऊर्जा पृथ्वी से आती है, और पृथ्वी उसे वापस खींचती रहती है। प्रत्येक चीज अपने मूलस्रोत को लौट जाती है। और अगर यह ऐसे ही चलता रहा, जीवन—ऊर्जा फिर—फिर पीछे लौटती रही और तुम वर्तुल में घूमते रहे, तो तुम जन्मों—जन्मों तक ऐसे ही घूमते रहोगे। तुम इस ढंग से अनंत काल तक चलते रह सकते हो, यदि तुम अंतरिक्ष यात्रियों की तरह छलांग नहीं लेते। अंतरिक्ष यात्रियों की तरह तुम्हें छलांग लेनी है और वर्तुल के पार निकल जाना है। तब पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का पैटर्न टूट जाता है। यह तोड़ा जा सकता है।
यह कैसे तोड़ा जा सकता है, ये उसकी ही विधियां हैं। ये विधियां इस बात
की फिक्र करती हैं कि कैसे ऊर्जा ऊर्ध्व गति करे, नये केंद्रों तक पहुंचे; कैसे तुम्हारे भीतर नई ऊर्जा का आविर्भाव हो और कैसे प्रत्येक गति के साथ

199

सकते। लेकिन काम—ऊर्जा कल्पना से गतिमान की जा सकती है; तुम उसकी दिशा बदल सकते हो।
यह सूत्र कहता है: 'अपनी प्राण—शक्ति को प्रकाश—किरण समझो।’ स्वयं को, अपने होने को प्रकाश—किरण समझो।’मेरुदंड में ऊपर उठती हुई, एक केंद्र से दूसरे केंद्र की ओर गति करती हुई।’ रीढ़ में ऊपर उठती हुई।’और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।’
योग ने तुम्हारे मेरुदंड को सात चक्रों में बांटा है। पहला काम— केंद्र है और अंतिम सहस्रार है, और इन दोनों के बीच पांच केंद्र हैं। कोई— कोई साधना—पद्धति मेरुदंड को नौ केंद्रों में बांटती है; कोई तीन में ही और कोई चार में। यह विभाजन बहुत अर्थ नहीं रखता है; तुम अपना विभाजन भी निर्मित कर सकते हो। प्रयोग के लिए पांच केंद्र पर्याप्त हैं। पहला काम— केंद्र है; दूसरा ठीक नाभि के पीछे है; तीसरा हृदय के पीछे है; चौथा केंद्र तुम्हारी दोनों भौंहों के बीच में है—ठीक ललाट के बीच में, और अंतिम केंद्र सहस्रार तुम्हारे सिर के शिखर पर है। ये पांच पर्याप्त हैं।
यह सूत्र कहता है 'अपने को समझो, ' उसका अर्थ है कि भाव करो, कल्पना करो। आंखें बंद कर लो और भाव करो कि मैं बस प्रकाश हूं। यह मात्र भाव या कल्पना नहीं है। शुरू—शुरू में तो कल्पना ही है, लेकिन यथार्थ में भी ऐसा ही है। क्योंकि हरेक चीज प्रकाश से बनी है। अब विज्ञान कहता है कि सब कुछ विद्युत है। तंत्र ने तो सदा से कहा है कि सब कुछ प्रकाश—कणों से बना तुम भी प्रकाश—कणों से ही बने हो। इसीलिए कुरान कहता है कि परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश हो!
तो पहले भाव करो कि मैं बस प्रकाश—किरण हूं और फिर अपनी कल्पना को काम—केंद्र के पास ले जाओ। अपने अवधान को वहां एकाग्र करो और भाव करो कि प्रकाश—किरणें काम—केंद्र से ऊपर उठ रही हैं, मानो काम—केंद्र प्रकाश का स्रोत बन गया है और प्रकाश—किरणें वहा से नाभि—केंद्र की ओर ऊपर उठ रही हैं।
विभाजन इसीलिए जरूरी है, क्योंकि तुम्हारे लिए काम—केंद्र को सीधे सहस्रार से जोडना कठिन होगा। छोटे—छोटे विभाजन इसीलिए उपयोगी हैं; यदि तुम सीधे सहस्रार से जुड़ सको तो किसी विभाजन की जरूरत नहीं है। तुम काम— केंद्र के ऊपर के सभी विभाजन गिरा दे सकते हो; और ऊर्जा, जीवन—शक्ति प्रकाश की भांति सीधे सहस्रार की ओर उठने लगेगी।
लेकिन विभाजन ज्यादा सहयोगी होंगे, क्योंकि तुम्हारा मन छोटे—छोटे खंडों की धारणा ज्यादा आसानी से निर्मित कर सकता है। तो भाव करो कि ऊर्जा, प्रकाश—किरणें तुम्हारे काम—केंद्र से उठकर प्रकाश की नदी की भांति नाभि—केंद्र की ओर प्रवाहित हो रही हैं। तत्काल तुम अपने भीतर ऊपर उठती हुई ऊष्मा अनुभव करोगे, शीघ्र ही तुम्हारी नाभि गर्म हो उठेगी। तुम उस गरमाहट को अनुभव कर सकते हो; दूसरे भी उस गरमाहट को अनुभव कर सकते हैं। तुम्हारे भाव के द्वारा तुम्हारी काम—ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाएगी, ऊपर को उठने लगेगी।
जब तुम अनुभव करो कि अब नाभि पर स्थित दूसरा केंद्र प्रकाश का स्रोत
बन गया है, कि प्रकाश—किरणें वहां आकर इकट्ठी होने लगी हैं, तब हृदय— केंद्र की ओर गति करो, और ऊपर बढ़ो। और जैसे—जैसे प्रकाश हृदय—केंद्र पर पहुंचेगा, जैसे—जैसे उसकी किरणें वहा इकट्ठी होने लगेंगी, वैसे—वैसे तुम्हारे हृदय की धड़कन बदल जाएगी, तुम्हारी श्वास गहरी होने लगेगी, और तुम्हारे हृदय में गरमाहट पहुंचने लगेगी। तब उससे भी और आगे, और ऊपर बढ़ो। 'अपनी प्राण—शक्ति को मेरुदंड में ऊपर उठती, एक केंद्र से दूसरे केंद्र की ओर गति करती हुई प्रकाश—किरण समझो; और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।’
और जैसे—जैसे तुम्हें गरमाहट अनुभव होगी, वैसे—वैसे ही, उसके साथ— साथ ही, तुम्हारे भीतर एक जीवंतता का उन्मेष होगा, एक आंतरिक प्रकाश का उदय होगा।
काम—ऊर्जा के दो हिस्से हैं एक हिस्सा शारीरिक है और दूसरा मानसिक है। तुम्हारे शरीर में हरेक चीज के दो हिस्से हैं। तुम्हारे शरीर और मन की भांति ही तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के दो हिस्से हैं: एक भौतिक है और

201

संवेदनशीलता और अनुभूति पैदा करो। तभी तुम इन विधियों का प्रयोग सरलता से कर सकोगे। और तब तुम्हें अपने भीतर जीवन—ऊर्जा के ऊपर उठने का अनुभव होगा। इस ऊर्जा को बीच में मत छोड़ो; उसे सहस्रार तक जाने दो। स्मरण रहे कि जब भी तुम यह प्रयोग करो तो उसे बीच में मत छोड़ो; उसे पूरा करो। यह भी ध्यान रहे कि इस प्रयोग में कोई तुम्हें बाधा न पहुंचाए। अगर तुम इस ऊर्जा को कहीं बीच में छोड़ दोगे तो उससे तुम्हें हानि हो सकती है। इस ऊर्जा को मुक्त करना होगा। तो उसे सिर तक ले जाओ, और भाव करो कि तुम्हारा सिर एक द्वार बन गया है।
इस देश में हमने सहस्रार को हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में चित्रित किया है। सहस्रार का यही अर्थ है: सहस्रदल कमल का खिलना। तो धारणा करो कि हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल गया है, और उसकी प्रत्येक पंखुड़ी से यह प्रकाश—ऊर्जा ब्रह्मांड में फैल रही है। यह फिर एक अर्थों में संभोग है; लेकिन यह प्रकृति के साथ नहीं, परम के साथ संभोग है। फिर एक आर्गाज्म घटित होता है।
आर्गाज्म दो प्रकार का होता है। एक सेक्यूअल और दूसरा स्प्रिचुअल। सेक्यूअल
आर्गाज्य निम्नतम केंद्र से आता है और स्तिचुअल उच्चतम केंद्र से। उच्चतम केंद्र से तुम उच्चतम से मिलते हो और निम्नतम केंद्र से निम्नतम से।
साधारण संभोग में भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो; दोनों लोग यह प्रयोग
कर सकते हो। ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाओ। और तब संभोग तंत्र—साधना बन जाता है; तब वह ध्यान बन जाता है।
लेकिन ऊर्जा को कहीं शरीर में, किसी बीच के केंद्र पर मत छोड़ो। कोई व्यक्ति बीच में आ सकता है जिसके साथ तुम्हें व्यावसायिक सरोकार हो, या कोई फोन आ जाए और तुम्हें प्रयोग को बीच में ही छोड़ना पड़े। इसलिए ऐसे समय में प्रयोग करो जब कोई तुम्हें बाधा न दे, और ऊर्जा को किसी केंद्र पर न छोड़ना पड़े। अन्यथा वह केंद्र, जहां तुम ऊर्जा को छोड़ोगे घाव बन जाएगा और तुम्हें अनेक मानसिक रूणताओं का शिकार होना पड़ेगा।
तो सावधान रहो; अन्यथा यह प्रयोग मत करो। इस विधि के लिए नितांत एकात आवश्यक है, बाधा—रहितता आवश्यक है। और आवश्यक है कि तुम उसे पूरा करो। ऊर्जा को सिर तक जाना चाहिए और वहीं से उसे मुक्त होना चाहिए।
तुम्हें अनेक अनुभव होंगे। जब तुम्हें लगेगा कि प्रकाश—किरणें काम
— केंद्र से ऊपर उठने लगी हैं तो काम—केंद्र पर इरेक्शन का और उत्तेजना का अनुभव होगा। अनेक लोग बहुत भयभीत और आतंकित स्थिति में मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि जब हम ध्यान शुरू करते हैं, जब हम ध्यान में गहरे जाने लगते हैं, हमें इरेक्शन होता है। और वे चकित होकर पूछते हैं कि यह क्या है! वे भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि ध्यान में कामुकता के लिए जगह नहीं होनी चाहिए। लेकिन तुम्हें जीवन के रहस्यों का पता नहीं है। यह अच्छा लक्षण है। यह बताता है कि ऊर्जा उठ रही है, उसे गति की जरूरत है। तो आतंकित मत होओ, और यह मत सोचो कि कुछ गलत हो रहा है। यह शुभ लक्षण है। जब तुम ध्यान शुरू करते हो तो काम—केंद्र ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा जीवंत, ज्यादा उत्तेजित हो जाएगा, और शुरू—शुरू में यह उत्तेजना साधारण कामुक उत्तेजना जैसी ही होगी।
लेकिन केवल आरंभ में ही ऐसा होगा। जैसे—जैसे तुम्हारा ध्यान गहराएगा वैसे—वैसे ऊर्जा ऊपर उठने लगेगी। और जब ऊर्जा ऊपर उठती है तो काम — केंद्र अनुत्तेजित, शांत होने लगता है। और जब ऊर्जा बिलकुल सहस्रार पर पहुंचेगी तो काम—केंद्र पर कोई उत्तेजना नहीं रहेगी; काम—केंद्र बिलकुल स्थिर और शात हो जाएगा; वह बिलकुल शीतल हो जाएगा। अब उष्णता सिर में आ जाएगी।
और यह शारीरिक बात है। जब काम—केंद्र उत्तेजित होता है तो वह गरम हो जाता है। तुम उस गरमाहट को महसूस कर सकते हो, वह शारीरिक है। लेकिन जब ऊर्जा ऊपर उठती है तो काम—केंद्र ठंडा होने लगता है, बहुत ठंडा होने लगता है, और उष्णता सिर पर पहुंच जाती है। तब तुम्हें सिर में चक्कर आने लगेगा। जब ऊर्जा सिर में पहुंचेगी तो तुम्हारा सिर घूमने लगेगा। कभी—कभी

204

तुम्हें घबराहट भी होगी; क्योंकि पहली बार ऊर्जा सिर में पहुंची है, और तुम्हारा सिर उससे परिचित नहीं है। उसे ऊर्जा के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ेगा।’
तो भयभीत मत होओ। यह होता है। अगर बहुत सारी ऊर्जा अचानक उठ जाए और सिर में पहुंच जाए तो तुम बेहोश भी हो जा सकते हो। लेकिन यह बेहोशी एक घंटे से ज्यादा देर नहीं रहेगी; घंटे भर के भीतर ऊर्जा अपने आप ही वापस लौट जाएगी या मुक्त हो जाएगी। तुम उस अवस्था में कभी एक घंटे से ज्यादा देर नहीं रह सकते। मैं कहता तो हूं एक घंटा, लेकिन असल में यह समय अड़तालीस मिनट का है। यह उससे ज्यादा नहीं हो सकता; लाखों वर्षों के प्रयोग के दौरान कभी ऐसा नहीं हुआ है।
तो डरो मत; तुम बेहोश भी हो जाओ तो ठीक है। उस बेहोशी के बाद तुम इतने ताजा अनुभव करोगे कि तुम्हें लगेगा कि मैं पहली बार नींद से, गहनतम नींद से गुजरा हूं। योग में इसका एक विशेष नाम है; वे उसे योग—तंद्रा कहते हैं। यह बहुत गहरी नींद है; इसमें तुम अपने गहनतम केंद्र पर सरक जाते हो। लेकिन डरो मत।
और अगर तुम्हारा सिर गरम हो जाए तो वह भी शुभ लक्षण है। ऊर्जा को मुक्त होने दो। भाव करो कि तुम्हारा सिर कमल के फूल की भांति खिल रहा है। भाव करो कि ऊर्जा ब्रह्मांड में मुक्त हो रही है, फैलती जा रही है। और जैसे — जैसे ऊर्जा मुक्त होगी, तुम्हें शीतलता का अनुभव होगा। इस उष्णता के बाद जो शीतलता आती है, उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन विधि को पूरा प्रयोग करो; उसे कभी आधा—अधूरा मत छोड़ो।

प्रकाश—संबंधी दूसरी विधि:
या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौधंने जैसा है— ऐसा भाव करो
थोड़े से फर्क के साथ यह विधि भी पहली विधि जैसी ही है।
'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।’
एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक जाती हुई प्रकाश—किरणों में बिजली के कौंधने का अनुभव करो—प्रकाश की छलांग का भाव करो। कुछ लोगों के लिए यह दूसरी विधि ज्यादा अनुकूल होगी, और कुछ लोगों के लिए पहली विधि ज्यादा अनुकूल होगी। यही कारण है कि इतना—सा संशोधन किया गया है।
ऐसे लोग हैं जो क्रमश: घटित होने वाली चीजों की धारणा नहीं बना सकते;
और कुछ लोग हैं जो छलांगों की धारणा नहीं बना सकते। अगर तुम क्रम की सोच सकते हो, चीजों के कम से होने की कल्पना कर सकते हो, तो तुम्हारे लिए पहली विधि ठीक है। लेकिन अगर तुम्हें पहली विधि के प्रयोग से पता चले कि प्रकाश — किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर सीधे छलांग लेती हैं तो तुम पहली विधि का प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए यह दूसरी विधि बेहतर है।
'यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।’
भाव करो कि प्रकाश की एक चिनगारी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर छलांग लगा रही है। और दूसरी विधि ज्यादा सच है, क्योंकि प्रकाश सचमुच छलांग लेता है। उसमें कोई क्रमिक, कदम—ब—कदम विकास नहीं होता है। प्रकाश छलांग है। विद्युत के प्रकाश को देखो। तुम सोचते हो कि यह स्थिर है; लेकिन वह भ्रम है। उसमें भी अंतराल हैं; लेकिन वे अंतराल इतने छोटे हैं कि तुम्हें उनका पता नहीं चलता है। विद्युत छलांगों में आती है। एक छलांग, और उसके बाद अंधकार का अंतराल होता है। फिर दूसरी छलांग, और उसके बाद फिर अंधकार का अंतराल होता है। लेकिन तुम्हें कभी अंतराल का पता नहीं चलता है, क्योंकि छलांग इतनी तीव्र है। अन्यथा प्रत्येक क्षण अंधकार आता है; पहले प्रकाश की छलांग और फिर अंधकार। प्रकाश कभी चलता नहीं, छलांग ही लेता है। और जो लोग छलांग की धारणा कर सकते हैं, यह दूसरी संशोधित विधि उनके लिए है। 'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।’ प्रयोग करके देखो। अगर तुम्हें किरणों का क्रमिक ढंग से आना अच्छा लगता है तो वही ठीक है। और अगर वह अच्छा न लगे, और लगे कि किरणें छलांग ले रही हैं, तो किरणों की बात भूल जाओ और आकाश में कौंधने वाली विद्युत की, बादलों के बीच छलांग लेती विद्युत की धारणा करो।

205

स्त्रियों के लिए पहली विधि आसान होगी और पुरुषों के लिए दूसरी। स्त्री—चित्त क्रमिकता की धारणा ज्यादा आसानी से बना सकता है और पुरुष— चित्त ज्यादा आसानी से छलांग लगा सकता है। पुरुष—चित्त उछलकूद पसंद करता है; वह एक से दूसरी चीज पर छलांग लेता है। पुरुष—चित्त में एक सूक्ष्म बेचैनी रहती है। स्त्री—चित्त में क्रमिकता की एक प्रक्रिया है। स्त्री — चित्त उछलकूद नहीं पसंद करता है। यही वजह है कि स्त्री और पुरुष के तर्क इतने अलग होते हैं। पुरुष एक चीज से दूसरी चीज पर छलांग लगाता रहता है, स्त्री को यह बात बड़ी बेबूझ लगती है। उसके लिए विकास, क्रमिक विकास जरूरी है।
लेकिन चुनाव तुम्हारा है। प्रयोग करो, और जो विधि तुम्हें रास आए उसे चुन लो।
इस विधि के संबंध में और दो—तीन बातें। बिजली कौंधने के भाव के साथ तुम्हें इतनी उष्णता अनुभव हो सकती है जो असहनीय मालूम पड़े। अगर ऐसा लगे तो इस विधि को प्रयोग मत करो। बिजली तुम्हें बहुत उष्ण कर दे सकती है। और अगर तुम्हें लगे कि यह असहनीय है तो इसका प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए पहली विधि है; अगर वह तुम्हें रास आए। अगर बेचैनी महसूस हो तो दूसरी विधि का प्रयोग मत करो। कभी—कभी विस्फोट इतना बड़ा हो सकता है कि तुम भयभीत हो जा सकते हो। और यदि तुम एक दफा डर गए तो फिर तुम दुबारा प्रयोग न कर सकोगे। तब भय पकड़ लेता है।
तो सदा ध्यान रहे कि किसी चीज से भी भयभीत नहीं होना है। अगर तुम्हें लगे कि भय होगा और तुम बरदाश्त न कर पाओगे तो प्रयोग मत करो। तब प्रकाश— किरणों वाली पहली विधि सर्वश्रेष्ठ है।
लेकिन यदि पहली विधि के प्रयोग में भी तुम्हें लगे कि अतिशय गर्मी पैदा हो रही है—और ऐसा हो सकता है, क्योंकि लोग भिन्न—भिन्न है—तो भाव करो कि प्रकाश—किरणें शीतल हैं, ठंडी हैं। तब तुम्हें सब चीजों में उष्णता की जगह ठंडक महसूस होगी। वह भी प्रभावी हो सकता है। तो निर्णय तुम पर निर्भर है; प्रयोग करके निर्णय करो।
स्मरण रहे, चाहे इस विधि के प्रयोग में चाहे अन्य विधियों के प्रयोग में, यदि तुम्हें बहुत बेचैनी अनुभव हो या कुछ असहनीय लगे, तो मत करो। दूसरे उपाय भी हैं, दूसरी विधियां भी हैं। हो सकता है, यह विधि तुम्हारे लिए न हो। अनावश्यक उपद्रवों में पड़कर तुम समाधान की बजाय समस्याएं ही ज्यादा पैदा करोगे।
इसीलिए भारत में हमने एक विशेष योग का विकास किया जिसे सहज योग कहते हैं।
सहज का अर्थ है सरल, स्वाभाविक, स्वतःस्फूर्त। सहज को सदा याद रखो। अगर तुम्हें महसूस हो कि कोई विधि सहजता से तुम्हारे अनुकूल पड़ रही है, अगर वह तुम्हें रास आए, अगर उसके प्रयोग से तुम ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा जीवंत, ज्यादा सुखी अनुभव करो, तो समझो कि वह विधि तुम्हारे लिए है। तब उसके साथ यात्रा करो, तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। अनावश्यक समस्याएं मत पैदा करो। आदमी की आंतरिक व्यवस्था बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत सी चीजें नष्ट कर दे सकते हो। इसलिए अच्छा है कि किसी ऐसी विधि के साथ प्रयोग करो जिसके साथ तुम्हारा अच्छा तालमेल हो।

प्रकाश—संबंधी तीसरी विधि:
भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है
यह विधि भी प्रकाश से ही संबंधित है।
'भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।’
अगर तुमने एल. एस डी या उसी तरह के किसी मादक द्रव्य का सेवन किया हो,
तो तुम्हें पता होगा कि कैसे तुम्हारे चारों ओर का जगत प्रकाश और रंगों के जगत में बदल जाता है, जो कि बहुत पारदर्शी और जीवंत मालूम पड़ता है।
यह एल.एस.डी के कारण नहीं है। जगत ऐसा ही है, लेकिन तुम्हारी दृष्टि शइमल और मंद पड़ गई है। एल. एस.डी. तुम्हारे चारों ओर रंगीन जगत नहीं निर्मित करता है, जगत पहले से ही रंगीन है, उसमें कोई भूल नहीं है। यह रंगों के इंद्रधनुष जैसा है; रंगों के रहस्यमय लोक जैसा है; पारदर्शी

206

प्रकाश जैसा है। लेकिन तुम्हारी आंखें धुंध से भरी हैं, इसीलिए तुम्हें कभी नहीं प्रतीत होता है कि जगत इतना रंग— भरा है। एल एस डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों से धुंध को हटा देता है, वह जगत को रंगीन नहीं बनाता। एल. एस. डी रासायनिक ढंग से तुम्हारी आंखों को उनके अंधेपन से मुक्त कर देता है, और तब अचानक सारा जगत तुम्हारे सामने अपने सच्चे रूप में उदघाटित हो जाता है, प्रकट हो जाता है।
एक बिलकुल नया जगत तुम्हारे सामने होता है। एक मामूली कुर्सी भी चमत्कार बन जाती है; फर्श पर पड़ा जूता नए रंगों से, नई आभा से भर जाता है, सज — जाता है; तब यातायात का मामूली शोरगुल भी संगीतपूर्ण हो उठता है। जिन वृक्षों को तुमने बहुत बार देखा होगा और फिर भी नहीं देखा होगा, वे मानो नया जन्म ग्रहण कर लेते हैं, यद्यपि तुम बहुत बार उनके पास से गुजरे हो और तुम्हें खयाल है कि तुमने उन्हें देखा है। वृक्ष का पत्ता—पत्ता एक चमत्कार बन जाता है।
और यथार्थ ऐसा ही है, एल. एस.डी. इस यथार्थ का निर्माण नहीं करता। एल.
एस. डी. तुम्हारी जड़ता को, तुम्हारी संवेदनहीनता को मिटा देता है, और तब तुम जगत को ऐसे देखते हो जैसे तुम्हें सच में उसे देखना चाहिए।
लेकिन एल. एस. डी तुम्हें सिर्फ एक झलक दे सकता है। और अगर तुम एल. एस.
डी. पर निर्भर रहने लगे, तो देर—अबेर वह भी तुम्हारी आंखों से धुंध को हटाने में असमर्थ हो जाएगा। फिर तुम्हें उसकी अधिक मात्रा की जरूरत पड़ेगी, और यह मात्रा बढ़ती जाएगी और उसका असर कम होता जाएगा। और फिर यदि तुम एल.एस. डी. या उस तरह की चीजें लेना छोड़ दोगे, तो जगत तुम्हारे लिए पहले से भी ज्यादा उदास और फीका मालूम पड़ेगा; तब तुम और भी संवेदनहीन हो जाओगे। अभी कुछ दिन पहले एक लड़की मुझसे मिलने आई। उसने कहा कि मुझे संभोग में आर्गाज्य का कोई अनुभव नहीं होता है। उसने अनेक पुरुषों के साथ प्रयोग किया; लेकिन आर्गाज्य का कभी अनुभव नहीं हुआ। वह शिखर कभी आता नहीं; और वह लड़की बहुत हताश हो गई है।
तो मैंने उस लड़की से कहा कि मुझे अपने प्रेम और काम जीवन के संबंध में विस्तार से बताओ, पूरी कहानी कहो। और तब मुझे पता चला कि वह संभोग के लिए बिजली के एक यंत्र का, इलेक्ट्रानिक वाइब्रेटर का उपयोग कर रही थी। आजकल पश्चिम में इसका बहुत उपयोग हो रहा है। लेकिन तुम अगर एक बार पुरुष जननेंद्रिय के लिए इलेक्ट्रानिक वाइब्रेटर का उपयोग कर लोगे, तो कोई भी पुरुष तुम्हें तृप्त नहीं कर पाएगा; क्योंकि इलेक्ट्रानिक वाइब्रेटर आखिर इलेक्ट्रानिक वाइब्रेटर ही है। तुम्हारी जननेंद्रिया जड़ हो जाएंगी, मुर्दा हो जाएंगी। उस हालत में आर्गाज्य, काम का शिखर अनुभव असंभव हो जाएगा। तुम्हें काम—संभोग का शिखर कभी प्राप्त न हो सकेगा। और तब तुम्हें पहले से ज्यादा शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक वाइब्रेटर की जरूरत पड़ेगी। और यह प्रक्रिया उस अति तक जा सकती है कि तुम्हारा पूरा काम—यंत्र पत्थर जैसा हो जाए।
और यही दुर्घटना हमारी प्रत्येक इंद्रिय के साथ घट रही है। अगर तुम कोई बाहरी उपाय, कृत्रिम उपाय काम में लाओगे, तो तुम जड़ हो जाओगे। एल.एस .डी. तुम्हें अंततः जड़ बना देगा; क्योंकि उससे तुम्हारा विकास नहीं होता है, तुम ज्यादा संवेदनशील नहीं होते हो। अगर तुम विकसित होते हो तो वह बिलकुल ही भिन्न प्रक्रिया है। तब तुम ज्यादा संवेदनशील होंगे। और जैसे— जैसे तुम ज्यादा संवेदनशील होते हो, वैसे—वैसे जगत दूसरा होता जाता है। अब तुम्हारी इंद्रियां ऐसी अनेक चीजें अनुभव कर सकती हैं जिन्हें उन्होंने अतीत में कभी नहीं अनुभव किया था; क्योंकि तुम उनके प्रति खुले नहीं थे, संवेदनशील नहीं थे।
यह विधि आंतरिक संवेदनशीलता पर आधारित है। पहले संवेदनशीलता को बढ़ाओ। अपने द्वार—दरवाजे बंद कर लो, कमरे में अंधेरा कर लो, और फिर एक छोटी मोमबत्ती जलाओ। और उस मोमबत्ती के पास प्रेमपूर्ण मुद्रा में, बल्कि प्रार्थनापूर्ण भावदशा में बैठो। और ज्योति से प्रार्थना करो: 'अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करो।’ स्नान कर लो, अपनी आंखों पर ठंडा पानी छिड़क लो और फिर ज्योति के सामने अत्यंत प्रार्थनापूर्ण भावदशा में होकर बैठो।

207

ज्योति को देखो और शेष सब चीजें भूल जाओ। सिर्फ ज्योति को देखो। ज्योति को देखते रहो।
पांच मिनट बाद तुम्हें अनुभव होगा कि ज्योति में बहुत चीजें बदल रही हैं। लेकिन स्मरण रहे, यह बदलाहट ज्योति में नहीं हो रही है; दरअसल तुम्हारी दृष्टि बदल रही है।
प्रेमपूर्ण भावदशा में, सारे जगत को भूलकर, समग्र एकाग्रता के साथ, भावपूर्ण हृदय के साथ ज्योति को देखते रहो। तुम्हें ज्योति के चारों ओर नए रंग, नई छटाएं दिखाई देंगी, जो पहले कभी नहीं दिखाई दी थीं। वे रंग, वे छटाएं सब वहां मौजूद हैं; पूरा इंद्रधनुष वहां उपस्थित है। जहां—जहां भी प्रकाश है, वहा—वहां इंद्रधनुष है; क्योंकि प्रकाश बहुरंगी है, उसमें सब रंग हैं। लेकिन उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म संवेदना की जरूरत है। उसे अनुभव करो और
देखते रहो। यदि आंसू भी बहने लगें, तो भी देखते रहो। वे आंसू तुम्हारी आंखों को निखार देंगे, ज्यादा ताजा बना जाएंगे।
कभी—कभी तुम्हें प्रतीत होगा कि मोमबत्ती या ज्योति बहुत रहस्यपूर्ण हो गई है। तुम्हें लगेगा कि यह वही साधारण मोमबत्ती नहीं है जो मैं अपने साथ लाया था; उसने एक नई आभा, एक सूक्ष्म दिव्यता, एक भगवत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग को जारी रखो। कई अन्य चीजों के साथ भी तुम इसे कर सकते हो।
मेरे एक मित्र मुझे कह रहे थे कि वे पांच—छह मित्र पत्थरों के साथ एक प्रयोग कर रहे थे। मैंने उन्हें कहा था कि कैसे प्रयोग करना, और वे लौटकर मुझे पूरी बात कह रहे थे। वे एकांत में एक नदी के किनारे पत्थरों के साथ प्रयोग कर रहे थे। वे उन्हें फील करने की कोशिश कर रहे थे—हाथों से छूकर, चेहरे से लगाकर, जीभ से चखकर, नाक से सूंघकर—वे उन पत्थरों को हर तरह से फील करने की कोशिश कर रहे थे। साधारण से पत्थर, जो उन्हें नदी किनारे मिल गए थे।
उन्होंने एक घंटे तक यह प्रयोग किया—हर व्यक्ति ने एक पत्थर के साथ।
और मेरे मित्र मुझे कह रहे थे कि एक बहुत अदभुत घटना घटी। हर किसी ने कहा 'क्या मैं यह पत्थर अपने पास रख सकता हूं? मैं इसके साथ प्रेम में पड़ गया हूं!'
एक साधारण सा पत्थर! अगर तुम सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उससे संबंध बनाते
हो तो तुम प्रेम में पड जाओगे। और अगर तुम्हारे पास इतनी संवेदनशीलता नहीं है तो सुंदर से सुंदर व्यक्ति के पास होकर भी तुम पत्थर के पास ही हो, तुम प्रेम में नहीं पड़ सकते।
तो संवेदनशीलता को बढ़ाना है। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय को ज्यादा जीवंत होना है। तो ही तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।
'भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।’
सर्वत्र प्रकाश है; अनेक—अनेक रूपों और रंगों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखो। सर्वत्र प्रकाश है, क्योंकि सारी सृष्टि प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। एक पत्ते को देखो, एक फूल को देखो या एक पत्थर को देखो, और देर— अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि उससे प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। बस, धैर्य से प्रतीक्षा करो। जल्दबाजी मत करो, क्योंकि जल्दबाजी में कुछ भी प्रकट नहीं होता है। तुम जब जल्दी में होते हो तो तुम जड़ हो जाते हो। किसी भी चीज के साथ धीरज से प्रतीक्षा करो, और तुम्हें एक अदभुत तथ्य से साक्षात्कार होगा जो सदा से मौजूद था, लेकिन जिसके प्रति तुम सजग नहीं थे, सावचेत नहीं थे।
'भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।’
और जैसे ही तुम्हें इस शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति अनुभव होगी वैसे
ही तुम्हारा चित्त बिलकुल मौन और शात हो जाएगा। तुम तब उसके एक अंश भर होगे; किसी अदभुत संगीत में एक स्वर भर! फिर कोई चिंता नहीं है, फिर कोई तनाव नहीं है। बूंद समुद्र में गिर गई, खो गई।
लेकिन आरंभ में एक बड़ी कल्पना की जरूरत होगी। और अगर तुम संवेदनशीलता बढ़ाने के अन्य प्रयोग भी करते हो, तो वह सहयोगी होगा। तुम कई तरह के प्रयोग कर सकते

208

हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो, आंखें बंद कर लो और दूसरे के भीतर
के जीवन को महसूस करो, उसे महसूस करो और उसे अपनी ओर बहने दो, गति करने दो। फिर अपने जीवन को महसूस करो, और उसे दूसरे की ओर प्रवाहित होने दो। किसी वृक्ष के निकट बैठ जाओ और उसकी छाल को छुओ, स्पर्श करो। अपनी आंखें बंद कर लो और वृक्ष में उठते जीवन—तत्व को अनुभव करो। और तुम्हें तुरंत बदलाहट अनुभव होगी।
मैंने एक प्रयोग के बारे में सुना है। एक डाक्टर कुछ लोगों पर प्रयोग
कर रहा था कि क्या भावदशा से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं। अब उसने निष्कर्ष निकाला है कि भावदशा से शरीर में तत्काल रासायनिक परिवर्तन होते हैं।
उसने बारह लोगों के एक समूह पर 'प्रयोग किया। उसने प्रयोग के आरंभ में
उन सबकी पेशाब की जांच की; और सबकी पेशाब साधारण, सामान्य पाई गई। फिर हर व्यक्ति को एक विशेष भावदशा के प्रभाव में रखा गया। एक को क्रोध, हिंसा, हत्या, मार—पीट से भरी फिल्म दिखाई गई। तीस मिनट तक उसे भयावह फिल्म दिखाई गई। यह मात्र फिल्म ही थी, लेकिन वह व्यक्ति उस भावदशा में रहा। दूसरे को एक हंसी—खुशी की, प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह आनंदित रहा। और इसी तरह बारह लोगों पर प्रयोग किया गया।
फिर प्रयोग के बाद उनकी पेशाब की जांच की गई; और अब सबकी पेशाब अलग थी।
शरीर में रासायनिक परिवर्तन हुए थे। जो हिंसा और भय की भावदशा में रहा वह अब बुझा—बुझा, बीमार था; और जो हंसी—खुशी, प्रसन्नता की भावदशा में रहा वह अब स्वस्थ, प्रफुल्ल था। उसकी पेशाब अलग थी, उसके शरीर की रासायनिक व्यवस्था अलग थी।
तुम्हें बोध नहीं है कि तुम अपने साथ क्या कर रहे हो। जब तुम कोई खून— खराबे की फिल्म देखने जाते हो, तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो; तुम अपने शरीर की रासायनिक व्यवस्था बदल रहे हो। जब तुम कोई जासूसी उपन्यास पढ़ते हो, तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो; तुम अपनी हत्या कर रहे हो। तुम उत्तेजित हो जाओगे, तुम भयभीत हो जाओगे; तुम तनाव से भर जाओगे। जासूसी उपन्यास का यही तो मजा है। तुम जितने उत्तेजित होते हो, तुम उसका उतना ही सुख लेते हो। आगे क्या घटित होने वाला है, इस बात को लेकर जितना सस्पेंस होगा, तुम उतने ही ज्यादा उत्तेजित होगे। और इस भांति तुम्हारे शरीर का रसायन बदल रहा है।
ये सारी विधियां भी तुम्हारे शरीर के रसायन को बदलती हैं। अगर तुम सारे जगत को जीवन और प्रकाश से भरा अनुभव करते हो, तो तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है। और यह एक चेन रिएक्शन है, इस बदलाहट की एक श्रृंखला बन जाती है। जब तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है और तुम जगत को देखते हो, तो वही जगत ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है, तो तुम्हारे शरीर की रासायनिक व्यवस्था और भी बदलती है। ऐसे एक श्रृंखला निर्मित हो जाती है।
यदि यह विधि तीन महीने तक प्रयोग की जाए, तो तुम भिन्न ही जगत में रहने लगोगे, क्योंकि अब तुम ही भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

आज इतना ही।

209

तंत्र-सूत्र, भाग 3
अड़तालीसवां प्रवचन

तुम ही लक्ष्य हो

पहला प्रश्न:
कल रात आपने कहा कि कृष्ण, क्राइष्ट और बुद्ध मनुष्य की संभवना और विकास के गौरीशंकर है, और फिर आपने कहा कि योग और तंत्र का मनोविज्ञान मनुष्य के सामने कोई आदर्श नहीं रखता है और तंत्र के अनुसार कोई भी आदर्श रखना एक भूल है। इस संदर्भ में कृपया समझाएं की प्रेरणा और आदर्श में क्या फर्क है। किसी जिज्ञासु के जीवन में प्रेरणा का क्या स्थान है? और यह भी समझाने की कृपा करें कि क्या किसी ध्यानी के लिए किसी महापुरुष से प्रेरणा लेना भी एक भूल है।

बुद्ध कृष्ण या क्राइस्ट तुम्हारे लिए आदर्श नहीं हैं; तुम्हें उनका अनुकरण नहीं करना है। अगर तुम उनका अनुकरण करोगे तो तुम उन्हें चूक जाओगे और तुम अपने बुद्धत्व को कभी उपलब्ध नहीं होगे। बुद्धत्व आदर्श है; बुद्ध आदर्श नहीं हैं। क्राइस्ट आदर्श है; जीसस आदर्श नहीं हैं। बुद्धत्व गौतम बुद्ध से भिन्न है। क्राइस्ट जीसस से भिन्न है। जीसस अनेक क्राइस्टों में एक हैं। तुम क्राइस्ट हो सकते हो, लेकिन तुम कभी जीसस नहीं हो सकते। तुम बुद्ध हो सकते हो; लेकिन तुम कभी गौतम नहीं हो सकते। एक दिन गौतम बुद्ध हो गए और तुम भी एक दिन बुद्ध हो सकते हो। बुद्धत्व एक गुणवत्ता है, एक अनुभव है।
निश्चित ही, जब गौतम बुद्ध हुए तो उनका अपना ही व्यक्तित्व था। तुम्हारा भी अपना ही व्यक्तित्व है। जब तुम बुद्ध होगे तो दोनों बुद्ध एक जैसे नहीं होंगे। आंतरिक अनुभव तो एक होगा; लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न होगी — बिलकुल भिन्न होगी। उनमें कोई तुलना संभव नहीं है। सिर्फ अंतरतम केंद्र में तुम समान होगे।
क्यों? क्योंकि अंतरतम केंद्र में कोई व्यक्तित्व नहीं है। व्यक्ति
तो परिधि पर है। तुम जितने गहरे उतरते हो उतना ही व्यक्ति विलीन हो जाता है। अंतरतम केंद्र में तुम ऐसे हो जैसे कि नहीं हो; अंतरतम केंद्र में तुम एक गहन शून्य भर हो। और इस शून्यता के कारण ही वहां कोई भेद नहीं है। दो शून्य भिन्न नहीं हो सकते; लेकिन दो गैर—शून्य निश्चित ही भिन्न होंगे। दो गैर—शून्य वस्तुत: कभी एक जैसे नहीं हो सकते। और दो शून्य कभी भिन्न नहीं हो सकते।
जब कोई परम शून्यता ही हो जाता है, सिर्फ एक शून्य केंद्र रह जाता है,
तो यह परम शून्यता वह तत्व है जो जीसस, कृष्ण और बुद्ध में समान है। जब तुम उस परम को उपलब्ध होगे तो तुम शून्य हो जाओगे। लेकिन तुम्हारा व्यक्तित्व, उस समाधि की तुम्हारी अभिव्यक्ति निश्चित ही भिन्न होने वाली है।
मीरा नाचेगी, बुद्ध कभी नाच नहीं सकते। नाचते हुए बुद्ध की कल्पना भी संभव नहीं है। वह बात ही बेतुकी मालूम पड़ेगी। लेकिन बुद्ध की भांति किसी वृक्ष के नीचे मीरा को बैठा दो तो वह बात भी उतनी ही बेतुकी मालूम पड़ेगी। वह अपना सब कुछ खो देगी; वह मीरा बिलकुल नहीं रहेगा। वह नकल भी होगी। सच्ची मीरा की धारणा तो प्रेम में पागल, आनंदमग्न नाचती हुई मीरा की ही बन सकती है। यह उसका ढंग है।
बोधिवृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध का और आनंदमग्न नाचती मीरा का, दोनों
का अंतरतम समान होगा। नाचती हुई मीरा और मूर्तिवत मौन बैठे बुद्ध का अंतरस्थ केंद्र एक होगा; लेकिन उनकी परिधि अलग—अलग होगी। नृत्य और मौन बैठना, दोनों परिधि पर हैं। अगर तुम मीरा में प्रवेश करोगे और गहरे उतरोगे, नृत्य खो जाएगा, मीरा भी खो जाएगी। वैसे ही यदि तुम बुद्ध के भीतर गहरे जाओगे तो बैठना खो जाएगा, व्यक्ति की भांति बुद्ध भी खो जाएंगे। इसका अर्थ यह है कि तुम बुद्ध तो हो सकते हो, लेकिन तुम कभी गौतम बुद्ध नहीं हो सकते। तुम उन्हें अपना आदर्श मत बनाओ; अन्यथा तुम उनका अनुकरण करने लगोगे। और यदि तुम अनुकरण करोगे तो क्या कर सकते हो? तुम कुछ चीजें

210

बाहर से आरोपित करोगे; लेकिन वह आरोपण नकली होगा, झूठा होगा। तुम झूठे हो जाओगे; वह रंग—रोगन भर होगा। तुम बुद्ध जैसे दिखोगे, बुद्ध से भी बढ़कर दिखोगे। तुम दिख सकते हो; लेकिन वह दिखावा भर होगा, बाह्य आडंबर भर होगा। गहरे में तुम वही के वही रहोगे, जो थे। और इससे द्वैत पैदा होगा, द्वंद्व पैदा होगा, आंतरिक संताप पैदा होगा। और तुम दुख में होगे।
तुम आनंद में तभी हो सकते हो जब तुम प्रामाणिक रूप से स्वयं होगे। जब
तक तुम किसी दूसरे जैसे होने का नाटक करोगे, तुम्हें कभी कोई सुख की प्रतीति नहीं हो सकती।
तो तंत्र का यह संदेश स्मरण रहे: 'तुम स्वयं आदर्श हो। तुम्हें किसी
का अनुकरण नहीं करना है, तुम्हें अपना आविष्कार करना है।’ किसी बुद्ध को देखकर तुम्हें उनका अनुकरण करने की जरूरत नहीं है। जब तुम किसी बुद्ध को देखते हो तो तुम्हारे भीतर यह संभावना सजग हो जाती है कि कुछ ऐसा भी घटता है जो इस जगत का नहीं है।’बुद्ध' तो एक प्रतीक मात्र है कि इस व्यक्ति को कुछ घटित हुआ है। और यदि यह इस व्यक्ति को घटित हो सकता है तो प्रत्येक व्यक्ति को यह घटित हो सकता है। उनमें मनुष्यता की आत्यंतिक संभावना प्रकट हो जाती है। जीसस, मीरा या चैतन्य में संभावना प्रकट हुई है, भविष्य प्रकट हुआ है। तुम्हें वही बने रहने की जरूरत नहीं है जो तुम हो; उससे बहुत अधिक संभव है।
तो बुद्ध केवल भविष्य के एक प्रतीक हैं; उनका अनुकरण मत करो। बल्कि उनका जीवन, उनका होना और उन्हें घटित हुई बुद्धत्व की घटना, तुम्हारे भीतर नई अभीप्सा बन जाए इतना पर्याप्त है। तुम्हें उससे ही संतुष्ट नहीं हो जाना है जो तुम अभी हो। बुद्ध को अपने भीतर एक असंतोष बन जाने दो; पार जाने की, अज्ञात में जाने की एक प्यास बन जाने दो।
जब तुम अपने अस्तित्व के शिखर पर पहुंचोगे तो तुम जान लोगे कि बुद्ध
को बोधिवृक्ष के नीचे क्या हुआ था, या जीसस को सूली पर क्या हुआ था, या मीरा को सड़कों पर नाचते हुए क्या हुआ था। तब तुम जान लोगे। लेकिन तुम्हारी अभिव्यक्ति तुम्हारी अपनी होगी। तुम मीरा या बुद्ध या जीसस नहीं होगे। तुम स्वयं होगे। तुम पहले कभी नहीं हुए; तुम सर्वथा अनूठे हो।
तो कुछ कहा नहीं जा सकता; तुम्हारे बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की
जा सकती। कोई नहीं कह सकता कि क्या होगा, कि तुम उसे कैसे प्रकट करोगे। तुम गाओगे, कि नाचोगे, कि चित्र बनाओगे या कि मौन रहोगे, कोई नहीं कह सकता है। और यह अच्छा है कि कुछ कहा नहीं जा सकता, कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यही इसका सौंदर्य है। अगर तुम्हारे संबंध में भविष्यवाणी की जा सके कि तुम यह होंगे या वह होगे तो तुम एक यांत्रिक चीज हो जाओगे। केवल यांत्रिक व्यवस्था के संबंध में भविष्यवाणी संभव है। मनुष्य की चेतना के संबंध में भविष्यवाणी असंभव है। वही उसकी स्वतंत्रता है।
तो जब तंत्र कहता है कि आदर्शों का अनुकरण मत करो तो उसका अभिप्राय बुद्ध को इनकार करना नहीं है। नहीं, यह बुद्ध का इनकार नहीं है। सच तो यह है कि इसी भांति तुम अपने बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हो। दूसरों का अनुकरण करने से तो तुम उसे चूक जाओगे। अपने मार्ग पर चलकर ही तुम उसे प्राप्त कर सकते हो, उपलब्ध हो सकते हो।
एक आदमी झेन सदगुरु बोकोजू के पास आया। बोकोजू के गुरु बहुत प्रसिद्ध थे, जाने—माने थे, महान पुरुष थे। तो उस आदमी ने बोकोजू से पूछा: 'क्या आप सच में अपने गुरु का अनुसरण करते हैं?' बोकोजू ने कहा: 'ही, मैं उनका अनुसरण करता हूं।’
लेकिन प्रश्न पूछने वाला बहुत हैरान हुआ, क्योंकि पूरे देश में बात प्रसिद्ध थी कि बोकोजू अपने गुरु का अनुसरण बिलकुल नहीं करता है। उसने कहा 'क्या आप मुझे धोखा देने की चेष्टा कर रहे हैं? सब लोग जानते हैं और आप भी जानते हैं कि आप उनका अनुसरण नहीं करते हैं। तो फिर आपका मतलब क्या है?' बोकोजू ने कहा: 'मैं अपने गुरु का ही अनुसरण कर रहा हूं—क्योंकि मेरे गुरु ने कभी अपने गुरु का अनुसरण नहीं किया। मैंने उनसे सही सीखा है। वे जैसे थे वैसे थे।’

211

इसी भांति बुद्ध या जीसस का अनुसरण किया जाना चाहिए। इसी भांति! वे अनूठे हैं। और अगर तुम उनका सच में अनुसरण करते हो तो तुम्हें भी अनूठा होना चाहिए।
बुद्ध ने कभी किसी का अनुकरण नहीं किया; और वे बुद्धत्व को तभी उपलब्ध हुए जब उन्होंने सब अनुकरण सर्वथा बंद कर दिया। जब वे स्वयं हो गए, जब उन्होंने सब मार्ग, सब सिद्धांत छोड़ दिए तब वे पहुंच गए। अगर तुम उनका अनुकरण करते हो तो यथार्थत: तुम उनका अनुसरण नहीं करते हो। यह बात विरोधाभासी नहीं है; विरोधाभासी दिखाई भर पड़ती है। अगर तुम उनका अंधे की तरह अनुकरण करते हो तो तुम उनका अनुसरण नहीं कर रहे हो। उन्होंने कभी किसी का अनुकरण नहीं किया और तो ही वे शिखर बन सके। उन्हें समझो; उनका अनुकरण मत करो। और तब एक सूक्ष्म अनुसरण घटित होगा जो आंतरिक होगा। वह अनुकरण नहीं होगा।
नीत्शे के महान ग्रंथ 'दस स्पेक जरथुस्त्र' में अपने शिष्यों के प्रति जरथुस्त्र का अंतिम संदेश यह है: 'मुझसे सावधान रहो। मैंने तुम्हें वह सब कह दिया जो कहा जाने योग्य था। अब मुझसे सावधान रहो। मेरा अनुकरण मत करो; मुझे भूल जाओ। मुझे छोड़ो और दूर चले जाओ।’
सभी महान सदगुरुओं का यही अंतिम संदेश है। कोई महान गुरु तुम्हें अपने हाथ की कठपुतली बनाना नहीं चाहेगा। क्योंकि तब वह तुम्हारी हत्या कर रहा है। तब वह गुरु नहीं, हत्यारा है। सदगुरु तो तुम्हें स्वयं होने में सहयोग करेगा। और अगर तुम अपने सदगुरु की अंतरंग सन्निधि और सत्संग में रहकर भी स्वयं नहीं हो सकते, तो फिर तुम कहां स्वयं होंगे?
सदगुरु तुम्हें स्वयं होने के लिए एक अवसर है। सिर्फ क्षुद्र चित्त
के लोग, संकीर्ण चित्त के लोग, जो गुरु होने का दिखावा करते है लेकिन है नहीं, केवल वे ही तुम पर अपने को आरोपित करने की चेष्टा करेंगे। महान गुरु तो तुम्हें तुम्हारे मार्ग पर ही बढ़ने में सहायता करेंगे। सदगुरु सब संभव उपाय करेंगे कि तुम अनुकरण के शिकार न होओ। उससे तुम्हें बचाने के लिए वे सब तरह की बाधाएं निर्मित करेंगे; वे तुम्हें अनुकरण नहीं करने देंगे। तुम तो अनुकरण करना चाहोगे, क्योंकि वह आसान है। अनुकरण आसान है; प्रामाणिक होना कठिन है। और जब तुम अनुकरण करते हो तो तुम उसके लिए अपने को जिम्मेवार नहीं समझते। तब गुरु जिम्मेवार हो जाता है। किसी बड़े सदगुरु ने कभी किसी को अनुकरण करने की इजाजत नहीं दी। वह हरेक बाधा निर्मित करेगा, ताकि तुम उसका अनुकरण न कर सको। वह हरेक उपाय से तुम्हें स्वयं पर फेंक देगा।
मुझे स्मरण आता है एक चीनी संत का, जो अपने सदगुरु के संबोधि दिवस का उत्सव मना रहा था। उसके अनेक शिष्य वहां इकट्ठे थे। उन्होंने कहा: 'हमने तो कभी नहीं सुना कि यह व्यक्ति आपका गुरु है; हमें नहीं मालूम था कि आप उसके शिष्य हो।’
वह का गुरु मर चुका था। उन्होंने कहा: 'आज ही हमें पता चला कि आप अपने गुरु का संबोधि—दिवस मना रहे हो। यह व्यक्ति आपका गुरु था? लेकिन कैसे? हमने तो आपको कभी उसके साथ नहीं देखा।’
उस संत ने कहा: 'मैं तो उनका अनुयायी बनना चाहता था; लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने मेरा गुरु बनने से इनकार कर दिया। और उनके इस इनकार के कारण ही मैं स्वयं हो सका। अभी मैं जो कुछ हूं वह उनके इनकार के कारण हूं। मैं उनका शिष्य हूं। वे मुझे स्वीकार भी कर सकते थे, तब मैं सारी जिम्मेवारी उनके कंधों पर डाल देता। लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। और वे सर्वश्रेष्ठ गुरु थे; वे अप्रतिम थे, उनका कोई जोड़ नहीं था। जब उन्होंने मुझे इनकार कर दिया तो फिर मैं और किसी के पास नहीं जा सका; क्योंकि वे ही एकमात्र शरण थे। उन्होंने जब इनकार कर दिया तो फिर किसी और के पास जाने में कोई अर्थ नहीं था, कोई मतलब नहीं था। मैं किसी के पास नहीं गया। वे अंतिम थे। अगर वे मुझे स्वीकार कर लेते तो मैं अपने को भूल जाता। लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया, और बहुत कठोर ढंग से इनकार कर दिया। वह इनकार मेरे लिए बड़ा आघात बन गया, भारी चुनौती बन गया। और मैंने तय कर लिया कि अब मैं किसी के भी पास नहीं जाऊंगा। जब इस व्यक्ति ने इनकार कर दिया तो कोई अन्य व्यक्ति इस योग्य नहीं था कि उसके पास जाता। तब मैंने खुद ही अपने

212

ऊपर काम शुरू किया। और तब मुझे धीरे— धीरे बोध हुआ कि उन्होंने क्यों इनकार किया था। उन्होंने मुझे मुझ पर ही फेंक दिया था। और तब मुझे यह बोध भी हुआ कि असल में उन्होंने मुझे स्वीकार कर लिया था। अन्यथा वे इनकार क्यों करते?'
यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ती है; लेकिन चेतना का परम गणित इसी तरह काम करता है। सदगुरु बड़े रहस्यपूर्ण होते हैं। तुम उनके संबंध में कोई निर्णय नहीं ले सकते; तुम तय नहीं कर सकते कि वे क्या कर रहे हैं। यह तो तुम तभी समझोगे जब पूरी चीज घटित हो जाएगी। तब पीछे लौटकर देखने पर ही तुम समझ सकोगे कि वे क्या कर रहे थे। अभी तो यह असंभव है। बीच रास्ते में तुम नहीं समझ सकते कि क्या हो रहा है, क्या किया जा रहा है। लेकिन एक बात पक्की है: नकल बिलकुल स्वीकृत नहीं है।
प्ररेणा भिन्न चीज है। प्रेरणा से तुम यात्रा पर निकलते हो; लेकिन यह यात्रा किसी की नकल में पड़ जाना नहीं है। तुम चलते तो अपने ही पथ पर हो। प्रेरणा चुनौती मात्र है; एक प्यास उठती है और तुम चल पड़ते हो।
तंत्र कहता है कि प्रेरणा तो लो, मगर नकलची मत बनो। सदा स्मरण रखो कि तुम अपने गंतव्य स्वयं हो; कोई दूसरा तुम्हारा गंतव्य नहीं हो सकता। और जब तक तुम उस जगह नहीं पहुंच जाते जहां तुम कह सको कि मैं अपनी नियति को उपलब्ध हो गया, मैं आप्तकाम हो गया, तब तक मत रुकना। तब तक आगे बढ़ते जाओ; तब तक असंतुष्ट रहो; तब तक बढ़ते चलो। चरैवेति—चरैवेति।
और यदि तुम अपना कोई आदर्श नहीं निर्मित करते हो तो हर कोई तुम्हें कुछ न कुछ सिखा सकता है। जैसे ही तुम किसी आदर्श से बंध जाते हो, तुम बंद हो जाते हो। अगर तुम बुद्ध से बंधे हो तो फिर जीसस तुम्हारे काम के न रहे, फिर मोहम्मद तुम्हारे लिए न रहे। तब तुम एक आदर्श से बंधे हो और उसकी नकल करने में संलग्न हो। तब और सब भिन्न दिखने वाले लोग तुम्हारे मन को शत्रु मालूम पड़ने लगते हैं।
महावीर का अनुयायी मोहम्मद के प्रति खुले होने की सोच भी नहीं सकता;
यह असंभव है। मोहम्मद महावीर से बिलकुल भिन्न हैं, भिन्न ही नहीं, विपरीत हैं। वे दोनों विपरीत ध्रुवों जैसे मालूम पड़ते हैं। अगर तुम दोनों को अपने चित्त में एक साथ रखोगे तो तुम भारी द्वंद्व में पड़ोगे। तुम ऐसा नहीं कर सकते हो।
यही कारण है कि एक के अनुयायी दूसरों के अनुयायियों के दुश्मन बन जाते हैं। वे ही संसार में शत्रुता के बीज बीते हैं। एक हिंदू नहीं सोच सकता कि मोहम्मद ज्ञानी हो सकते हैं। एक मुसलमान नहीं सोच सकता कि महावीर ज्ञानी हो सकते हैं। वैसे ही कृष्ण का अनुयायी नहीं सोच सकता कि महावीर ज्ञानी हो सकते हैं, कि जीसस ज्ञानी हो सकते हैं। जीसस कितने उदास दिखते हैं और कृष्ण कितने आनंदित हैं! कृष्ण का आनंद और जीसस की उदासी दोनों बिलकुल विपरीत ध्रुव हैं। जीसस के अनुयायी सोच भी नहीं सकते कि कृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हैं। संसार में इतना दुख है और यह आदमी बांसुरी बजा रहा है! यह तो हद दर्जे की स्वार्थ की बात मालूम पड़ती है। सारी दुनिया पीड़ा में है और यह अपनी गोपियों के साथ नाच रहा है! जीसस के अनुयायी इसे अधार्मिक कहेंगे, सांसारिक कहेंगे।
लेकिन मैं यहां अनुयायियों की बात कर रहा हूं। जीसस, बुद्ध और कृष्ण बिना किसी कठिनाई के, बिना किसी संघर्ष के साथ—साथ रह सकते हैं। बल्कि वे एक—दूसरे के साथ अति आनंदित होंगे। लेकिन उनके अनुयायी ऐसा नहीं कर सकते। क्यों? ऐसा क्यों है?
इसका बहुत गहरा मनोवैज्ञानिक कारण है। अनुयायी को मोहम्मद या महावीर
से मतलब नहीं है; उसे अपनी चिंता है। अगर दोनों ठीक हैं तो वह कठिनाई में पड़ेगा। तब उसे प्रश्न उठेगा कि किसके पीछे चला जाए, क्या किया जाए। मोहम्मद अपनी तलवार हाथ में लिए खड़े हैं और महावीर कहते हैं कि कीड़े— मकोड़े को मारना भी जन्मों—जन्मों का भटकाव हो सकता है। मोहम्मद तो अपनी तलवार लिए हैं; फिर क्या किया जाए?
मोहम्मद युद्ध करते हैं और महावीर जीवन से सर्वथा पलायन कर जाते हैं।
वे इतना

213

पलायन कर जाते हैं कि श्वास लेने से भी डरते हैं। क्योंकि जब तुम श्वास लेते हो तो उससे अनगिनत जीवन नष्ट हो जाते है। महावीर श्वास लेने से भी डरते है और मोहम्मद युद्ध करते हैं। कैसे उनमें से किसी का भी अनुयायी विपरीत को भी ठीक स्वीकार करेगा? उसका हृदय बंट जाएगा और वह सतत द्वंद्व में फंसा रहेगा। इससे बचने के लिए वह कहता है कि अन्य सारे लोग गलत हैं, सिर्फ यही ठीक है।
लेकिन यह समस्या उसी ने पैदा की है। यह समस्या इसीलिए खड़ी होती है क्योंकि वह अनुकरण करने में लगा है। उसकी कोई जरूरत नहीं है। अगर तुम किसी से बंधे नहीं हो तो तुम अनेक नदियों और अनेक कुओं के पानी का स्वाद ले सकते हो। और यह कोई समस्या नहीं है अगर उनका स्वाद भिन्न—भिन्न है। यह तो सुंदर बात है। तुम उनसे समृद्ध होते हो। तब तुम मोहम्मद और महावीर और क्राइस्ट और जरथुस्त्र, सबके प्रति खुले होते हो। वे सब तुम्हें स्वयं होने के लिए प्रेरणा बन जाते हैं। वे आदर्श नहीं हैं; वे सब स्वयं होने में तुम्हारी मदद करते हैं। वे अपनी ओर इशारा नहीं कर रहे हैं; वे तो अलग—अलग उपायों से, अलग—अलग ढंगों से तुम्हें तुम्हारी ओर ही उगख कर रहे हैं। वे एक ही मंजिल की ओर इशारा कर रहे हैं; और वह मंजिल तुम हो।
लारा हक्सले ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम है: 'यू आर नाट दि टारगेट', तुम लक्ष्य नहीं हो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तुम ही लक्ष्य हो; तुम ही बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट के लक्ष्य हो। वे सबके सब तुम्हारी तरफ इशारा कर रहे हैं। तुम ही लक्ष्य हो, तुम ही मंजिल हो। तुम्हारे द्वारा जीवन एक अनूठे शिखर पर पहुंचने की चेष्टा में लगा है। इससे प्रसन्न होओ। इसके लिए कृतज्ञ होओ। जीवन तुम्हारे द्वारा एक अनूठी मंजिल को प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है। और वह मंजिल तुम्हारे द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है, कोई दूसरा उसे नहीं प्राप्त कर सकता है। तुम उसके लिए बने हो; वही तुम्हारी नियति है।
तो दूसरों के अनुकरण में समय मत गंवाओ। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी से प्रेरणा नहीं लेनी है। सच तो यह है कि अगर तुम किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो तो तुम आसानी से प्रेरणा ले सकते हो। अगर तुम अनुकरण कर रहे हो तो तुम मुर्दा हो; तब तुम प्रेरणा नहीं ले सकते। प्रेरणा खुलापन है; अनुकरण बंद होना है।

दूसरा प्रश्न:
आपने कहा कि पश्चिम का मनोविज्ञान फ्रायड की मानसिक रुग्णता की धारणा
पर आधारित है और पूर्वीय मनोविज्ञान मनुष्य के मूल्यांकन के लिए अधिसामान्य को आधार की तरह उपयोग करता है। लेकिन जब मैं आधुनिक जगत में अपने चारों ओर देखता हूं तो पाता हूं कि सर्वाधिक लोग फ्रायड की रुग्णता की कौटी मैं आते है; लाखों में एक व्यक्ति अधिसामान्य की कोटी में है। और बहुत थोड़े से लोग समाज के सामान्य के आदर्श के अनुकूल पड़ते हैं। आजकल इतनी ज्यादा रूग्णता क्यों है? और आप सामान्य की क्या परिभाषा करेंगे?

बहुत सी बातें समझने जैसी हैं। ऐसा नहीं है कि बहुत थोड़े लोग अपने शिखर को उपलब्ध होते हैं; अनेक होते हैं; लेकिन उन्हें देखने वाली आंखें तुम्हारे पास नहीं हैं। जब तुम अपने चारों और देखते हो तो तुम वही देखते हो जो देख सकते हो। तुम उसे कैसे देख सकते हो जिसे तुम नहीं देख सकते? तुम्हारी देखने की क्षमता से बहुत सी बातें तय होती हैं। तुम वही सुनते हो जो सुन सकते हो, वह नहीं जो है।
अगर कोई बुद्ध पुरुष तुम्हारे पास से गुजरे तो तुम उसे नहीं पहचान पाओगे। और तुम मौजूद थे जब बुद्ध गुजरे थे; लेकिन तुम उन्हें चूक गए। तुम मौजूद थे जब जीसस जीवित थे; लेकिन तुमने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया। देखना कठिन है, क्योंकि तुम अपने ही ढंग से देखते हो। तुम्हारी अपनी धारणाएं हैं; तुम्हारी अपनी मान्यताएं हैं; तुम्हारे अपने रुझान हैं। उनके द्वारा तुम बुद्ध या जीसस को देखते हो।
जीसस तुम्हें अपराधी दिखाई पड़े। जब जीसस को सूली दी गई तो उन्हें दो अन्य अपराधियों के साथ सूली पर चढ़ाया गया। उनके दोनों तरफ एक—एक चोर था।

तीन व्यक्तियों को सूली पर चढ़ाया गया और जीसस ठीक दो चोरों के बीच में थे। क्यों? उन्हें अनैतिक अपराधी माना गया। और तुम निर्णायक थे। अगर जीसस अभी फिर आ जाएं तो तुम फिर उन्हें उसी तरह अपराधी ठहराओगे, क्योंकि तुम्हारे निर्णय के ढंग, तुम्हारे मापदंड नहीं बदले हैं।
जीसस किसी के भी साथ रह लेते थे, किसी के भी घर ठहर जाते थे। वे एक बार
एक वेश्या के घर में ठहरे, और सारा गांव उनके विरोध में हो गया। लेकिन उनके मूल्य भिन्न थे। वह वेश्या आई और उसने आंसुओ से जीसस के पांव धोए। उसने उनसे कहा: 'मैं दोषी हूं; मैं पापी हूं। और आप मेरी एकमात्र आशा हैं। अगर आप मेरे घर आएंगे तो मैं पाप से मुक्त हो जाऊंगी; मुझे नया जीवन मिल जाएगा। अगर जीसस मेरे घर आ सकते हैं तो मैं स्वीकृत हूं।’ तो जीसस गए और उस वेश्या के मेहमान हुए। लेकिन सारा गाव उनके खिलाफ हो गया। लोग कहने लगे कि यह किस ढंग का आदमी है जो वेश्या के घर टिकता है! लेकिन जीसस के लिए प्रेम मूल्य है। और किसी ने भी उन्हें ऐसा प्रेमपूर्ण निमंत्रण नहीं दिया था। वे इनकार नहीं कर सकते थे। और यदि जीसस इनकार करते तो वे प्रबुद्ध नहीं थे। तब वे भी सामाजिक सम्मान के पीछे दौड़ने वालों में से एक होते। लेकिन वे सामाजिक सम्मान की खोज में नहीं थे।
एक दूसरे गांव में गाव के लोग एक स्त्री को लेकर जीसस के पास आए। उस स्त्री ने व्यभिचार किया था। पुरानी बाइबिल में लिखा है कि यदि कोई स्त्री व्यभिचार करे तो उसे पत्थर फेंक कर मार डालना चाहिए। यह नहीं लिखा है कि व्यभिचार के भागी पुरुष को मार डालना चाहिए; लिखा है कि स्त्री को मार डालना चाहिए। क्योंकि स्त्री व्यभिचार करती है, पुरुष कभी व्यभिचार नहीं करता। कारण यह है कि सभी धर्मशास्त्र पुरुषों ने लिखे हैं। और यह एक कठिन सवाल था; तो उन्होंने जीसस से पूछा कि क्या करना चाहिए।
वे लोग जीसस के साथ चाल चल रहे थे। अगर जीसस कहते कि इस स्त्री को मत मारो, किसी के निर्णायक मत बनो, तो वे कहते कि आप शास्त्र के खिलाफ हैं। और अगर जीसस कहते कि इस स्त्री को मार डालो, पत्थर फेंककर मार डालो, तो वे कहते कि आपके इस उपदेश का क्या हुआ कि अपने शत्रुओं को प्रेम करो' और आपका वह उपदेश कहां गया कि 'किसी के निर्णायक मत बनी, ताकि तुम पर भी कोई निर्णय न ले।' ऐसे वे चाल चल रहे थे। वे जीसस के लिए एक धर्म—संकट पैदा कर रहे थे, एक तार्किक झंझट पैदा कर रहे थे। जीसस कुछ भी कहते, वे उसमें ही पकड़े जाते। लेकिन तुम बुद्ध पुरुष को नहीं पकड़ सकते; यह असंभव है। यह बिलकुल असंभव है। और तुम जितनी ही उन्हें फांसने की कोशिश करोगे, उतने ही तुम उनके फंदे में पड़ जाओगे। जीसस ने कहा: 'शास्त्र बिलकुल सही हैं। लेकिन वे ही लोग आगे आएं जिन्होंने कभी व्यभिचार न किया हो। और ये पत्थर उठाओ और इस स्त्री की हत्या कर दो, लेकिन वे ही पत्थर उठाएं जिन्होंने कभी व्यभिचार न किया हो।’
इतना सुनते ही भीड़ छंटने लगी। जो लोग आगे खड़े थे वे पीछे सरकने लगे। कौन इस स्त्री को पत्थर मारे? लेकिन वे लोग जीसस के शत्रु बन गए।
और जब मैं कहता हूं 'वे' तो मेरा मतलब तुमसे है। तुम सदा यहां रहे हो। तुम नहीं पहचान सकते; तुम नहीं देख सकते; तुम अंधे हो। यही कारण है कि तुम्हें सदा लगता है कि जगत बुरा है और यहां कोई बुद्ध नहीं है; यहां सब रुग्ण लोग हैं। ऐसा नहीं है। लेकिन तुम्हें सिर्फ रुग्णता दिखाई पड़ती है, क्योंकि तुम रुग्ण हो। तुम्हें बीमारी समझ में आती है, क्योंकि तुम बीमार हो। तुम कभी स्वास्थ्य को नहीं समझ सकते, क्योंकि तुम कभी स्वस्थ नहीं रहे। स्वास्थ्य की भाषा तुम्हारी समझ के बाहर है।
मैंने एक यहूदी संत बालशेम के संबंध में सुना है। कोई आदमी आया और उसने बालशेम से पूछा. 'क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्या ज्यादा मूल्यवान है—धन या विवेक?' वह आदमी यह प्रश्न किसी कारण से पूछ रहा था। तो बालशेम हंसा और उसने कहा. 'निश्चित ही विवेक ज्यादा महत्वपूर्ण है, ज्यादा मूल्यवान है।’ तब उस आदमी ने कहा: 'फिर, बालशेम, दूसरा सवाल यह है कि मैं हमेशा देखता हूं कि विवेकपूर्ण होकर भी तुम ही धनियों के पास जाते हो। तुम ही सदा धनी लोगों के घर जाते हो; मैंने कभी किसी धनवान को तुम्हारे पास, विवेक वाले के पास, आते नहीं देखा। और तुम कहते हो कि धन से विवेक ज्यादा मूल्यवान है। तो यह बात मुझे समझाओ।’

215

बालशेम हंसा और उसने कहा. 'विवेक वाले धनवान के पास जाते हैं, क्योंकि उनमें विवेक है और वे धन का मूल्य जानते हैं। और धनवान सिर्फ धनवान हैं— उनके पास केवल धन है, और कुछ भी नहीं है—वे विवेक का मूल्य नहीं समझ सकते। निश्चित ही मैं जाता हूं क्योंकि मैं धन का मूल्य समझता हूं। और वे गरीब मूढ़जन! वे सिर्फ धनवान हैं—और कुछ भी नहीं। वे विवेक का मूल्य नहीं समझ सकते, इसलिए वे कभी मेरे पास नहीं आते हैं।’
अगर तुम किसी संत को राजमहल की ओर जाते देखोगे तो तुम कहोगे कि यह आदमी संत नहीं है; बात ही खत्म हो गई। क्योंकि तुम अपनी ही आंखों से देखते हो। धन तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण है। तुम उसी संत के पीछे चलोगे जो धन का त्याग कर देता है, क्योंकि तुम धन—लोलुप हो। तुम अपने को गौर से देखो; तुम जो भी कहते हो वह दूसरों की बजाय तुम्हारे संबंध में ज्यादा खबर देता है। वह सदा तुम्हारे संबंध में है; तुम संदर्भ हों। जब तुम कहते हो कि बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध नहीं है। तो तुम्हारा मतलब कुछ और है। तुम्हारा मतलब इतना ही है कि तुम्हें वे ज्ञान को उपलब्ध दिखाई नहीं पड़ते हैं।
लेकिन तुम कौन हो? और क्या उनका बुद्धत्व किसी भी तरह से तुम्हारे रुझान, तुम्हारे मत, तुम्हारे दृष्टिकोण पर निर्भर है? तुम्हारी धारणाओं के बंधे—बंधाए ढांचे है और तुम निरंतर उन्हीं के माध्यम से निर्णय लेते रहते हो। तुम्हें रुग्णता पहचान आती है, बुद्धत्व नहीं।
और स्मरण रहे, तुम उसे नहीं समझ सकते जो तुमसे ऊंचा है। तुम उसे ही समझ सकते हो जो तुमसे छोटा है या ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे बराबर है। उच्चतर को तुम नहीं समझ सकते; वह असंभव है। उच्चतर को समझने के लिए तुम्हें ऊंचा उठना होगा। तुम निम्नतर को ही समझ सकते हो।
इसे इस तरह देखो। एक पागल आदमी तुम्हें नहीं समझ सकता, पागल के लिए तुम्हें समझना असंभव है। वह अपने पागलपन की आंखों से देखता है। लेकिन तुम पागल आदमी को समझ सकते हो। वह तुमसे नीचे है। सामान्य व्यक्ति असामान्य को समझ सकता है जो सामान्य से नीचे गिर गया है, रुग्ण है। लेकिन वह अपने से ऊंचे को नहीं समझ सकता है।
फ्रायड भी भयभीत है। दा ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक बार ऐसा हुआ कि वह फ्रायड के सपनों का विश्लेषण करना चाहता था। दा फ्रायड के प्रधान शिष्यों में से एक था। वे जहाज से अमेरिका जा रहे थे; तो कई दिनों का साथ था। एक दिन दा ने हिम्मत की; वह उन दिनों फ्रायड का सबसे अंतरंग शिष्य था। उसने फ्रायड से कहा: 'मैं आपके स्वप्नों का विश्लेषण करना चाहता हूं आप कृपया अपने कुछ स्वप्न बताएं। बहुत दिन हम लोग साथ रहेंगे; मैं इस बीच आपके स्वप्नों का विश्लेषण करूंगा।’ पता है, फ्रायड ने क्या कहा? फ्रायड ने कहा: 'क्या इरादा है तुम्हारा? यदि तुम मेरे स्वप्नों का विश्लेषण करने लगोगे तो मेरा प्रभाव ही खत्म हो जाएगा। मैं तुम्हें अपने स्वप्न नहीं बता सकता।’
फ्रायड इतना भयभीत था; क्योंकि उसके स्वप्नों में वे ही रोग, वे ही विकृतियां प्रकट होंगी जो रोग और विकृतियां उसे दूसरों के स्वप्नों में मिलती रही हैं। उसने कहा: 'मैं अपना प्रभुत्व नहीं खो सकता, मैं तुम्हें अपने सपने नहीं बताऊंगा।’
फ्रायड, इस युग का सबसे बड़ा मनसविद भी उन सारे रोगों का शिकार है जिनके शिकार दूसरे लोग हैं। और जब दा ने कहा कि मैं अब तुमसे अलग हो जाऊंगा तो यह सुनकर फ्रायड कुर्सी से गिर पड़ा और बेहोश हो गया। वह गश खाकर गिर पड़ा और घंटों मूर्च्छित रहा। एक शिष्य द्वारा त्यागे जाने का विचार ही इतना भारी आघात कर गया कि उसकी चेतना जाती रही।
अगर तुम बुद्ध से कहो कि मैं आपको छोड़ दूंगा तो क्या तुम सोचते हो कि
वे गिर पड़ेंगे और बेहोश हो जाएंगे? अगर सारे के सारे दस हजार शिष्य भी उन्हें छोड्कर चले जाएं तो बुद्ध प्रसन्न ही होंगे, बहुत प्रसन्न होंगे कि अच्छा हुआ कि तुम चले गए।
क्यों ऐसा होता है? क्योंकि तुम्हारे मनसविद भी तुम्हारे जैसे ही हैं। वे ऊपर से नहीं आए हैं। उनकी समस्याएं भी वही हैं जो तुम्हारी हैं। एक मनसविद दूसरे मनसविद के पास अपना मनोविश्लेषण कराने जाता है। यह ऐसा नहीं है कि एक डाक्टर दूसरे डाक्टर के पास इलाज कराने जाए। डाक्टरों के

216

लिए यह ठीक है, उन्हें क्षमा किया जा सकता है। लेकिन यह बहुत बेतुका मालूम पड़ता है कि एक मनसविद दूसरे मनसविद के पास अपना विश्लेषण कराने जाए। इसका क्या अर्थ है?
इसका यही अर्थ है कि वह भी साधारण आदमी है। मनोविज्ञान एक धंधा भर है।

बुद्ध किसी धंधे में नहीं है; वे कोई साधारण जन नहीं हैं। वे एक नए सत्य को उपलब्ध हैं; वे चेतना की एक नई अवस्था में हैं। अब वे शिखर पर खड़े होकर देखते हैं। वे तुम्हें समझ सकते हैं; लेकिन तुम उन्हें नहीं समझ सकते हो। और वे चाहे जितनी भी चेष्टा करें, तुम्हारे लिए उन्हें समझना असंभव है। तब तक तुम उन्हें गलत समझते रहोगे जब तक तुम उनके व्यक्तित्व से न जुड़कर शब्दों से बंधे रहोगे; जब तक तुम शब्दों की बजाय उनकी चुंबकीय शक्ति से नहीं बंधते हो। जब तक तुम एक लोहे के टुकड़े की भांति उनके चुंबकत्व के प्रभाव में नहीं पड जाते हो, तब तक तुम उन्हें नहीं समझ सकोगे। तुम गलत ही समझोगे।
यही कारण है कि तुम नहीं देख पाते हो। लेकिन बुद्ध पुरुष सदा ही पृथ्वी पर हैं। रुग्णता पहचान में आती है, क्योंकि हम रुग्ण लोग हैं। हम रुग्णता को देख सकते हैं, समझ सकते हैं।
दूसरी बात, यदि ऐसा भी हो कि पूरे मनुष्य—जाति के इतिहास में एक ही व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ हो—एक ही व्यक्ति बुद्ध हुआ हो—वह भी तुम्हारी संभावना दिखाने के लिए पर्याप्त है। यदि एक मनुष्य को भी बुद्धत्व घटित हो सकता है तो तुम्हें क्यों नहीं घटित हो सकता? अगर एक बीज फूल बन सकता है तो प्रत्येक बीज में फूल बनने की क्षमता है। हो सकता है कि तुम केवल बीज हो, लेकिन अब तुम अपने भविष्य को जानते हो कि बहुत कुछ संभव है।
लेकिन मनुष्य के मन के साथ विपरीत ही घटित हो रहा है। और यह सदा से घटित हो रहा है। तुमने ककून या कोया देखा होगा; कोया टूटता है और उससे तितली निकलकर बाहर उड़ती है। मनुष्य की प्रक्रिया उलटी है। मनुष्य तितली की भांति जन्म लेता है और फिर वह कोया में प्रवेश कर जाता है। प्रत्येक बच्चा बुद्ध जैसा पैदा होता है और फिर उससे दूर हटता जाता है।
बच्चे को देखो; उसकी आंखों को देखो। किसी भी बडे व्यक्ति की आंख से उसकी आंख ज्यादा बुद्ध जैसी है। उसके बैठने का ढंग, चलने का ढंग, उसका सौंदर्य, उसका प्रसाद, उसका क्षण— क्षण जीना, उसका क्रोध तक, सब कितना सुंदर है! वह इतना समग्र है। और जब भी कोई चीज समग्र होती है, वह सुंदर होती है।
किसी बच्चे को क्रोध में उछलते—कूदते, चीखते—चिल्लाते देखो। सिर्फ देखो! अपनी फिक्र छोड़ो कि वह तुम्हारी शांति भंग कर रहा है। इस घटना को मात्र देखो। वह क्रोध सुंदर है; क्योंकि बच्चा उसमें इतनी समग्रता से है कि कुछ भी पीछे नहीं बचा है। वह क्रोध ही हो गया है; और वह इतना प्रामाणिक है कि कुछ भी दमित नहीं हो रहा है। वह अपने को जरा भी नहीं रोक रहा है; वह क्रोध में डूब गया है, क्रोध ही हो गया है। बच्चे को देखो जब वह प्रेम करता है, जब वह तुम्हारा स्वागत करता है, जब वह तुम्हारे पास आता है। वह बुद्ध जैसा है। लेकिन शीघ्र ही समाज आएगा, उसे कोया में प्रवेश करने में मदद देगा। और बच्चा कोया में बंद होकर मर जाता है। हम पालने से सीधे कब में प्रवेश कर जाते हैं। यही कारण है। कि यहां इतनी रुग्णता है; किसी को भी सहज और स्वाभाविक नहीं रहने दिया जाता है। रुग्णता तुम पर लाद दी जाती है। तुम एक मुर्दा ढांचे में कैद हो जाते हो; और तब तुम्हारे सहज प्राण दुखी— पीड़ित होते हैं। यहां इतनी रुग्णता है, इसका यही कारण है।
यह रुग्णता मनुष्य—निर्मित है; मनुष्य जितना सभ्य होता जाता है, उतना ही रुग्ण होता जाता है। यह कसौटी है: अगर तुम्हारे देश में कम पागल हैं तो समझ लो कि तुम्हारा देश कम सभ्य है। और अगर तुम्हारे देश में पागलों की संख्या बढती जाती है, अगर हर कोई विक्षिप्त हो रहा है और मनोचिकित्सक के पास जा रहा है तो भलीभांति समझ लो कि तुम्हारा देश संसार में सबसे ज्यादा सभ्य है। और जब कोई देश सभ्यता के शिखर को छू लेगा तो उसका एक—एक नागरिक पागल होगा।

217

सभ्यता तुम्हें पागल कर देती है, क्योंकि वह तुम्हें स्वयं और सहज नहीं होने देती। सब कुछ दमित है; और दमन के साथ हर चीज विकृत हो जाती है।
तुम सहजता से श्वास भी नहीं ले सकते हो—और चीजों की तो बात ही मत पूछो। तुम्हारी श्वास भी असहज हो जाती है। तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते; क्योंकि समाज गहरी श्वास नहीं लेने देता है।
गहरी श्वास लो। अगर तुम गहरी श्वास लोगे तो तुम अपनी वृत्तियों का दमन नहीं कर सकोगे। अगर तुम किसी चीज का दमन करना चाहते हो तो तुम देखोगे कि तुम्हारी श्वास—क्रिया में बदलाहट होने लगी। तुम्हें क्रोध आया है और तुम उसे दबाना चाहते हो तो तुम क्या करोगे? तुम तुरंत श्वास लेना बंद कर दोगे।
क्रोध में श्वास गहरी जाती है, क्योंकि क्रोध के लिए जरूरी है कि तुम्हारे भीतर खून का गर्म प्रवाह हो; क्रोध के लिए ज्यादा आक्सीजन जरूरी है। क्रोध के लिए जरूरी है कि तुम्हारे भीतर कुछ रासायनिक परिवर्तन हों। और वे परिवर्तन गहरी श्वास लेने से घटित होते हैं। तो जब तुम्हें क्रोध आएगा और तुम उस क्रोध को दबाना चाहोगे तो तुम स्वाभाविक ढंग से श्वास न ले सकोगे। तुम उथली श्वास लोगे।
किसी बच्चे को कहो कि अमुक काम मत करो, और तुम देखोगे कि तुरंत उसकी श्वास उथली हो गई। अब वह गहरी श्वास न ले सकेगा, क्योंकि यदि वह गहरी श्वास लेगा तो वह तुम्हारी आज्ञा का पालन नहीं कर पाएगा। तब वह वही करेगा जो वह करना चाहता है। आदमी गहरी श्वास भी नहीं ले रहा है। अगर तुम गहरी श्वास लोगे तो तुम्हारे भीतर काम—केंद्र पर चोट पड़ेगी। और समाज इसके विरुद्ध है। धीमी श्वास लो; उथली श्वास लो। गहरे मत जाओ; और तब काम—केंद्र पर चोट नहीं पड़ेगी।
सच तो यह है कि सभ्य मनुष्य प्रगाढ़ काम—संभोग में असमर्थ हो गया है, क्योंकि वह गहरी श्वास नहीं ले सकता। काम—कृत्य में तुम्हारी श्वास इतनी गहरी होनी चाहिए कि तुम्हारा सारा शरीर उसमें संलग्न हो। अन्यथा तुम्हें आर्गाज्य नहीं होगा, शिखर अनुभव नहीं होगा और तुम्हें सिर्फ निराशा हाथ लगेगी।
अनेक लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हमें काम—कृत्य में कोई सुख नहीं मिलता है। हम उसे यंत्रवत करते हैं, जिसमें सिर्फ ऊर्जा ही खोती है। और बाद में हम निराश होते हैं, विषाद महसूस करते हैं।
इसका कारण काम नहीं है; कारण यह है कि वे इसमें समग्रता से नहीं उतरते हैं। उनका काम—कृत्य स्थानीय होकर रह जाता है, जिसमें सिर्फ वीर्यपात होता है। तब वे निर्बल महसूस करते हैं और कुछ उससे मिलता भी नहीं। अगर पशुओं की तरह तुम्हारा सारा शरीर संभोग में संलग्न हो, अगर शरीर का रोआं— रोआं उत्तेजित होकर कांपने लगे, अगर तुम्हारा सारा शरीर जैसे विधुत— शक्ति से भावाविष्ट हो जाए, अगर तुम अहंकाररहित, मस्तिष्करहित हो जाओ, अगर विचारणा न रहे, अगर तुम्हारा शरीर एक लयबद्ध गति में डूब जाए, तब तुम्हें एक प्रगाढ़ सुख की अनुभूति होगी। तब तुम एक गहन विश्राम अनुभव करोगे और किसी अर्थ में परितृप्त भी।
लेकिन यह नहीं हो सकता; क्योंकि तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। तुम इतने भयभीत हो।
शरीर को देखो। उसके दो छोर हैं। एक छोर, ऊपरी छोर चीजों को भीतर ले जाने के लिए है, तुम्हारा सिर चीजों.को भीतर ले जाने के लिए है। वह सब कुछ भीतर ले जाता है। भोजन, वायु, प्रभाव, विचार, कोई भी चीज वह ग्रहण करता है; उससे तुम चीजों को भीतर ले जाते हो। यह एक छोर है। दूसरा छोर नीचे का शरीर है; वह त्यागने के लिए है, ग्रहण के लिए नहीं। निचले शरीर से तुम कोई चीज भीतर नहीं ले जा सकते, वह छोर त्यागने के लिए है, छोड़ने के लिए है, बाहर निकालने के लिए है। ऊपरी शरीर से तुम लेते हो और निचले शरीर से त्यागते हो, छोड़ते हो।
लेकिन सभ्य मनुष्य केवल भीतर लेता है, कभी छोड़ता नहीं। उससे ही रुग्णता पैदा होती है; तुम विक्षिप्त हो जाते हो। यह ऐसे ही है जैसे कि तुम भोजन तो लो, उसे भीतर जमा करते जाओ और कभी मल त्याग न करो। तुम पागल हो जाओगे। दूसरे छोर को काम में लाना है। अगर कोई आदमी कंजूस है तो वह जरूर

218

सामान्य होगे। बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। पूरी ताकत से श्वास को बाहर फेंको, और श्वास को भीतर लेने का काम शरीर पर छोड़ दो।
जब तुम श्वास भीतर लें जाते हो और फिर उसे छोड़ते नहीं तो तुम्हारे फेफड़े कार्बन डायआक्साइड से भर जाते हैं। और यह क्रम चलता रहता है। तुम्हारा पूरा फेफड़ा कभी खाली नहीं होता; तुम उसे कार्बन डायआक्साइड से भरते जाते हो। तब तुम्हारी श्वास—प्रक्रिया उथली हो जाती है और तुम्हारे फेफड़े कार्बन डायआक्साइड से भरते जाते हैं। पहले श्वास को बाहर फेंको और लेने की बात भूल जाओ। शरीर खुद उसकी चिंता कर लेगा। शरीर के पास अपना विवेक है और वह तुमसे ज्यादा बुद्धिमान है। श्वास को बाहर फेंको और लेने की बात भूल जाओ। और डरो मत, तुम मरोगे नहीं। शरीर उतनी श्वास भीतर ले लेगा जितनी जरूरी है। जितनी श्वास तुम बाहर निकालोगे, शरीर उतनी श्वास अंदर ले लेगा; और संतुलन कायम रहेगा। अगर तुम आती श्वास पर जोर दोगे तो संतुलन बिगड़ जाएगा, क्योंकि तुम्हारे मन की प्रवृत्ति इकट्ठा करने की है।
मैं अनेक घरों में मेहमान हुआ हूं। और मैं देखता हूं कि लोग इतनी चीजें इकट्ठा कर लेते हैं कि घर में रहने की जगह ही नहीं रह जाती। घर में रहने की जगह नहीं है और वे इकट्ठा करने में लगे हैं! वे चीजें जमा करते रहते हैं और सोचते हैं कि किसी दिन उनकी जरूरत पड़ सकती है।
जिस चीज की जरूरत नहीं है, उसे इकट्ठा मत करो। और यदि किसी को किसी चीज
की जरूरत तुमसे अधिक हो तो बेहतर है कि वह चीज उसे दे दो। देने वाले बनो, और तुम कभी रुग्ण नहीं होगे। सभी प्राचीन सभ्यताएं दान पर आधारित थीं; और यह आधुनिक सभ्यता परिग्रह पर, इकट्ठा करने पर खड़ी है। यही कारण है कि ज्यादा लोग पागल हो रहे हैं, विक्षिप्त हो रहे हैं। हर कोई पूछ रहा है कि कहां से मिलेगा, कोई नहीं पूछता कि कहां जाऊं और दूं किसको दूं।

अंतिम प्रश्न:
रोज आप अपने हरेक प्रवचन में बोध की? समग्र बोध की, अबाधित की चर्चा करते हैं। आप यह भी कहते हैं की मन से, किसी विचार के दोहराने से इसे नहीं प्राप्त किया जा सकता है; इसे तो अनुभव करना है। लेकिन प्राप्त किए बिना कोई इसे अनुभव कैसे कर सकता है? और वह कौन सा भाव है जो प्राप्ति के पहले आता है? जो अभी घटित नहीं हुआ है उसका भाव या उसकी कल्पना कैसे की जाए? क्या यह भी मन को हटाने से घटित होता है? इसकी पूरी प्रक्रिया क्या है? और इसे संभव कैसे बनाया जाए?

जब मैं कहता हूं कि मन से बोध को नहीं उपलब्ध हुआ जा सकता तो मेरा मतलब
है कि तुम उसके बारे में सोच—विचार करके उसे नहीं पा सकते। तुम उसके बारे में खूब सोच—विचार करते रहो; लेकिन तुम वर्तुल में घूमते रहोगे। जब मैं कहता हूं कि उसे मन से नहीं पाया जा सकता तो मेरा मतलब है कि उसे सोच— विचार से नहीं पाया जा सकता। तुम्हें कुछ साधना होगा, कुछ करना होगा। उसे करके ही पाया जा सकता है, सोचकर नहीं। यह पहली बात है।
तो इस पर विचार ही मत करते रहो कि बोध क्या है, उसे कैसे पाया जाता है, उसका फल क्या होगा। सोचते ही मत रहो, कुछ करो। रास्ते पर चलते हुए बोध से चलो। यह कठिन है और तुम बार—बार भूल जाओगे। लेकिन घबड़ाओ मत। जब भी स्मरण आए सजग हो जाओ। प्रत्येक कदम पूरी सजगता से उठाओ—जानते हुए, बोध के साथ। मन को और कहीं मत जाने दो। भोजन करते समय भोजन ही करो; होश के साथ चबाओ। तुम जो भी करो, उसे यंत्रवत मत करो। और यह बिलकुल अलग बात है।
और जब मैं कहता हूं कि इसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है तो उसका यह अर्थ है
कि, उदाहरण के लिए मैं अपना हाथ यंत्रवत उठा सकता हूं और मैं उसे पूरे होश के साथ भी उठा सकता हूं। होश के साथ उठाने से मेरा मन सजग है कि हाथ उठाया जा रहा।
इसे करके देखो, इसे प्रयोग में लाओ। पहले हाथ को यंत्रवत उठाओ और फिर होशपूर्वक उठाओ। तुम बदलाहट अनुभव करोगे; तुरंत ही गुणवत्ता बदल जाती है। सजगता से चलो, और तुम्हारा चलना भिन्न होगा। तब तुम्हारी चाल में एक गरिमा होती है। तुम धीमे— धीमे चलते हो, सुंदर ढंग से चलते हो। जब तुम यंत्रवत

220

और कहीं तो आरंभ करना होगा; तो आरंभ करो। भूलें होंगी, होंगी ही। तुम भूल— भूल जाओगे; यह स्वाभाविक है। लेकिन हताश मत होओ और यह कह कर प्रयत्न करना मत छोड़ दो कि यह मुझसे नहीं होने वाला है। तुमसे होने वाला है; तुम यह कर सकते हो। तुम्हारे भीतर वही संभावना छिपी है जो जीसस या बुद्ध में छिपी थी। तुम बीज हो, तुम में कोई कमी नहीं है। बस थोड़ी अराजकता है, सब चीजें बिखरी—बिखरी हैं। कमी कुछ भी नहीं है; तुममें सब कुछ है, तुम बुद्ध हो सकते हो, बस चीजों को थोड़ी व्यवस्था देने की जरूरत है।
अभी तो तुम एक अराजकता हो, क्योंकि व्यवस्था नहीं है। व्यवस्था तब आती है जब तुम सजग होते हो, सावचेत होते हो। तुम्हारे बोधपूर्ण होने से ही चीजें अपनी—अपनी जगह ले लेती हैं; और तब यही अराजकता, जो तुम हो, एक व्यवस्था बन जाती है, एक संगीत बन जाती है।

आज इतना ही।

222